Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

प्राचीनकाव्य

Institute of Open and Distance Education

Faculty of Arts

प्राचीनकाव्य

1BA3

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

1BA3

प्राचीनकाव्य

1BA3
प्राचीनकाव्य

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr Kajal Moitra, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Mahesh Shukla, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Reena Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Ram Ratan sahu, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr Anju Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh
Dr. Sandhya Jaiswal , Dr. C. V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Course Editor:

Dr Ramsiya Charmkar, Assistant Professor Department of Political Science Humanities and liberal arts, Rabindranath Tagore University, Bhopal, M.P.

Unit Written By:

1. Dr. Radha Sharma

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Pooja Yadav

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. Pragya Sharma (Net Qualify)

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

इकाई इकाई का नाम पृष्ट संख्या

अनुक्रमणिका

ब्लॉक -I

इकाई -1 कबीरदासः व्याख्याएँ 1

इकाई -2 सूरदासः व्याख्याएँ 22

इकाई -3 तुलसीदास: व्याख्याएँ 40

इकाई - 4 हिंदी साहित्य का भक्तिकाल 58

ब्लॉक -II

इकाई – 5 संत काव्यधारा 73

इकाई – 6 कृष्ण काव्यधारा 86

इकाई – 7 राममार्गी काव्यधारा 99

इकाई – 8 कबीर समीक्षात्मक 114

ब्लॉक -III

इकाई – 9 सूरदास समीक्षात्मक 136

इकाई – 10 तुलसीदास समीक्षात्मक 161

इकाई – 11 विद्यापति 190

इकाई – 12 जायसी 200

ब्लॉक -IV

इकाई – 13 रहीम 210

इकाई – 14 केशव दास 227

इकाई – 15 पद्माकर 239

इकाई – 16 देव 251

ब्लॉक - I

इकाई -1

कबीरदासः व्याख्याएँ

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 गुरूदेव को अंग पद

1.4 सुमिरन को अंग पद

1.5 विरह को अंग पद

1.6 ज्ञान विरह को अंग पद

1.7 कबीरदास के प्रमुख पद

1.8 सार संक्षेप

1.9 मुख्य शब्द

1.10 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1.11 संदर्भ ग्रन्थ

1.12 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

कबीरदास भारतीय साहित्य और भक्ति आंदोलन के प्रमुख कवियों में से एक हैं। उनके काव्य में सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन का गहन समावेश है। "कबीरदास: व्याख्याएँ" इकाई में उनके काव्य के महत्वपूर्ण अंगों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है, जो उनकी आध्यात्मिक दृष्टि और गुरु-शिष्य संबंधों की महत्ता को स्पष्ट करते हैं।

इस इकाई में "गुरुदेव कौ अंग," "सुमिरन कौ अंग," और "विरह कौ अंग" जैसे महत्वपूर्ण पदों का विवेचन किया गया है। कबीरदास ने गुरु की महिमा, सुमिरन की आवश्यकता, और विरह की पीड़ा को अत्यंत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है।

इन पदों की व्याख्या में आध्यात्मिकता, प्रेम, कृतज्ञता, और भक्ति रस का गहन चित्रण किया गया है।

कबीर का काव्य सरल भाषा में गहरे सत्य को व्यक्त करता है। उनके पद मानव जीवन की दिशा और दृष्टि को आलोकित करते हैं, जो इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है। "कबीरदास: व्याख्याएँ" पाठकों को कबीर के आध्यात्मिक दर्शन की समझ विकसित करने में सहायक होगी।

1.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझ सकेंगे:

- कबीरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय।
- कबीरदास की रचनाओं में निहित आध्यात्मिक, सामाजिक और दार्शनिक दृष्टिकोण।
- कबीर की साखियों और पदों में व्यंजित भक्ति, निर्गुणवाद, तथा लोकशिक्षा के मूलभूत तत्त्व।
- कबीर के काव्य की भाषा, शैली, तथा प्रतीकों का विश्लेषण।
- कबीर साहित्य के साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्व का मूल्यांकन।

1.3 गुरूदेव को अंग पद

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार ।

लोचन अनंत उघारिया, अनंत दिखावनहार ।।1.

सन्दर्भ एवं प्रसंग- प्रस्तुत साखी महात्मा कबीरदास द्वारा रचित कबीर ग्रन्थावली के "गुरुदेव कौ अंग" से अवतरित है। सतगुरु दिव्य दृष्टि से सम्पन्न है। उसकी महत्ता, महिमा अनिवर्चनीय है। उसने अनन्त कृपा करके शिष्य को अपरिमेय शक्ति प्रदान की है:

व्याख्या- सतगुरु की महिमा अनन्त है। उसकी महत्ता महिमा का वर्णन नहीं हो सकता है। उसने शिष्य के प्रति अनन्त उपकार किया है। उसकी असीम कृपा से अनन्त अर्थात् ज्ञान के चक्षु उद्घाटित हुए। उसकी असीम कृपा से अनन्तु, निराकार, निर्विकार ब्रह्म के दर्शन हुए।

राम-नाम कै पटंतरै, देबे कौं कछु नांहि।

क्या ले गुरु संतोषिए, हौंस रही मन मांहि ।। 2 ।।

प्रसंग- यह साखी कबीरदास द्वारा रचित "गुरुदेव कौ अंग" से ली गई है। गुरु के द्वारा प्राप्त कर लेने के लिए शिष्य के मन में कृतज्ञता का भाव प्रकट किया जा रहा है।

व्याख्या- शिष्य को गुरु के द्वारा राम-नाम रूपी बहुमूल्य वस्तु दी गई है। गुरु के प्रति इसके लिए शिष्य बहुत ही कृतज्ञ अनुभव करता है। वह इस आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त करने के बाद भेंट में अपने गुरु को कुछ देना चाहता है किन्तु उसके मन में यह संकोच व्याप्त हो रहा है कि गुरु ने तो राम-नाम का ऐसा अमूल्य मंत्र दिया है कि जिससे मोक्ष तक प्राप्त हो सकता है किन्तु मैं जो भी वस्तु गुरु दक्षिणा के रूप में दूँगा, वह उसकी तुलना में नगण्य होगी। इसलिए गुरु की सेवा में क्या वस्तु लेकर जाये कि गुरु को संतुष्ट कर सके, यह चिंता शिष्य को मन में व्यथित कर रही है। हाँ, उसे मन में उल्लास तो बहुत है, कि गुरु के इस महामंत्र के बदले गुरु को सब कुछ दे दिया जाए, किन्तु वह यह भी सोचती है कि सब नगण्य ही होगा, यह संकोच का भाव तुरंत सताने लगता है।

विशेष-

(1) गुरु द्वारा प्रदत्त गुरुमंत्र (राम-नाम को स्मरण करने का उपदेश) इतना महान् माना गया है कि इसकी तुलना संसार की किसी वस्तु से नहीं की जा सकती।

(2) इतना अमूल्य गुरुमंत्र देने वाला गुरु भी कितना महान है, जिसके प्रति अत्यंत कृतज्ञ होने का भाव शिष्य द्वारा व्यक्त किया गया है।

(3) गुरु के प्रति शिष्य के मन में भेंट समर्पण करने का अपार उत्साह भी दृष्टव्य है।

(4) भाषा- सरल, सुबोध एवं सर्वसाधारणोचित है।

(5) शिष्य (आश्रय) के हृदय में गुरु (आलंबन) के प्रति गद्‌गद् होने की (मौगंध भाव) व्यंजना किए जाने से (गुरु) भक्ति रस का सुंदर परिपाक हो रहा है।

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाहया एक।

लागत ही मैं मिल गया, पड्या कलेजै छेक ॥ 3॥

प्रसंग- यह साखी कबीरदास द्वारा रचित "गुरुदेव कौ अंग" से ली गई है। सत्यगुरु के ज्ञानोपदेश का प्रभाव बताया गया है।

व्याख्या- प्रस्तुत साखी में शिष्य (साधक) अपने आध्यात्मिक गुरु को एक सच्चे शूर-वीर के बराबर मानता है क्योंकि शूरवीर एक ही बाण में काम तमाम कर देते हैं, उसी प्रकार गुरु भी एक शब्द के ज्ञान से शिष्य के भीतर एक प्रभाव छोड़ देता है, जिससे उसके भीतर का अहंकार समाप्त हो जाता है। यही कारण है कि गुरु के एक शब्द का इतना व्यापक प्रभाव माना गया है कि शिष्य (साधक) के अंतस् में इस शब्द रूपी बाण के लगते ही अहंकार तो विलीन हो जाता है और हृदय तक बिधता चला जाकर वह शब्द रूपी बाण अपना रूपक प्रभाव छोड़ता है।

विशेष

(1) सतगुरु साँचा सुरिवाँ में रूपक अलंकार की योजना करके ऐसा धनुर्विद के रूप में गुरु को देखा गया जिसका निशाना अचूक होता है।

(2) कलेजे को चीरता चला जाने वाला बाण यहाँ अप्रस्तुत है, जो गुरु के शब्दों (उपदेशो) के लिए प्रयुक्त होने से प्रभावी बिम्ब निर्माण करने में सफल हुआ है।

(3) अलंकार 'सद्‌गुरु' साँचा, सूरिवाँ, अनुप्रास, 'सबद' उपमान का उल्लेख से रूपकातिश्योक्ति ।

ना गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव ।

दून्यूँ बड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव ॥4॥

प्रसंग- यह साखी कबीरदास द्वारा रचित "गुरुदेव कौ अंग" से ली गई है। लोभी गुरु लालची चेला दोनों का ही कल्याण असंभव है, इस सत्य का उद्घाटन कवि कबीर ने प्रस्तुत साखी में किया है-

व्याख्या- जब किसी साधक को योग्य ज्ञानी, तत्वान्वेषी गुरु नहीं मिला, तब किसी प्रकार के कल्याण की आशा करना व्यर्थ है। इतना ही नहीं यदि साधक भी ठीक ढंग से पूर्णरूपेण शिष्यत्व ग्रहण नहीं करता, तब भी कल्याण नहीं हो सकता। कबीरदास जी की मान्यता यह है कि जब तक पहुँचा हुआ गुरु न मिले और साधक उसकी ठीक से शिष्यता ग्रहण न करे, तब तक उसकी मुक्ति होना संभव नहीं, क्योंकि इस संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए लालच को त्यागना पड़ता है। दुर्भाग्य से जब गुरु और शिष्य दोनों ही लालच के शिकार हों और अपने-अपने दाँव पर चौकन्ने रहकर घात में लगे रहते हों, तब वे एक-दूसरे को धोखा ही देंगे। ऐसे लोभी गुरु और लालची चेला दोनों ही संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए मानो पत्थर की नाव पर बैठकर इस संसार रूपी समुद्र को पार करना चाहते हैं। इसका दुष्परिणाम यही होगा कि दोनों ही बीच धार में डूबकर मर जाएंगे। इस संसार रूपी सागर से पार जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

विशेष

(1) शिष्यत्व ग्रहण करना और सद्गुरु का मिलना दोनों पक्षों का सत्य-मार्ग ग्रहण करना आवश्यक माना गया है।

(2) 'धारा' यहाँ संसार रूपी समुद्र का 'रूपक' खड़ा करने के लिए प्रयुक्त है।

(3) 'पाथर की नाव' उस कच्चे या अधूरे साधन का प्रतीक है, जो अज्ञानी गुरु और लोभी शिष्य के द्वारा भवसागर पार करने के लिए अपनाया जाता है।

सतगुरु हम सूँ रीझि करि, एक कह्या प्रसंग।

बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ।।5।।

प्रसंग- यह साखी कबीरदास द्वारा रचित "गुरुदेव कौ अंग" से ली गई है। कबीरदास ने इस साखी में सत्गुरु की महिमा का उल्लेख किया है।

व्याख्या- कबीरदास जी कहते हैं कि सत्गुरु ने हमसे प्रसन्न होकर मुझे एक उपदेश दिया। उसका प्रभाव यह हुआ कि जिस तरह बादल के बरसने से सम्पूर्ण संसार जलमग्न हो जाता है, उसी तरह भगवद् भक्ति से हमारा सारा शरीर ओत-प्रोत हो गया है। भक्ति (प्रेम) से शरीर तथा मन पवित्र हो गये हैं।

साहित्यिक वैशिष्ट्य-

(1) 'भोजि गया सब अंग' में भक्ति रस के उद्रेक का उल्लेख किया गया है।

(2) 'बरस्या बादल प्रेम का' में रूपक अलंकार का सौन्दर्य उत्पन्न किया गया है। 'बरस्या बादल' में अनुप्रास अलंकार है।

(3) 'बरस्या' क्रिया में याकारान्तता से कबीर की भाषा पर पंजाबी भाषा का प्रभाव देखा जा सकता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. सतगुरु की महिमा को कबीरदास ने _____ के माध्यम से व्यक्त किया है।
2. 'राम-नाम कै पटंतरै' में शिष्य के मन में गुरु के प्रति _____ का भाव प्रकट किया गया है।
3. 'सतगुरु साँचा सूरिवाँ' में गुरु के शब्द को _____ के समान बताया गया है।
4. 'ना गुरु मिल्या न सिष भया' साखी में लोभी गुरु और लालची शिष्य को _____ पर चढ़ने के समान बताया गया है।

1.4 सुमिरन को अंग पद

कबीर कहता जात हूँ सुणता है सब कोड़।

राम कहें भला होइगा, नहिं तर भला न होड़ ॥1 ॥

प्रसंग- यह साखी कबीरदास द्वारा रचित "सुमिरन कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीरदास जी कहते हैं कि मैं यह निरन्तर प्रस्थापित करता आ रहा हूँ कि राम-नाम जपने से ही कल्याण होगा अन्यथा आचरण में कल्याण सिद्ध नहीं होगा; इस बात को सुनते तो सब हैं, किन्तु आचरण नहीं करते।

विशेष- शब्द-योजना से कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हुई है।

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहीं राम।

ते नर इस संसार में, उपजि भये बेकाम ।।2।।

प्रसंग- यह साखी कबीरदास द्वारा रचित "सुमिरन कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- जिनके हृदय में न तो प्रेम ही है एवं न प्रेमानन्द तथा न जिनकी वाणी राम नाम का उच्चारण करती है, वे मनुष्य इस संसार में आकर व्यर्थ ही नष्ट हो गये। उन्होंने अपने जीवनोद्देश्य को पूर्ण नहीं किया।

साहित्यिक वैशिष्ट्य- कवि ने जीवन का उद्देश्य 'रामनाम' को बनाने का उपदेश दिया है।

लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार। कहौ संतौ क्यूं पाइये दुरलभ हरि दीदार ॥

प्रसंग- यह साखी कबीरदास द्वारा रचित "सुमिरन कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि हे सन्त जनो! हरि दर्शन अत्यन्त कठिन है क्योंकि उनका निवास-स्थान बहुत दूर है, साधना का पथ भी बड़ा जटिल है जिसमें काम आदि डाकुओं के बहुत से भय हैं।

साहित्यिक वैशिष्ट्य- 'दूरि घर' से बह्य की अगम्यता तथा अगोचरता, 'विकट पंथ' से साधना की कठिन स्थली और 'बहु मार' से सांसारिक भयों की तरफ इंगित किया है।

कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति ।

तेल घट्या बाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति ।।3।।

प्रसंग- यह साखी कबीरदास द्वारा रचित "सुमिरन कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! जब तक तेरे शरीर रूपी दीपक में जीवन रूपी वर्तिका है, तब तक तू सांसारिक भ्रमों एवं चिन्ताओं से मुक्त होकर राम नाम का स्मरण कर। व्यर्थ आलस्य-सुषुप्ति में अपना जीवन मत गँवा, क्योंकि जब श्वास रूपी तेल समाप्त हो जाने पर जीवन-वर्तिका बुझ जायेगी तब अहर्निश चिरनिद्रा (मृत्यु) में ही सोवेगा, अर्थात् प्रभु भक्ति के लिए ही तुझे यह जीवन मिला है।

विशेष-रूपकातिशयोक्ति ।

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।

आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौं काल ।।4 ।।

प्रसंग- यह साखी कबीरदास द्वारा रचित "सुमिरन कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि एकमात्र प्रभु नाम स्मरण ही समस्त तत्वों का सार है और इसके अतिरिक्त हरि भक्ति के अन्य सांसारिक साधन जाल है जिनमें से निकलने का प्रयत्न करने पर मनुष्य और फँस जाता है। मैंने सांसारिक साधनों का आदि और अवसान अथवा अथ से इति तक अवलोकन करके देख लिया, वे काल स्वरूप विनाशकारक हैं।

विशेष-रूपक अलंकार ।

1.5 विरह को अंग पद

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।

जे जन बिछुटे राम सूं, ते दिन मिले न राति । ॥1 ॥

प्रसंग- यह साखी कबीरदास द्वारा रचित "विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- रात्रि की बिछुड़ी हुई चकवी अपने चकवे से प्रभात के आगमन पर मिल जाती है, किन्तु जो राम से वियुक्त हैं वे तो दिन या रात कभी उनसे मिल नहीं पाते।

विशेष- 1. एक प्रकार से कबीर के इस वियोग का उद्दीपन विभाव-वर्णन है जिसमें विरहिणी आत्मा को एक वियुक्तयुग्म का मिलन देखकर अपना मिलना खटकता है।

2. यह विश्वास है कि चकवा और चकवी दिन छिपते ही अलग-अलग हो कर एक-दूसरे के विरह में तड़पते हैं और प्रभात में मिल जाते हैं।

बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ।

राम बियोगी ना जिब, जिवै तो बौरा होइ ।।2।।

संदर्भ एवं प्रसंग - प्रस्तुत साखी 'कबीर' द्वारा रचित "विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- विरह रूपी सर्प शरीर की बांबी में घुसा बैठा है, उसे कोई भी मंत्र (साधक) बाहर निकालने में समर्थ नहीं हो सकता। प्रभु का वियोगी तो जीवित ही नहीं रह सकता, वह जीवन-मुक्त हो जाता है तथा अगर जीवित रहता है तो सांसारिक कर्तव्यों आदि से पूर्ण असंपृक्त हो जाता है जिसे लोग पागल कहने लगते हैं।

विशेष (1) प्रथम चरण में सर्प को पकड़ने की क्रिया से विरह की तुलना है, बांबी में से सर्प को मंत्र बल से निकाल कर वशीकृत किया जाता है। (2) रूपक अलंकार।

अंखड़ियां झांई पड़ी, पंथ निहारि निहारि ।

जीभड़ियां छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि ।।3।।

प्रसंग- यह साखी कबीरदास द्वारा रचित "विरह कौ अंग" से ली गई है।

संदर्भ- प्रस्तुत साखी में प्रियतम के वियोग में दुःखी विरहिणी आत्मा की दशा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या- प्रियतम के वियोग में विदग्ध विरहिणी नायिका रूपी आत्मा कहती है कि प्रियतम राम का मार्ग देखते-देखते मेरी आंखों में झांई पड़ गई है अर्थात्

मेरी आंखों से अब कुछ दिखाई नहीं देता है एवं उसका नाम रटते-रटते मेरी जिह्वा में छाले पड़ गये हैं।

विशेष-

(1) अलंकार 'पड़ी-पंथ' में अनुप्रास एवं 'निहारि-निहारि' और 'पुकारि-पुकारि' में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार है।

(2) यहां राम का तात्पर्य दशरथ पुत्र नहीं, सारे संसार में रमे बह्य से है।

कै बिरहिन कूँ मीच दे, कै आपा दिखलाइ।

आठ पहर का दाझणां, मोपें सह्या न जाइ ।। 4 ॥

प्रसंग- यह साखी "विरह कौ अंग" से ली गई है। प्रस्तुत साखी में विरहिणी मृत्यु का वरण उत्तम समझती है यदि प्रियतम अपने दर्शन न दे। विरह की आग में रात-दिन का जलना उससे सहन नहीं होता ।

व्याख्या- वियोग कातर कबीर ईश्वर से आग्रहपूर्वक कहते हैं कि रात-दिन का विरह दाह अब मेरी सहनशक्ति की सीमा से बाहर हो गया है। अतः ऐसी स्थिति में या तो मेरी जीवन-लीला ही समाप्त कर दो या फिर अपना साक्षात्कार कराओ। तुम्हारे दर्शनों के बिना, विरह-वेदना-दग्ध जीवन की तुलना में मृत्यु ही मेरे लिए उचित जान पड़ती है।

विशेष

(1) भाव यह है कि विरह-व्यथा में रात-दिन आठों पहर का संतप्त होना, अब मुझसे सहा नहीं जाता ।

(2) वाकवैशिष्ट्य ध्वनि के रूप में आत्मा-परमात्मा का संबंध व्यक्त हो रहा है।

(3) प्रियतम पर प्रेमाधिकार की व्यंजना, विरह-विदग्धता का चित्रण एवं प्रिय-मिलन की तीव्र आकुलता इस दोहे की विशेषता है।

सब रंग तंत रबाब तन, विरह बजावै नित्त ।

और न कोई सुणि सकै, साईं के चित्त ।। 5 ।।

प्रसंग- यह साखी "विरह कौ अंग" से ली गई है। प्रस्तुत साखी में संत कबीरदास बतातें हैं कि इस शरीर में अनहदनाद किस प्रकार हुआ करता है, यह स्पष्ट कर रहे हैं-

व्याख्या- शरीर की नसें तांत के समान हैं, और शरीर रबाब बाजे के समान हैं और विरह के कारण यह नित्य बजता रहता है परंतु उसको कोई और नहीं सुन सकता। या तो आत्मा सुनती है या फिर आत्मा के रूप में निवास करने वाला परमात्मा सुनता है।

भाव यह है कि इस शरीर पर विरह का नित्य प्रभाव पड़ता है परंतु इसी तंत्री के स्वर का या तो मेरा प्रियतम परमात्मा सुनता है या मेरा चित्त। इसके अतिरिक्त कोई उसे सुनने में समर्थ नहीं है।

विशेष-

(1) अलंकार-सांगरूपक 'बिरहि-बजावै, 'सुणि सकै' में अनुप्रास ।

(2) आत्मा का जब परमात्मा से विरह होता है तब शरीर और मन की क्रियाओं में ईश्वर-प्रेम एक विशेष राग उत्पन्न कर देता है। भक्त का सारा जीवन ही संगीत हो जाता है।

1.6 ज्ञान विरह को अंग पद

दौं लागी साइर जल्या, पंधी बैठे आइ।

दाघी देह न पालवै, सतगुर गया लगाय ॥1 ।।

प्रसंग- यह साखी संत कबीरदास द्वारा रचित "ज्ञान-विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- ज्ञानाग्नि के लगने से वासना का सागर भस्म हो गया और नवीन सृष्टि में (ज्ञानयुक्त होने पर) वैराग्य, विवेक, करुणा आदि गुणों के पक्षी आकर चहचहाने लगे। इस दग्ध वासना-शरीर का मैं पुनः पल्लवित नहीं होने दूंगा क्योंकि सतगुरु ने ज्ञान-अग्नि लगा दी है।

विशेष- रूपकातिशयोक्ति अलंकार द्वारा परम सिद्धि रूपी वस्तु ध्वनित हुई है।

अहेड़ी दौं लाइया, मृग पुकारे रोड़।

जा बन में क्रीला करी, दाझत है बन सोइ ॥2॥

प्रसंग- यह साखी संत कबीरदास द्वारा रचित "ज्ञान-विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- सद्गुरु रूपी आखेटक ने माया के विषय-वासनायुक्त वन में ज्ञान की अग्नि लगा दी। जीव रूपी मृग यह पुकार कर रो उठे कि जिस वन में हमने क्रीड़ायें कर सुख भोग प्राप्त किया वही जल रहा है।

विशेष- मृगों को पकड़ने या मारने के लिए आखेटक सम्पूर्ण वन में आग लगा देते हैं। वन में आग लगती देख मृग सम्मुख आ जाते हैं और आखेटक उन्हें अपने बाणों का लक्ष्य बना लेता है। यही रूपक कबीर ने यहाँ प्रयुक्त किया है।

हिरदा भीतरि दौं बलै, धूवां न प्रगट होई।

जाकै लागी सौ लखौ, के जिति लाइ सोई ।।3।।

संदर्भ एवं प्रसंग- यह साखी संत कबीरदास द्वारा रचित "ज्ञान-विरह कौ अंग" से ली

गई है।

व्याख्या- हृदय के भीतर प्रेम की दावाग्नि धधक रही है किन्तु उसका धुआं प्रकट नहीं होता, वह तो भीतर ही भीतर जलती रहती है। इस अग्नि का अनुभव तो दो ही कर सकते हैं, या तो वह जिसके हृदय में यह अग्नि धधकती है और या फिर जो इस अग्नि को लगाने वाला है। शेष संसार इस अग्नि का धुंआँ अर्थात् कुछ भी चिन्ह नहीं देख पाता ।

पाणी मांहें प्रजली, भई अप्रबल आगि।

बहती सलिता रह गई, मंछ रहे जल त्यागि ।।4।।

प्रसंग- यह साखी संत कबीरदास द्वारा रचित "ज्ञान-विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- विषय-वासना रूपी जल में ज्ञान की आग लगाकर तीव्र वेग से फैल गई। ज्ञान ने सम्पूर्ण माया बन्धन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। माया की सरिता का प्रवाह रुक जाने से जीवों ने जल-संसार का परित्याग कर दिया; अर्थात् वे जीवन्मुक्त हो गये।

विशेष- इस साखी में सिद्ध नाथों के रुढ़ प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।

1.7 कबीरदास के प्रमुख पद

संतो भाई आई ग्यान की आंधी।
भ्रम की टाटी सरै उड़ानी, माया रहै न बांधी।
दुचिते की है यूंनी गिरानी, मोह बलौड़ा टूटा।
त्रिस्ना छांनि परी घर ऊपरि, कुबुधि का भांडा फूटा।
जोग जुगति करि संतौ बांकी, निरच चुवे न पांणी।
कूड़ कपट छाया का निकस्या हरि की गति जब जांणी ।
आंधी पीछैं जो जल बढ़ा, प्रेम हरि जन भीनां।
कहै कबीर बांन के प्रगटे उदित भया तम बीनां ।।

संदर्भ प्रस्तुत- पद संत कबीर द्वारा विरचित है। इस पद में उन्होंने सांग रूपक अलंकार के माध्यम से इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि जब ज्ञान रूपी आंधी चलती है, तो उसके कारण माया मोह रूपी छप्पर आदि नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या- साधु-संतों को संबोधित करते हुए कबीर कहते हैं कि अरे भाई संतों! मेरे अंतर्मन में (इस जगत में ज्ञान की आंधी आई हुई है) ज्ञान की इस आंधी के कारण मेरे मन पर जो भ्रम की टटिया घेरे हुई थी, वह उड़ गई हैं तथा उसको बांधने वाले माया के बंधन टूट गए हैं। (टटिया बनाते समय अरहर की लकड़ियों या सरकंडों को पतली रस्सी द्वारा कसकर बांध देते हैं) मेरे अंतर्मन की टटिया पर जो तृष्णा-रूपी छप्पर पड़ा हुआ था और उस छप्पर को संभालने के लिए द्विविदा रूपी दो थूनियां लगी हुई थीं, वे भी ज्ञान की आंधी के जोर से गिर पड़ी हैं और छप्पर के नीचे लगा बलेड़ा भी टूटकर गिर गया है। बलेड़ा तथा

थूनियों के टूट जाने के कारण मेरे मन पर पड़ा हुआ तृष्णा-रूपी छप्पर भी जमीन पर आ गिरा है, जिससे दुर्बुद्धि रूपी बर्तन टूट गए हैं।

कबीर आगे कहते हैं कि अरे संतों! वैसे तो मैंने तृष्णा-रूपी छप्पर को बड़ी समझ-बूझ पूर्वक इस प्रकार बांधा था कि उसमें से पानी न चुए उसमें होकर ज्ञान तथा हरि-प्रेम रूपी जल न चू सके तो भी प्रभु कृपा के कारण ज्ञान-रूपी आंधी ने मेरी तृष्णा के छप्पर को नष्ट भ्रष्ट कर डाला है और जब से मुझे प्रभु की गति का पता चल गया है, मेरे शरीर का कपट-रूपी कूड़ा ज्ञान की आंधी में उड़ गया है। कबीर कहते हैं कि इस ज्ञान की आंधी के पश्चात् हरि-प्रेम रूपी जल की जो वर्षा हुई है उसने मुझे प्रेम-जल से भिगो दिया है-अर्थात् मेरे हृदय में जब ज्ञान उत्पन्न हो गया तो उसके फलस्वरूप मेरे माया मोह आदि विकार नष्ट हो गए तथा इन विकारों के नष्ट हो जाने पर जब मैं हरि-भजन की ओर उन्मुख हुआ, तो मैं प्रभु के प्रेम रूपी जल में भीग उठा हूं। अंतिम पंक्ति में कबीर ने यह भाव व्यक्त किया है कि ज्ञान-रूपी सूर्य के उदय हो जाने पर अज्ञान रूपी अंधकार क्षीण पड़ गया है।

पंडित बाद बदते झूठा।

राम कह्यां दुनिया गति पाव जे दाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई।

पावक कह्यां पाव जे दाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई।

भोजन कह्यां भूष जे भाजै, तौ सबु कोई तिरिजाई।

नर कैं साथि सूवा हरि बौले, हरि परताप न जानै।

जो कबहूं उड़ि जाइ जगल मैं बहुरिन सुरतै आनै।

सांची प्रीति विषै माया सूं हरि भगतन तूं हांसी।

कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ, बांध्यी जमपुर जासी ।।

संदर्भ प्रस्तुत पद में संत कबीर ने इस तथ्य पर बल दिया है कि मात्र तोते की तरह राम-राम रटने से किसी को मोक्ष नहीं मिल सकता, जैसा कि पंडित लोग

कहा करते हैं अपितु राम नाम के मर्म को समझ लेने पर ही मोक्ष मिल सकता है।

व्याख्या- कबीर पंडितों को चुनौती देते हुए कहते हैं कि तुम जो यह बात कहते हो कि राम राम रटने से मोक्ष मिल जाएगा, यह बात बिल्कुल मिथ्या है। तुम्हारी यह बात तो वैसी ही विस्तार है जैसे यह कहना कि खांङ खांड कहने से मुंह मीठा हो जाएगा-अर्थात् जैसे खांड-खांड कहने मात्र से मुंह मीठा नहीं हो सकता है, उसी प्रकार राम-राम कहने से मोक्ष नहीं मिल सकता । इसी प्रकार से अन्य तर्क देते हुए कबीर आगे कहते हैं कि आग आग कहने से पांव जल जाएं, पानी-पानी कहने से प्यास बुझ जाएं, भोजन-भोजन कहने मात्र से भूख मिट जाए तो राम-राम कहने मात्र से सब किसी का उद्धार भी हो सकता है, किन्तु जैसे कि उपर्युक्त कार्यों का होना संभव नहीं उसी प्रकार राम-राम रटने से मोक्ष नहीं मिल सकता है।

बिना मर्म को समझे हुए राम-नाम के रटने की निरर्थकता को उभारते हुए कबीर कहते है कि स्वामी (मालिक) द्वारा पढ़ाए जाने पर तोता भी उनके साथ-साथ राम का नाम रटता या बोलता रहता है, किन्तु वह राम नाम के मर्म और महत्व को नहीं समझता। यही कारण है कि अपने मालिक के यहां तो वह राम-राम रटता रहता है, किन्तु वह जंगल में उड़ जाये तो उसे फिर राम के नाम का स्मरण नहीं आता-यह स्वेच्छा से राम के नाम का स्मरण नहीं करता है। कबीर के कहने का अभिप्राय यह है कि राम के नाम के प्रताप को समझे बिना उसका बार-बार उच्चारण करने वाले लोगों की तोता रटत का कोई महत्व नहीं है।

अंतिम दो पंक्तियों में कबीर ने यह भाव-व्यक्त किया है कि जो लोग भोग-विलास तथा माया में वशीभूत होकर अन्य सांसारिक प्रलोभनों से निमग्न रहते हैं और हरि-भक्तों का उपहास करते रहते हैं, जिनके हृदय में ईश्वर के प्रति सच्चा प्रेम भाव-उत्पन्न नहीं हुआ है, वे लोग निश्चय ही यम के पाश में बंधकर

यमपुरी ले जाए जाएंगे उन्हें नरक में बास और वहां की यातनाओं को सहन करना पड़ेगा।

हम न मरै मरिहैं संसारा,

हम कूं मिल्या जियावनहारा ।।

अब न मरौं मन मानां, तेई मूए जिनि रांम न जांनां।

साकत मरै संत जन जीवै, भरि भरि राम रसांइन पीवै ।।

हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं, हरि न मरै हंम काहे कूं मरिहैं।

कहैं कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा ।।

प्रसंग- कबीरदास कहते हैं कि मन के प्रभु की तरफ लग जाने से जीव अमरत्व को प्राप्त हो जाता है।

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि हम नहीं मरेंगे, यह माया रूपी संसार ही नष्ट हो जायेगा। हमें तो अमरत्व प्रदान करने वाले आत्मतत्त्व की प्राप्त हो गई है। मैं अब नहीं मरूंगा, क्योंकि मैंने मरने न मरने के रहस्य को समझ लिया है।

हम तौ एक एक करि जांनां ।

दोड़ कहें तिनहीं कौं दोजग, जिन नाँहिन पहिचांनां। टेक ॥

एकै पवन एक ही पांनीं, एक जोति संसारा।

एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजनहारा ।।

जैसें बाढ़ी काष्ट ही कादै, अगिनि न काटें कोई।

सब घटि अंतरि तू ही व्यापक, धरै सरूपैं सोई ।।

माया मोहे अर्थ देखि करि, काहै कूं गरबांनां ।।

निरभै भया कछू नहीं ब्यापै, कहै कबीर दीवांनां ।।

प्रसंग- पूर्व पद के समान ।

व्याख्या- कबीरदास कहते हैं कि मैंने तो परमात्मा को सिर्फ एक के ही रूप में जाना है। जो परमात्मा के बारे में द्वैतभाव रखते हैं जो ईश्वर तथा जगत् को भिन्न मानते हैं, उन्होंने परमात्मा के रूप को नहीं जान पाया है, उनके लिए

नरक बना हुआ है अर्थात् ऐसे लोग ही नरक में पड़ते हैं। पवन, पानी, प्रकाश आदि रूपों में वस्तुतः एक ही सत्ता व्याप्त है। इस संसार में एक ही पवन परिव्याप्त है। चारों तरफ एक ही जल है, एक ही परम प्रकाश इस सारे संसार में दिखाई देता है। एक ही मिट्टी से समस्त शरीर रूपी बर्तन बनाए गए हैं तथा इन सबको बनाने वाला भी एक ही है। जिस तरह बढ़ई तरह-तरह की वस्तुएं बनाने के लिए लकड़ी को काटता है लेकिन उसमें व्याप्त अग्नि को नहीं काट पाता है। अग्नि लकड़ी के प्रत्येक टुकड़े में अक्षुण्ण बनी रहती है। उसी तरह परब्रह्म अक्षुण्ण रूप से प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त रहता है। पदार्थ के नष्ट होने का अर्थ उसके बाह्य रूप का ही नाश होना है, उसमें व्याप्त परम तत्त्व का नहीं। कबीरदास मानव मात्र को सावधान करते हुए कहते हैं कि तुम माया के भ्रम जाल में पड़कर इस धन-दौलत के ऊपर क्यों गर्वित होते हो? मेरी तरह ईश्वर प्रेम में मस्त भक्तों का कहना है कि निर्भीक हो जाने पर माया का मोह नहीं सताता है।

अलंकार- उदाहरण-जैसे बाढ़ों ।

विशेष- साहाँ एकेश्वरवाद एवं सर्वात्मवाद का प्रतिपादन है।

'एक करि जांनां'- हमारा विचार है कि परमात्मा केवल एक ही है, भले ही कोई उसे राम कहे या रहमान ।

मन रे जागत रहिए भाई।

गुरु प्रसादि अकलि भई तोकों, नहीं तर था बेगाना नेडै थें दूरि दूरि नियरा,

जिनि जैसा करि जानां ओ लौं टीका चढ्या बलीडै, जिनि पिया तिनि मानां

उलटे पवन चक्र घट वेधा, सुनि सुरति लै लागी।

अमर न मरै मरै नहीं जीवै, ताहि खोजि बैरागी ।।

अनमें कथा कवन सौं कहिये, है कोई चतुर बिबेकी ।

कहे कबीर गुरु दिया पलीता, सो झल बिरलै देखी।

प्रसंग- कबीर ने इस पद में कबीर को गुरु के ज्ञान के फलस्वरूप जो साधना की श्रेष्ठ उपलब्धि हो उठी, उसकी व्यंजना प्रस्तुत की है।

व्याख्या- रे साधक ! तेरा मन, मन में ही समा गया है अर्थात् तेरी बहिर्मुखी प्रवृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो उठी हैं। गुरु की कृपा से हे साधक! तुझे ज्ञान हो गया है अन्यथा तू अन्य लोगों की तरह परमतत्त्व से अपरिचित ही रहता है। अब तेरे मन की भटकी हुई वृत्तियाँ अपने मूल आधार पर समा गई हैं या व्यष्टि मन उस परम तत्त्व में समा गया है। विषयों की बहिर्मुखी आनन्द-प्रवृत्ति उलटकर आत्मरति की तरफ अभिमुख हो गई है। इस आत्मरति के जल को जिसने पिया है, वही उसका स्वाद जानता है। प्राण वायु ने उलटकर षट्चक्र का भेदन कर दिया है। तुम्हारा ध्यान शून्य तथा सुरत तत्त्व में लग गया है अथवा तुम्हारी सुरति उस शून्य तत्त्व में अनुरक्त हो गई है। जो तत्त्व न आता है, न जाता है, न मरता है, न जन्म लेता है। रे विरक्त साधक! तू उस तत्त्व को शोधकर या अमर तत्त्व चैतन्य कभी मरता नहीं है तथा मूल जड़ तत्त्व कभी प्राणवान नहीं होता, इस सत्य का अनुसन्धान कर। यही तत्त्व सबका स्वरूप है अतः वह अत्यन्त समीप है। लेकिन वह जीव के अहंकार रूप से नितान्त दूर भी है। इस तरह यह तत्त्व जीव से दूर एवं नजदीक दोनों होता है। जिन्होंने इस तत्त्व को जैसा समझा है उनके लिए यह वैसा ही है। जिन्होंने इसे अपने अहंकारी रूप से अलग समझा है। जिन लोगों ने रस तत्त्व का वास्तविक साक्षात्कार किया है, उनकी इसके उपर्युक्त स्वरूप में निष्ठा तथा प्रतिष्ठा हुई है।

साहित्य वैशिष्ट्य-

(1) रूपक, श्लेष, रूपकातिश्योक्ति अलंकार है।

(2) गुरु की कृपा से वृत्तियों का अन्तर्मुखी होना, योग साधना की प्रक्रिया तथा सुरति की स्थिति व्यंजित है।

1.8 सार संक्षेप

कबीरदास एक महान भक्त कवि और संत थे, जिनकी वाणी आज भी भारतीय समाज में गहरी छाप छोड़ती है। उनके पदों में जीवन के साधारण और गहरे सत्य को बहुत सरल भाषा में व्यक्त किया गया है। कबीर की वाणी में भक्ति, मानवता, और समाज सुधार का संदेश मिलता है।

कबीर का जीवन और उनके विचार एक अद्भुत मिश्रण थे। वे न तो हिंदू थे, न मुस्लिम, बल्कि वे मानवता के पुजारी थे। उनका मानना था कि भगवान एक है, और हमें किसी विशेष धर्म या जाति की सीमाओं में नहीं बंधना चाहिए। उन्होंने पाखंड, आडंबर और भेदभाव की आलोचना की और सच्चे आत्मज्ञान की ओर लोगों को प्रेरित किया।

1.9 मुख्य शब्द

1. **प्राणवान**:
   जिसका जीवन शक्ति से भरपूर हो; जो जीवित और सजीव हो।
   - उदाहरण: प्राणवान व्यक्ति कठिन परिस्थितियों में भी आगे बढ़ने की क्षमता रखते हैं।
2. **नितान्त**:
   अत्यधिक, पूरी तरह से, अत्यंत।
   - उदाहरण: यह कार्य नितान्त आवश्यक है।
3. **सुरति**:
   ध्यान, स्मरण, चित्त की एकाग्रता।
   - उदाहरण: ईश्वर की सुरति में डूबा व्यक्ति सदा शांत रहता है।
4. **बहिर्मुखी**:
   जो बाहरी दुनिया की ओर झुका हुआ हो या अपनी भावनाएँ और विचार दूसरों से साझा करता हो।

- उदाहरण: बहिर्मुखी लोग सामाजिक गतिविधियों में अधिक रुचि लेते हैं।

5. **परमतत्त्व**:

   परम सत्य, ईश्वर, ब्रह्म या किसी विषय का सर्वोच्च तत्व।

- उदाहरण: जीवन का उद्देश्य परमतत्त्व को समझना और उसे प्राप्त करना है।

1.10 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. **दिव्य दृष्टि**
2. **कृतज्ञता**
3. **बाण**
4. **पत्थर की नाव**

1.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. पाण्डेय, पी. (2020). *संत कबीर दास के दोहे हिंदी में अर्थ सहित।* किंडल संस्करण।
2. त्रिगुणायत, ग. (2024). *कबीर की विचार धारा.* साहित्य निकेतन।
3. सिंह, ग. न. (2024). *जनम साखी भगत कबीर जी.*
4. ठाकुर, ख. (2024). *कबीर: कविता एवं समाज.* अनुग्या बुक्स।
5. राधा स्वामी सत्संग ब्यास. (2024). *संत कबीर.*

1.12 अभ्यास प्रश्न

उपरोक्त पदों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

1. राम-नाम कै पटंतरै, देबे कौं कछु नांहि।
   क्या ले गुरु संतोषिए, हौंस रही मन मांहि ।।

2. कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति ।
तेल घट्या बाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति ।।
3. चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूं, ते दिन मिले न राति ॥
4. पाणी मांहें प्रजली, भई अप्रबल आगि।
बहती सलिता रह गई, मंछ रहे जल त्यागि ।।

इकाई - 2

सूरदासः व्याख्याएँ

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 सूरसागर के प्रथम स्कंध पद

2.4 सूरसागर (विनय के पद)

2.5 सूरसागर के पद

2.6 सार संक्षेप

2.7 मुख्य शब्द

2.8 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संत सूरदास हिंदी साहित्य के भक्ति काल के महान कवि माने जाते हैं। उनकी रचनाएँ विशेष रूप से श्रीकृष्ण भक्ति पर केंद्रित हैं। सूरदास के काव्य में न केवल भक्ति की गहराई है, बल्कि उसमें मानवीय जीवन के विभिन्न पहलुओं का भी चित्रण है। उनकी रचनाएँ सरल, हृदयस्पर्शी और भावप्रधान हैं, जो लोक भाषा ब्रजभाषा में लिखी गईं। इनके काव्य में श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं, उनकी रासलीलाओं और गोपियों के साथ उनके प्रेम का अद्भुत चित्रण मिलता है।

सूरदास को "भक्त कवियों का सूर्य" कहा जाता है, और उनकी रचनाएँ आज भी साहित्य और भक्ति के क्षेत्र में अप्रतिम स्थान रखती हैं।

2.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- सूरदास की काव्य रचनाओं और उनमें निहित भावों की गहन समझ।
- भक्ति और अध्यात्म के माध्यम से आध्यात्मिकता की अभिव्यक्ति।
- श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं और उनकी दिव्यता का साहित्यिक वर्णन।
- प्रेम, करुणा, वात्सल्य और विरह जैसे मानवीय भावों का सजीव चित्रण।
- ब्रजभाषा में लिखी उनकी रचनाओं द्वारा भारतीय संस्कृति और भाषाई समृद्धि का संरक्षण।

2.3 सूरसागर के प्रथम स्कंध पद

सरन गए को, को न उबाौ।
जब जब भीर परी संतनि कौ, चक्र सुदर्शन तहाँ सम्भार्यो।
भयौ प्रसाद जु अंबरीस को, दुरबासा को क्रोध निवार्यो।
ग्वालिन हेत धौ गोबर्धन, प्रकट इन्द्र को गर्व प्रहार्यो।
कृपा करी प्रहलाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस माौ।
नरहरि रूप धरयौ करूनाकर, छिनक माहि उन नखनि बिदार्यो।
ग्राह ग्रसत नज कौ जल बूड़त, नाम लेत वाको दुख टार्यो।
सूर स्याम बिनु और केरे को, रंग भूमि मैं कंस पछार्यो ।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यांश महाकवि सूरदास द्वारा रचित सूरसागर से अवतरित है। यहाँ भगवान के अशरण-शरण रूप पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या- किस शरणागत को भगवान ने नहीं उबारा ? जब-जब सन्तों पर विपत्ति पड़ी, वहीं सुदर्शन चक्र संभाल लिया। जो अम्बरीष पर प्रसन्न हो गये तथा दुर्वासा

के क्रोध को रोक दिया। ग्वालिनों के लिए गोवर्द्धन धारण किया; प्रकट होकर इन्द्र के गर्व पर प्रहार किया। भक्त प्रहलाद पर कृपा की, खम्भे को फाड़कर हिरणाकश्यप को मारा। करुणाकर भगवान् ने नृसिंह रूप धारण किया, क्षण में ही सीने को नाखूनों से विदीर्ण कर दिया। ग्रास से ग्रसे जाते, जल में डूबते हाथी के दुःख को नाम लेते ही हटा दिया। सूरदास कहते हैं, श्याम के बिना और कौन कर सकता है, रंगभूमि में उन्होंने कंस को पछाड़ दिया।

विशेष- दावान्त अलंकार ।

(2) भगवान् की शरणागत की रक्षा का वर्णन किया गया है।

जसुमति मन अभिलाष करै।

कब मेरो लाल घुटुरुवनि रेंगे, कब धरती पग द्वैक धरै।

कब द्वै दांत दूध के देख, कब तोतरे मुख वचन करै।

कब नंदहिं बाबा कहि बोले, कब जननी कहि मोहि ररै।

कब मेरौ अंचरा गहि मोहन, जोई-सोई कहि मोसौं झगरै।

कब धौं तनक तनक कछु खैहें अपने कर सौं मुखहिं भरै ।।

संदर्भ- प्रस्तुत पद्यांश महाकवि सूरदास द्वारा रचित सूरसागर से अवतरित है। यहां मां यशोदा कृष्ण के शीघ्र बड़े होने की कामना कर रही हैं।

व्याख्या- वात्सल्य भाव से भरी मां कृष्ण को देखकर मन ही मन कई अभिलाषा करती हैं-कब मेरा लाल घुटनों के बल चलेगा, कब धरती पर डगमगाते हुए, एक-दो कदम रखेगा, वह शुभ दिन कब आएगा जब मैं अपने लाल के मुख में दूध के दो दांत देखूंगी, कब उसके मुख से तोतले वचन निकलेंगे, कब नंद जी को 'बाबा', 'बाबा' कहकर बोलेगा, कब मुझे मां कहकर प्रेमपूर्ण झगड़ा करेगा (या 'बाबा', 'बाबा', 'मां-मां' की रट लगाएगा), कब मेरा आंचल पकड़कर जिस किसी चीज के लिए मुझसे झगड़ा करेगा, कंब थोड़ा-थोड़ा कुछ खाएगा तथा कब स्वयं अपने हाथों से खाने की वस्तएं लेकर अपना मुंह भरेगा।

विशेष (1) वात्सल्य रस। (2) लोकगीत शैली का प्रभाव ।

किलकत कान्ह घुटुरुनवनि आवत ।

मनिमय कनक नंद कैं आंगन, बिंब पकरिखें धावत ।।

कबहुं निरखि हरि आपु छांह कौं, कर सौं पकरन चाहत। किलकत हंसत राजत है दतियां, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत ।।

कनक-भूमि पर कर-पग-छाया, यह उपमा इक राजति ।

करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा, कमल बैठकी साजति ।।

बाल-दशा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नंद बुलावति ।

अंचरा तर लै ढांकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति ।। (राग धनाश्री)

प्रसंग- कृष्ण की बाल लीला का वर्णन है।

व्याख्या- किलकारी मारते हुए कन्हैया घुटनों के बल चले आ रहे हैं। मणि से बने हुए सुनहले नन्द के आंगन में वे अपनी परछाई को पकड़ने के लिए दौड़ रहे हैं। कभी तो कृष्णजी अपनी छाया को देखकर उसे हाथ से पकड़ना चाहते हैं तथा कभी वे किलकारी मारकर हंसते हैं। उनके दो दाँत दिखाई पड़ते हैं एवं वे अपनी परछाई को बार-बार खोजते हैं। ऐसा करने से आंगन की स्वर्णभूमि की प्रत्येक मणि पर उनके हाथ-पैर की परछाई ऐसी लगती है, मानो पृथ्वी उनके बैठने के लिए कमल का आसन सजा रही हो। कृष्णजी के बचपन के सुख को देखकर यशोदाजी बार-बार नन्दजी को बुलाती हैं। सूरदासजी कहते हैं कि यशोदाजी अपने आंचल के नीचे कृष्णजी को ढककर उन्हें अपना दूध पिलाती हैं।

विशेष- वात्सल्य रस ।

(2) अनुप्रास अलंकार ।

मैया कबहि बढ़ेगी चोटी ?

किती बार मोहि दूध पियतु, भई यह अजहूं है छोटी।

तू तो कहत बल की बेनी, ज्यों है है लांबी मोटी।

काढ़त-गुहत न्हवावत्, जैहे नागिन सी भुई लोटी।

काचौ दूध पियावति, पचि पचि देति न माखन रोटी।

सूर चिरजीवी दोऊ भैया, हरि हलधर की जोरी।

संदर्भ- प्रस्तुत पद्यांश महाकवि सूरदास द्वारा रचित सूरसागर से लिया गया है। सूरदास ने इसमें कृष्ण के बाल्य रूप का चित्रण उतारा है।

व्याख्या- नन्हा कृष्ण माता यशोदा से कहता है-मां मेरी चोटी कब बढेगी ? मुझे कितने ही दिन दूध पीते हुए बीत गए हैं, परंतु यह अभी तक भी छोटी है, तू तो कहा करती थी कि बड़े भाई बलदेव की भांति तुम्हारी चोटी भी लंबी और ज्यादा मोटी हो जाएगी। काढ़ने, कंघी से साफ करने, गुंथने और नहलाने से तेरी चोटी भी सांपिनी की तरह धरती पर लोटने लगेगी। तू मुझे पुचकार-पुचकार कर कच्चा दही दूध पीने को देती रही। मुझे तूने मक्खन रोटी नहीं दी। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण और बलदेव की जोड़ी देर तक जीती रहेगी का चित्रण किया है।

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसौं कहत मोल को लीन्हों, तू जसुमति कब जायौ।
कहा करौ इहि रिस कै मारे खेलन हौं नहीं जात ।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात।
गोरे नंद जसोदा गोरी तू कत स्यामल गात ।
चुटकी दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसकात ।
तू मोही कों मारन सीखीं दाऊहिं कबहूँ न खीझौ ।
मोहन सुख रिस की ये बातें, जसुमति सुनि-सुनि रीझौ।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यांश महाकवि सूरदास द्वारा रचित सूरसागर से अवतरित है। यहाँ श्रीकृष्ण अपने भाई बलराम (दाऊ) की शिकायत अपनी माता यशोदा से कर रहे है।

व्याख्या- माँ से बड़े भाई बलदाऊ की शिकायत करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि माँ ! बलदाऊ मुझे बहुत चिढ़ाते हैं, मुझसे कहते हैं कि हमने तुझे मोल लिया

है, माँ यशोदा ने तो तुझे जन्म दिया ही नहीं। अब मैं तुझसे क्या बताऊँ माँ, मैं तो इसी क्रोध के कारण (कि खेलने जाऊँगा तो दाऊ फिर मुझे चिढ़ाएगा) खेलने तक नहीं जाता। (एक बार नहीं, दो बार नहीं) बार-बार मुझसे कहता है कि अच्छा, सच-सच बता कि माता कौन है तथा पिता कौन है, क्योंकि तू नन्द-यशौदा का पुत्र तो है नहीं, भला कहाँ गौरवर्णी यशोदा एवं नन्द तथा कहाँ तू काले (सॉवले) शरीर वाला, अगर तू नन्द-यशोदा का पुत्र होता तो उनकी तरह या मेरी तरह गोरा-चिट्ठा नहीं होता ? दाऊ की इस बात पर सभी ग्वाल-बाल चुटकी बजा-बजाकर हँसते हैं तथा मुझे जबरन अपने साथ नचाते भी हैं (मैं तो ग्वाल-बालों और दाऊ के इस व्यवहार से बहुत दुखी हो गया हूँ) और एक तू है कि मुझे ही मारना सीखी है (चाहे मेरा कसूर है या नहीं) दाऊ से तो कभी कुछ नहीं कहती। (कहीं ऐसा तो नहीं है कि बलराम ही तेरा पुत्र हो एवं मैं तेरा पुत्र न होऊँ, इसलिए मुझे ही बार-बार मारती है) माँ यशोदा मोहन के (भोले-भाले) मुख से क्रोध भरी यह शिकायत (बाते) सुनकर मन ही मन प्रसन्न हो रही हैं (कि अब मेरा लाल इतना बड़ा तथा समझदार हो गया कि शिकायत भी करने लगा है) लेकिन फिर सचेत होकर कृष्ण के क्रोध को दूर करने के उद्देश्य से कहती है कि हे कान्हा ! सुनो, (तुम्हे शायद पता नहीं है) यह बलराम तो बहुत ही झूठा, चुगलखोर है, और आज से नहीं, बचपन से ही धूर्त (शैतान) है। सूरदास कहते हैं कि माँ कान्ह को विश्वास दिलाने के उद्देश्य से कहती हैं कि हे कान्ह! देख, मैं गोधन की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैं तेरी माता हूँ तथा तू मेरा ही पुत्र है। (तू बेकार में उस शैतान दाऊ की बातों में आकर बुरा मत मान)।

विशेष-(1) वात्सल्य रस ।

(2) बाल सुलभ चेष्टाओं का सुन्दर वर्णन किया गया है।

(3) सूरदास को बाल मनोविज्ञान का पूर्ण ज्ञान या प्रतीत होता है।

2.4 सूरसागर (विनय के पद)

चरन कमल बंदौ हरि राइ !

जाकी कृपा पंगु गिरि लंधै अंधे कौ सब कुछ दरसाइ ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंग चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार-बार बंदौं तिहिं पाइ ।।

सन्दर्भ- प्रस्तुत पद महाकवि सूरदास विरचित 'सूरसागर' के प्रथम स्कन्ध में संकलित 'विनय के पदों' से अवतरित है।

प्रस्तुत पद में महाकवि सूरदास जी अपने आराध्य की वन्दना करते हुए उनके महिमा का गुणगान कर रहे हैं।

व्याख्या- सूरदासजी कहते हैं कि हे ईश्वर मैं आपके कमल रूपी चरणों की वन्दना करता हूँ। जिस ईश्वर की परम कृपा से लंगड़ा व्यक्ति (जो चलने में भी असमर्थ होता है) ऊंचे से ऊँचे पर्वत को पार कर सकता है तथा पूर्णतया नेत्रहीन सब कुछ देखने में समर्थ हो जाता है। बहरा व्यक्ति सुनने लगता है, गूँगा बोलने लगता है एवं अत्यधिक निर्धन व्यक्ति भी राजा की भाँति सिर पर छत्र धारण करके चलने लगता है अर्थात् धन-सम्पदा से युक्त हो जाता है। सूरदास जी कहते हैं कि हे ईश्वर आप अत्यधिक करुणामय हैं, इसी कारण मैं आपकी करुणा का आकांक्षी दास बार-बार आपके चरणों की वन्दना करता हूँ।

विशेष-लपक एवं विभावना अलंकार, ईश्वर की अतुलित सामर्थ्य तथा करुणामयता का वर्णन है।

अविगत- गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगे मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै ।।
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै ।।
मन- बानी कौ अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप-रेख गुन- जाति- जुगति बिनु निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातें सूर सगुन- पद गावै ॥

सन्दर्भ एवं प्रसंग- प्रस्तुत अवतरण महाकवि सूरदासजी द्वारा रचित महाकाव्य 'सूर सागर' के 'विनय के पद' प्रसंग से अवतरित है। प्रस्तुत पद में कवि तत्कालीन

सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर साकारोपासना की श्रेष्ठता को सिद्ध कर रहा है और साथ ही वह निर्गुणोपासना में होने वाली कठिनाइयों की ओर भी संकेत कर रहा है:

व्याख्या- कवि कहता है कि चूंकि निर्गुण ब्रह्म अत्यन्त महिमामय है अतः उसके गुणों व महत्व को पूर्णतः स्पष्ट कर सकना कोई सरल कार्य नहीं है और सच तो यह है कि अगम तथा रहस्यपूर्ण शक्ति को समझकर शब्द बद्ध कर पाना अत्यन्त कठिन कार्य है क्योंकि जिस प्रकार एक वाणी- हीन व्यक्ति किसी मीठे फल को खाकर उसके मधुर आनन्द का अनुभव तो करता है पर वाणी के अभाव में वह उसे प्रकट नहीं कर पाता है। कुछ ऐसी ही स्थिति उस भक्त की भी होती है जो कि ज्ञान, योग तथा आराधना की उपासना के द्वारा अपने आराध्य देव की शक्ति का अनुभव कर उसकी प्रतिमा को अपने मन मंदिर में स्थापित कर लेता है लेकिन वह उसका वर्णन करने में पूर्णतः अक्षम ही होता है।

यहां कवि के कहने का अभिप्राय केवल यही है कि निराकार ईश्वर मन और वाणी का विषय नहीं है क्योकि उसका अनुभव तो केवल वही व्यक्ति कर सकता है जो कि उसके समीप पहुंच पाने की क्षमता रखता हो अन्यथा वह रूप, गुण, रेखा तथा जाति से हीन जन- साधारण की पहुंच के परे होता है। इस प्रकार सूर यहां यह संकेत करना चाहते हैं कि निराकार ब्रह्म की उपासना जन- सामान्य के लिए सन्तोषदायक नहीं है।

सूरदास जी पुनः कहते हैं कि इतना ही नहीं, जन साधारण उस निर्गुण को प्राप्त करने तथा उससे मिलने के लिए कोई रास्ता भी नहीं निकाल पाता है अतः वह उसमें अपने मन को नहीं रमा पाता। अन्त में कवि कहता है कि आचार्यों ने जिस ईश्वर को दुर्बोध कहा है, मैं यहां उसी निर्गुण ब्रह्म के गुणों की चर्चा करता हूं। अर्थात् ब्रह्म में जो गुण हैं, उन्हीं का वर्णन यहां किया जा रहा है। इस प्रकार सूरदास ने, यहां यह संकेत किया है कि ब्रह्म को निर्गुण अर्थात् बिना किसी

गुण का मानना उचित नहीं है क्योंकि ब्रह्म में तो कुछ न कुछ गुण अवश्य हैं और उन्हीं का यहां उल्लेख भी किया जा रहा है।

प्रभु ! हौं सब पतितनि को टीकौ।
और पतित सब दिवस चार के, हौं तो जनमत ही कौ।
बधिक, अजामिल, गनिका तारी और पूतना ही कौ।
मोहिं छाँड़ि तुम और उधारै, मिटै सूल क्यों जी कौ।
कोउ न समरथ अघ करिबै कौ, खैचि कहत हौं लीकौ।
मरियत लाज सूर पतितनि मैं, मोहूं तै को नीकौ ।।

प्रसंग- पूर्ववत् ।

व्याख्या- हे प्रभु! मैं सभी दुष्टों में नायक (अर्थात् सर्वोपरि) हूँ। प्रमाण? अन्य पतित तो केवल चार दिनों (अर्थात् थोड़े समय) से ही पतित हुए हैं जबकि मैं तो जन्म से ही पतित हूँ। (पतित-पावन होने के कारण) आपने बधिक (वाल्मीकि) अजामिल, गणिका एवं पूतना (जैसे पतितो) का उद्धार कर दिया। मेरे मन से यह दुःख कैसे मिटे कि मुझ (जैसे जन्मजात) पतित को छोड़ तुम दूसरे पतितों का उद्धार करते रहे। मेरी तरह पाप करने में समर्थ और कोई भी नहीं है (अर्थात् मैं सर्वोपरि पापी हूँ)। यह बात मैं रेखा खींचकर (अर्थात् पूर्ण विश्वास के साथ) कहता हूँ। सच में तो मैं पतित-समाज में लाजवश मर रहा हूँ कि मुझसे भी अधिक श्रेष्ठ (पतित) और कौन है (जिनका आप मुझसे भी पहले उद्धार करते हो)।

विशेष - थाहाँ पर कवि ने लोकप्रचलित मुहावरों का सटीक प्रयोग किया है। 'बधिक पूतना ही कौं' में पौराणिक अंतर्कथाओं के संकेत हैं।

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ।।
महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा सब्द-रसाल ।
भ्रम-भोयो मन भयो पखावज, चलत असंगत चाल ।।

तृष्ता नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ-तिलक दियो भाल ।।
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहीं काल।
सूरदास की सबै अबिद्या, दूरि करौ नंदलाल ।।

प्रसंग- भक्त और भगवान के मध्य की सबसे भयंकर बाधा है-माया जो भक्त (जीव) को लोभ-मोहादि नाना तरह से लुभाकर न सिर्फ भरमाती है वरन् पथभ्रष्ट भी करती है। माया के वशीभूत हुए जीव की ऐसी ही विवशता-भरी स्थिति को मुखरित करते तथा इससे मुक्ति की याचना करते हुए कवि कहता है-

व्याख्या- हे (इन्द्रियों का पालन करने वाले होने से गोपाल कहलाने वाले) कृष्ण ! (इस माया के वश में होकर) अब तक मैं बहुत नाच चुका हूँ। (इस नृत्य को करने के लिए) मैंने काम-क्रोध के वस्त्र पहिने हैं तथा मेरे कंठ में विषय (लोलुपता) की माला है। महामोह के घुँघरू (मेरे पैरों में बँधे हुए होकर) बजते हैं जिनसे निकले निन्दा के शब्द (माया के वशीभूत होने के कारण मुझे) मधुर प्रतीत होते हैं। भ्रम भोयन है तो मद पखावज जिसके इशारे पर मैं असंगति की चाल चलता हूँ। हृदय के भीतर से तृष्णा संगीत-ध्वनि करती है एवं नाना तरह से ताल देती है। अपनी कटि पर मैंने माया का फेंटा बाँधा है एवं माथे पर लोभ का तिलक लगा रखा है। (इस प्रकार नृत्य की पूरी साज-सज्जा के साथ) करोड़ों कलाएं और नृत्य मुद्राएं दिखाई है। (वह भी इतना मस्त होकर कि) जल-थल तथा समय की सुधि भी मुझे नहीं रही। हे नन्द के पुत्र मेरी सब अविद्या को दूर करो।

(1) अलंकार (क) श्लेष-नाच्यो। (ख) सांगरूपक-समस्त पद में। (ग) अनुप्रास-कोटिक काछी ।

(2) 'मैं नाच्यौ' का प्रयोग एकदम सटीक और सार्थक बन पड़ा है।

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज कौ पच्छी फिर जहाज पर आवै ।।
कमल नैन को छाँड़ि महातम, और देव कौ ध्यावै।

परम गंगा कौ छाँड़ि पियासौ दुरमति कूप खनावै ।।

जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यो, क्यों करील-फल भावै।

सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरि कौन दुहावै ।।

प्रसंग- कवि को अपने इष्टदेव पर अनन्य और अगाध श्रद्धा है। इसी भावना को प्रकट करते हुए वह कहता है-

व्याख्या- मेरा मन (श्रीकृष्ण-भक्ति के अतिरिक्त) और कहाँ पर सुख पा सकता है? (कहीं नहीं, कारण यह है कि वह तो कृष्ण का ही अनन्य उपासक है) जिस तरह किसी जलयान पर बैठे हुए पक्षी को (विस्तृत आकाश में उड़ने पर भी चारों तरह अथाह जल होने के कारण) कहीं और आश्रय नहीं मिलता तथा वह पुनः उसी जलयान पर आता है, उसी तरह मेरे मन को भी किसी अन्य की उपासना से शान्ति नहीं मिलती तथा वह पुनः कृष्ण-उपासना में ही सुख एवं आत्मशान्ति प्राप्त करता है। कमल जैसे (निर्मल और सुन्दर) नेत्रों वाले श्रीकृष्ण के माहात्य या महानता को छोड़कर जो व्यक्ति किसी दूसरे देवता का ध्यान करता है वह तो ऐसा मूर्ख है जो पवित्र गंगा (जल) को छोड़ अपनी प्यास बुझाने के लिए नया कूप खोदे। जिस भ्रमर ने कमल (के पराग जैसे स्वादिष्ट) रस का पान किया हो उसको करेले का (कड़ुवा) फल किस प्रकार अच्छा लग सकता है? ऐसा कौन मूर्ख होगा जो सूर के प्रभु (कृष्ण) रूपी कामना पूर्ति करने वाली धेनु को तजकर बकरी को दुहेगा (जिससे कम से कम सुख भी नहीं मिलता)।

विशेष-

यहाँ पर कवि की अनन्य और अटल भक्ति भावना प्रदर्शित हुई है।

(2) अलंकार (क) दृष्टान्त-जैसे.. आवै, परमम् दुहावै। (ख) उपमा-कमल नैन। (ग) रूपक-प्रभु-कामधेनु

हमारे प्रभु औगुन चित्त न धरौ।

समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।

इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ।

सो दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ।
इक नदिया इक नार कहावत, मेलौ नीर भरौ।
जब मिलि गए तब एक वरन है गंगा नाम परौ।
तन माया, ज्यौं ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ।
कै इनको निरधार कीजिये, कै प्रन जात टरौ।

संदर्भ एवं प्रसंग- प्रस्तुत अवतरण महाकवि सूरदासजी द्वारा रचित महाकाव्य 'सूर सागर' के 'विनय के पद' प्रसंग से अवतरित है। प्रस्तुत पद में भक्त भगवान से अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना कर रहा है। सूरदास अपनी दैन्य- भावना प्रकट करते हैं तथा भगवान की महानता का वर्णन करते हैं:

व्याख्या- हे प्रभु। मेरे अवगुणों (दोषों) पर ध्यान न दीजिये। आपका नाम तो समदरसी है अर्थात् आप सबको समान दृष्टि से देखने वाले हो। अतः आपको मुझ पर उतनी ही कृपा करनी चाहिये कि जितनी अन्य लोगों पर आपकी कृपा है। अतएव अपनी प्रतिज्ञा का पालन करो। एक लोहा तो पूजन कार्य में काम आता है और एक लोहा बधिक के घर छुरे के रूप में है परन्तु पारस पत्थर इस प्रकार की दुविधा में न पड़कर दोनों को खरा सोना बना देता है। एक नदी जिसमें स्वच्छ तथा उज्जवल जल भरा रहता है और एक नाला है जिसमें गन्दा तथा अपावन जल भरा होता है, परन्तु जब दोनों मिल जाते हैं तो दोनों का रंग एक हो जाता है और गंगा शब्द से ही अभिहित किये जाते हैं। इसी प्रकार एक ब्रह्म है और एक जीव है। ब्रह्म स्वच्छ तथा निर्मल है एवं जीवात्मा अज्ञान तथा पाप के कारण अपवित्र है, किन्तु मिलने पर जीव ब्रह्ममय हो जाता है। यह तन माया है, भ्रम है। यही बह्म है परन्तु सूर से सम्बन्ध होने के कारण यह दूषित हो गया है। हे भगवान् इस दूषित जीवन (सूरदास) का या तो उद्धार कर दो अन्यथा आपका (पतित- तारन) समदर्शी होने का प्रण टूट जायेगा।

2.5 सूरसागर के पद

खेलत में को काको गुसैयां

हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयां जाति पांति हमसे बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयां ।।

अति अधिकार जनावत यातें, जातें अधिक तुम्हारी गैयां।

रूठहि करै तासौं को खेले, रहे बैठि जहं-तहं सब गुड़यां सूरदास प्रभु खेल्योई चाहत, दांउ दियौ करिनंद-दुहैयां ।।

संदर्भ- प्रस्तुत पद्यांश महाकवि सूरदास द्वारा रचित सूरसागर से लिया गया है। प्रस्तुत पद्यांश में सूरदास ने बालकृष्ण की बाल क्रीड़ाओं का सुंदर वर्णन किया है।

व्याख्या- श्रीकृष्ण हार गए, श्रीदामा जीत गए, श्रीदामा ने श्रीकृष्ण से कहा-खेल में कोई किसी का मालिक नहीं होता, जबरदस्ती नाराज होते हो। जाति में भी तुम बड़े नहीं, तुम्हारा मैं सेवक भी नहीं, केवल कुछ गायों के अधिक होने से अधिकार दिखा रहे हो, जो बात-बात में नियम विरुद्ध खेले, उसके साथ कौन खेले। ऐसा कहते हुए उनके साथी खेल बंद कर बैठ गए। श्री कृष्ण खेलना चाहते थे। श्रीकृष्ण ने नंद की दुहाई देकर दांव दी तथा खेल फिर शुरू हुआ।

मैया बहुत बुरो बलदाऊ।

आपुहिं आपु बलकि भए ठाढ़े, अब तुम कहा रिसाने ।।

बीचहिं बोलि उठे हलधर, तब याके माई न बाप।

हारि-जीत कछु नैकुं न समुझत, लखिनि लावत पाप ।।

अपनु हरि सखनि सौ झगरत यह कह दियो पठाई।

सूर स्याम उठि चले रोइ कै, जननि पूछत धाई ॥

प्रसंग- श्रीकृष्ण की बाल लीला का वर्णन है।

व्याख्या- श्रीकृष्ण जी अपनी माँ से कहते हैं, बलराम जी बहुत बुरे हैं। कृष्णजी नाराज हो गए हैं। पहले तो अपने आप आवेश में आकर खड़े हो गए थे, तो अब क्रोधित हो रहे हैं। बोच मे ही बलराम बोल उठे-इसके न माँ है न पिता, यह हार

जीत की बात तनिक भी नहीं जानता, पाप लड़कों को लगता है। आप तो हार गया तथा अब सखाओं से झगड़ा करता है। यह कहकर उन्होंने कृष्णजो को भेज दिया। माँ ने उन्हें देखा तो दौड़कर पूछने लगी। इसलिए कृष्णजी ने माँ से कहा- मैया बहुत बुरो बलदाऊ ।

विशेष-(2) वात्सल्य रस ।

(2) पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार ।

चोरी करत कान्हि धरि पायें।

ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज खोरी ॥

मन मैं यहै विचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाऊँ।

गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सबकै माखन खाऊँ ।।

बालरूप जसुमति मोहिं जानै, गोपिनि मिलि सुख भोग।

सूरदास प्रभु कहत प्रेम सों, ये मेरे ब्रज लोग ।।

प्रसंग- बाल लीला का वर्णन है।

व्याख्या- कृष्ण जी ने पहली बार माखन चोरी की। गोपी की इच्छा पूरी करके वे ब्रज की गलियों में भाग गए। कृष्णजी मन में यही विचार कर रहे थे कि ब्रज के घर-घर में जाऊँगा। गोकुल में मैंने आनन्द प्राप्त करने के लिए जन्म लिया है, तो सबका मक्खन खाऊँगा। यशोदा माँ मुझे वात्सल्य भाव से जानती हूँ, पर गोपियाँ प्रेम भाव से जानती हैं, अतः इनसे उसी भाव से मिलकर सुख-विलास करूंगा। सूरदास जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण प्रेमपूर्वक कहते हैं कि ये गोपियाँ तो मेरी अपनी हैं।

विशेष- वात्सल्य रस का सुन्दर चित्रण किया गया है।

मैया मैं नहिं माखन खायो।

ख्याल परें ये सखा सबै मिलि, मेरै मुख लपटायौ।

देखि तुही सीके पर भाजन, ऊंचे धरि लटकायो।

हौं जु कहत नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो।

मुख दधि पोंछि, बुद्धि एक कोन्हीं, दोना पीठि दुरायो ।
डारि सांदि मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।
बाल विनोद मोह मन मोह्यो, भक्ति प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमत को यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायौ।

संदर्भ- प्रस्तुत पद्यांश महाकवि सूरदास द्वारा रचित सूरसागर से अवतरित है। कृष्ण ग्वालिन के द्वारा माखन चोरी की शिकायत करने पर मां यशोदा के सामने माखन न खाने की सफाई प्रस्तुत कर रहे हैं।

व्याख्या- मां के बहुत कुछ कहने पर कृष्ण ने बड़े ही भोलेपन से कहा कि मैया! सच मानना, मैंने (चोरी करके) माखन नहीं खाया है। (मां ने कहा कि कान्हा! तू अभी भी मुझसे छल कर रहा है। अच्छा, यदि तूने माखन नहीं खाया तो यह तेरे मुख पर कैसे लगा है), मां के इस कथन पर कृष्ण ने फिर चतुराई से कहा- मुझे ऐसा ख्याल पड़ता है कि जैसे इन सखाओं ने मिलकर जबर्दस्ती मेरे मुंह पर लिपटा दिया है। अब तू ही देख, छीके को ऊपर करके तूने इतनी ऊपर लटकाया हुआ है, तथा तू ही बता, इतने ऊंचे पर लटके भाजन को भला मैं अपने छोटे-छोटे हाथों से कैसे पा सकता हूं? अब जैसे ही मां का ध्यान छींके की ओर गया, तुरंत कृष्ण ने एक चतुराई की, मुंह पर लगा दधि पोंछ लिया और माखन से भरा दौना पीछे छिपा लिया। कृष्ण की इस चातुरी को देखकर मां का सारा क्रोध शांत हो गया, उसने सांटी (पीटने वाली छड़ी) को पटक दिया तथा मुस्करा कर कृष्ण को गले से लगा लिया। वात्सल्य भाव से आराधना करने वाली मां को प्रभु ने अपनी भक्ति का प्रताप दिखाया तथा अपने बाल विनोद से मां का मन विमोहित कर लिया। सूरदासजी कहते हैं कि इस प्रकार हरि के साथ क्रीड़ामग्न मां निशदिन जिस सुख का अनुभव करती हैं, वह तो भगवान शंकर तथा ब्रह्मा जी को भी सुलभ नहीं है।

विशेष (1) वात्सल्य रस का सुंदर चित्रण। (2) अनुप्रास अलंकार ।

स्वप्रगति परीक्षण

1. प्रस्तुत पद्यांश में श्रीकृष्ण के मित्र ने उन्हें किस बात के लिए टोकते हुए कहा कि खेल में कोई किसी का मालिक नहीं होता? श्रीदामा ने कहा, "_____ नाराज होते हो।"
2. "मैया बहुत बुरो बलदाऊ" पद्यांश में बलराम ने श्रीकृष्ण को किस बात का ताना दिया?
   बलराम ने कहा, "इसके न _____ है न _____।"
3. श्रीकृष्ण के मन में माखन चोरी के दौरान क्या विचार आया?
   श्रीकृष्ण ने सोचा, "गोकुल में मैंने आनंद प्राप्त करने के लिए _____ लिया है, तो सबका _____ खाऊँगा।"
4. "चोरी करत कान्हि धरि पायें" पद्यांश में सूरदास ने श्रीकृष्ण के मन में किस भावना का वर्णन किया?
   श्रीकृष्ण ने सोचा, "ब्रज के घर-घर में जाऊँगा और _____ भाव से गोपियों से _____ करूँगा।"

2.6 सार संक्षेप

सूरदास, हिंदी साहित्य और भक्ति काव्य के प्रमुख कवि, अपनी रचनाओं में भगवान कृष्ण की लीलाओं और भक्ति भाव को प्रस्तुत करते हैं। उनके काव्य का मुख्य स्रोत उनके *सूरसागर*, *सूरसारावली*, और *साहित्य लहरी* जैसे ग्रंथ हैं। सूरदास की कविताओं में सरल भाषा, गहरी भावना और भक्ति रस का अद्वितीय मिश्रण मिलता है। सूरदास की कविताएँ मुख्यतः श्रीकृष्ण के बाल्यकाल, किशोरावस्था, और उनकी रासलीलाओं का वर्णन करती हैं। उनकी रचनाओं में वात्सल्य रस और श्रृंगार रस की प्रधानता है। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से भक्ति की महिमा का गुणगान करते हैं और संसार की क्षणभंगुरता को दर्शाते हैं। उनके काव्य में गोपियों के प्रति कृष्ण का स्नेह, राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन, और भगवान के प्रति अनन्य भक्ति को प्रधानता दी गई है।

2.7 मुख्य शब्द

1. **निराकार**: जिसका कोई आकार न हो; जो रूप-रंग से मुक्त हो।
   (उदाहरण: भगवान को अक्सर निराकार और सर्वव्यापी माना जाता है।)
2. **वंदना**: आदर, सम्मान या पूजा के भाव से किसी की प्रशंसा करना।
   (उदाहरण: सुबह की वंदना से मन को शांति मिलती है।)
3. **सर्वोपरि**: सबसे ऊपर; सबसे महत्वपूर्ण या प्रमुख।
   (उदाहरण: समाज की सेवा सर्वोपरि कर्तव्य है।)
4. **सुंदर**: जो आकर्षक हो, जो मन को भा जाए; सुहावना या रमणीय।
   (उदाहरण: यह झील बहुत सुंदर दिखती है।)
5. **विनय**: नम्रता, शालीनता, और आदर का भाव।
   (उदाहरण: विनय से व्यक्ति का व्यक्तित्व और अधिक प्रभावी बनता है।)

2.8 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर:

1. जबरदस्ती
2. माँ, पिता
3. जन्म, माखन
4. प्रेम, सुख-विलास

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. हर सर्कल. (2024). *सूरदास की कठिन रही है साहित्यिक यात्रा.*
2. सीजी हब. (2024). *सूरदास जी के दार्शनिक विचार: बाल कृष्ण भक्ति.*
3. आरएसएसबी. (2023). *सूरदास: प्रेम और भक्ति का गान.*

4. एमडीयू रोहतक. (2020). *प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य.*

5. एक्सोटिक इंडिया आर्ट. (2022). *गीता में भक्ति: सूरदास की दृष्टि*

2.10 अभ्यास प्रश्न

उपरोक्त पदों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

1. मैया कबहि बढ़ेगी चोटी ?

किती बार मोहि दूध पियतु, भई यह अजहूं है छोटी।

तू तो कहत बल की बेनी, ज्यों है है लांबी मोटी।

काढ़त-गुहत न्हवावत्, जैहे नागिन सी भुई लोटी।

काचौ दूध पियावति, पचि पचि देति न माखन रोटी।

सूर चिरजीवी दोऊ भैया, हरि हलधर की जोरी।

2. प्रभु ! हौं सब पतितनि को टीकौ।

और पतित सब दिवस चार के, हौं तो जनमत ही कौ।

बधिक, अजामिल, गनिका तारी और पूतना ही कौ।

मोहिं छाँड़ि तुम और उधारै, मिटै सूल क्यों जी कौ।

कोउ न समरथ अघ करिबै कौ, खैचि कहत हौं लीकौ।

मरियत लाज सूर पतितनि मैं, मोहूं तै को नीकौ ।।

3. खेलत में को काको गुसैयां

हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयां जाति पांति हमसे बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयां ।।

अति अधिकार जनावत यातें, जातें अधिक तुम्हारी गैयां।

रूठहि करै तासौं को खेले, रहे बैठि जहं-तहं सब गुड़्यां सूरदास प्रभु खेल्योई चाहत, दांउ दियौ करिनंद-दुहैयां ।।

इकाई - 3

तुलसीदास: व्याख्याएँ

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 विनय पत्रिका पद

3.4 कवितावली पद

3.5 गीतावली पद

3.6 सार संक्षेप

3.7 मुख्य शब्द

3.8 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

3.9 संदर्भ ग्रन्थ

3.10 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाएँ भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं, जिनमें उनकी गहरी भक्ति, समाज के प्रति संवेदनशीलता और जीवन के उच्चतर आदर्शों की झलक मिलती है। 'विनय पत्रिका', 'कवितावली' और 'गीतावली' तुलसीदास की प्रमुख रचनाएँ हैं, जो उनके काव्यदृष्टि और भक्ति भावनाओं का अभिव्यक्तिकरण करती हैं। इन काव्य कृतियों में उन्होंने न केवल राम के प्रति अपनी निष्ठा और भक्ति को व्यक्त किया, बल्कि समाज, मानवता और धर्म के विषयों पर भी गहरी सोच और संदेश प्रदान किया।

'विनय पत्रिका' में तुलसीदास ने भगवान राम और उनकी उपास्य शक्ति के प्रति अपनी विनम्र भक्ति को प्रस्तुत किया है। 'कवितावली' में उनके काव्य की सरलता और गहराई का संगम है, जो साधारण जनमानस से लेकर विद्वत समुदाय तक को प्रभावित करता है। 'गीतावली' में उन्होंने भक्ति के भाव को गीतों के माध्यम

से व्यक्त किया, जो उनके समय की धार्मिक और सामाजिक स्थिति को दर्शाते हैं।

इस इकाई में हम इन तीन काव्य रचनाओं के कुछ प्रमुख पदों की व्याख्या करेंगे, ताकि हम तुलसीदास की काव्यशक्ति और भक्ति के मार्ग को और अधिक गहराई से समझ सकें। इन रचनाओं के माध्यम से हम उनके विचारों, दर्शन और भारतीय समाज में उनके योगदान को विश्लेषित करेंगे, जो आज भी हमारे जीवन में प्रासंगिक हैं।

3.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

1. गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं 'विनय पत्रिका', 'कवितावली' और 'गीतावली' के प्रमुख पदों का अर्थ और भावार्थ।
2. तुलसीदास के काव्य में भक्ति और धार्मिक दृष्टिकोण की प्रस्तुति।
3. तुलसीदास की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा और अलंकारों का प्रभाव।
4. तुलसीदास के काव्य के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों को समझना।
5. तुलसीदास के काव्य के माध्यम से भारतीय समाज में धार्मिक और नैतिक मूल्यों की स्थापना को समझना।

3.3 विनय पत्रिका पद

गाइये गनपति जगबंदन।

संकर सुवन भवानी नंदन ।।

सिद्धि सदन गज बदन बिनायक।

कृपा सिंधु सुन्दर सब लायक ।।

मोदक प्रिय मुद मंगल दाता।

बिद्या बारिधि बुद्धि बिधाता ।।

माँगत तुलसिदास कर जोरे।

बसहिं रामसिय मानस मोरे ।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग- उपरोक्त पंक्तियाँ तुलसीदास द्वारा रचित "विनय पत्रिका" से ली गईं हैं। गणेश स्तवन निर्विध्न ग्रन्थ समाप्ति एवं मंगल कामना के लिए है। यहाँ कवि गणेश के विविध सन्दर्भों का स्मरण करता हुआ 'राम सीता' की आत्यान्तिक सन्निकटता की प्राप्ति की याचना उनसे करता है।

व्याख्या- शिव पुत्र पार्वती के आनन्ददाता (आत्मज) विश्व हेतु वन्दनीय गणेश का गान किया जाए। हस्ति मुख वाले, सिद्धि के आगार गणों के श्रेष्ठ नायक (श्री गणेश) आप, कृपा के समुद्र, सुन्दर एवं सर्वथा समर्थ हैं। मोदक प्रिय (गणेश) आनन्द तथा शुभ दोनों को देने वाले विद्या के अगाध आधार, बुद्धि के विनियोजक हैं।

इन शुभ गुणों से युक्त गणेश से कवि तुलसीदास हाथ जोड़कर याचना करता है कि वे (ऐसा आशीर्वाद दे) जिससे 'राम सीता' युगल रूप से मेरे हृदय में निरन्तर निवास करें अर्थात् मेरे मन, कर्म, वचन सभी निरन्तर उन कार्यों में संसक्त रहें, जिनसे 'राम सीता' निरन्तर मेरे हृदय में निवास करते रहें-'राम सीता' के अलावा मन, कर्म, वाणी की गति अन्यत्र न हो।

विशेष- गणेश वन्दना का सन्दर्भ तुलसीदास की अन्य कृतियों यथा- रामचरितमानस, बरवै, रामललानहछू, जानकी मंगल आदि में मिलता है। अन्य स्थलों पर कवि अधिकांशतया इनसे 'मंगल' की याचना करता है। निर्विघ्न ग्रन्थ समाप्ति 'मंगल' का एक प्रकरण है, ग्रन्थ की सम्पूर्णता अनिष्टकारी न हो-यह भी मंगल से सन्दर्भित है, 'लोकमंगल' का भी प्रकरण कृति के प्रतिफल तथा पाठकों के आत्यान्तिक हित से जुड़ा है। वक्ता श्रोता का भी मंगल इसी गणेश बन्दना से है-मानस में कवि कहता है।

अब लौं नसानी, अब न नसैहों।

रामकृपा भव- निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं।

पायो नाम चारु चिंतामनि, उर कर ते न खसैहौं ।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि कसैहों।
परबस जानि हंस्यो इन इन्द्रिन निज बस है न हंसैहों।
मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति पद कमल बसैहौं ।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग प्रस्तुत अवतरण महाकवि तुलसीसजी द्वारा रचित 'विनय पत्रिका' से अवतरित है। विनय पत्रिका के प्रस्तुत पद में गोस्वामी जी अपने किए हुए पापो का पश्चाताप करते हुए पुनः न करने की बात प्रभु को सम्बोधित करते हुए कहते हैं:

व्याख्या- हे प्रभु मैं अब तक तो भूला रहा और मोह माया में फंसा रहा किन्तु अब आपको नहीं भूलूंगा। राम की कृपा से सांसारिक मोह माया रूपी रात्रि समाप्त हो गई है। अब जागने पर अर्थात् ज्ञान प्राप्त होने पर पुनः इसमें लिप्त नहीं होऊंगा। मैंने अब आपके नाम रूपी सुन्दर चिन्तामणि प्राप्त कर ली है, अब इसे कदापि नहीं खोऊंगा। मुझे श्याम सलोने राम के नाम की सुन्दर कसौटी प्राप्त हो गई है। इस कसौटी पर अपने चित्त रूपी सोने को परखूंगा। अब तक मैं इन इन्द्रियों के वशीभूत होकर परवश रहा, जिससे मेरी हंसी हुई किन्तु अब मैं अपनी हंसी नहीं कराऊंगा। अब मैं अपने मन रूपी भौरे को रामचन्द्र जी के चरण कमलों में बसाऊंगा।

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।
काको नाम पतित पावन जग, केहि अति दीन पियारे ।।
कौने देब बराड़ बिरद-हित हठि हठि अधम उधारे।
खग, मृग, व्याध पधान, बिटप जड़ जवन कवन सुर तारे ॥
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुजा सब माया-बिबस बिचारे ।
तिनके हाथ दास तुलसी-प्रभु कहा अपनपौ हारे ।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग प्रस्तुत पद गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'विनय पत्रिका' से लिया गया है। अपने आराध्य देव श्रीराम के प्रति अपनी अनन्य अगाध भक्ति

भावना और उसके अन्तर्गत उनकी महानता और गुणवत्ता का बखान करते हुए कवि तुलसी दास ने कहा है-

व्याख्या (हे प्रभु राम !) तुम्हारे चरणों (आश्रय को) को त्याग कर और कहाँ जाऊं (भला बताओ तो सही कि) पूरे ब्रह्माण्ड में (आपके समान और) किसका नाम पतितों के लिए पवित्र (अथवा पतितों को पवित्र कर देने वाला) है ? (आप ही) बताओ कि दीन जनों के लिये इतना प्यारा और कौन है ? (अथवा दोनों को प्रिय लगने वाले राम! आप ही कहो कि इस संसार में, आपके अतिरिक्त, और किसका नाम पतित-पावन है? किसी का भी नहीं है ना और कौन (आपकी भाँति) ऐसा देवता है जिसने अपने बड़प्पन और यश के लिए हठ कर-करके अधम जनों का उद्धार किया हो ? (अधम भी केवल मनुष्य ही नहीं वरन) पक्षी (जटायु) हिरन (रूपधारी मारीचि), पत्थर (वतबनी अहिल्या), जड़ वृक्ष (यमलार्जुन नामक वृक्ष जिससे बालकृष्ण को बाँधा गया था) और न जाने कितने देवताओं को तारा हो। वस्तुतः देवता, दानव, मुनि, नाग और मनुष्यादि बेचारे सभी (योनियों और जातियों के लोग आपकी ही) माया के वशीभूत हैं (अथवा बेचारे सभी तो माया से विवश बने हुए है)। हे प्रभु! यह तुलसीदास अपने आप को उनके हाथों में सौंप कर क्यों हारे ? कारण से छुड़ाने वाले हैं श्रीराम जिनका महिमागान करके और उनसे कृपा की याचना करते हुए कवि (जीव) कहता है।

विशेष - (1) प्रथम पंक्ति में इष्टदेव के प्रति अनन्य विश्वास भावना है तथा शेषांश में उसका गुण-कथन है जो भक्ति की एक प्रमुख अवस्था है। (2) 'खग तारे' में विभिन्न पौराणिक अंतर्कथाओं के संकेत हैं। (3) यहाँ पर भाषा सारल्य और तर्क-विशेष दृष्टव्य है। (4) अलंकार- अनुप्रास, पुनरूक्ति । (5) यहाँ पर विनय भावना अत्यन्त भावोत्प्रेरक रूप में अभिव्यक्त हुई हैं।

केसव ! कहि न जाई का कहिये।

देखत तब रचना विचित्र हरि।

समुझि मनहिं मन रहिये ।।

सून्य भीति पर चित्र, रंग, नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटइ न मरड़ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे।
रबिकर-नीर बसै अति दारून मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल, प्रबल कोउ माने।
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम, सौ आपुन पहिचानै ।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग- प्रस्तुत पद गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'विनय पत्रिका' से लिया गया है। इस पद में गोस्वामीजी ने आत्मबोध की महत्ता का दिग्दर्शन कराया है और दिखाया है कि भ्रम के नष्ट हो जाने पर ही यह अवस्था प्राप्त हो सकती है।

व्याख्या हे केशव ! आपकी इस अद्भुत रचना को देखकर मन ही मन समझकर रह जाता हूं, उसका कुछ वर्णन नहीं करते बनता। आपकी यह रचना ऐसी है जैसे किसी निराकार चित्रकार ने शून्य दीवार पर बिना रंग के ही चित्र बनाये हैं। (तात्पर्य यह है कि निराकार ब्रह्मा ने मायारूपी दीवार पर अथवा आकाश पर जो शून्य जैसा प्रतीत होता है ऐसे-ऐसे विचित्र चित्र खींचे जिनमें रंगो का लेशमात्र भी नहीं है। दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि प्रकृति के शून्याधार पर, असत्य के आश्रय पर, पांच भौतिक रचना का प्रसार किया है, और उस रचना में स्थूल, सूक्ष्म कारण आदि शरीर हैं, जिनका कोई रंग, कोई रूप निश्चित नहीं होता।) इन चित्रों की विशेषता यह है कि धोने पर भी ये नहीं मिटते (अर्थात् कर्मादि करने से यह पांच भौतिक रचना नाश को प्राप्त नहीं होती, वरन् और पक्की हो जाती है। इस चित्रकारी को मरने का भी भय नहीं होता लेकिन इन चित्रों को सदा मृत्यु भय रहता है। (एक उल्टी बात और है कि) इन चित्रों को देखने से भय होता है। भाव यह है कि इस सृष्टि में मोह ममतामय भय सदा उपस्थित रहता है, विषयरूपी पिशाच डराते रहते हैं और मन जो दारूण दुख देता है वह प्रत्येक को ज्ञात है, इसलिए इन चित्रों की ओर देखना महान भयावह तथा

दुखदायी है। ग्रीष्म ऋतु में, सूर्य की किरणों में जो जल की लहर भी दिखाई देती है, उसमे एक भयानक मगर रहता है जो कि बिना मुख के उन सबको, जो वहां जल पीने जाते हैं, चाहे वे जड़ हों या चेतन, खा जाता है। (भाव यह है कि यह संसार मृगजल के समान भ्रममय है जैसे सूर्य की किरणों को जल समझकर मृग प्यास में व्याकुल हुए उस और दौड़ते हैं परन्तु निरन्तर भागने पर जल आगे बढ़ता हुआ ही दिखाई देता है और वे उसी के पीछे दौड़ते हुए मर जाते हैं। इसी प्रकार इस अविधाजन्य मिथ्या संसार के विषयों में जो तृप्ति ढूंढना चाहते हैं, उन्हें तृप्ति तो नहीं मिलती, हां उसी में संलग्न रहने पर उन्हें एक दिन बिना मुख वाला काल रूपी मगर खा जाता है। कोई तो इस रचना को सत्य कहता है और कोई मिथ्या तथा किसी-किसी के मत से यह सत्य और मिथ्या दोनों है। किन्तु तुलसीदास कहते है कि वे तीनों ही भ्रम हैं। इस तीनों को छोड़कर जो भगवान की शरण में रहेगा, वही आत्मा का वास्तविक स्वरूप पहचान सकेगा।

विशेष (1) रविकर नीर यहां भ्रम की सत्यता का प्रमाण मारीच की कथा से अधिक क्या होगा ? मृग को (मरीचिका रूपी मारीच को) देखकर रघुनन्दन भी धोखा खा गये। रेगिस्तान में जलाशय मिलना उतना ही असम्भव है जितना स्वर्ण मृग। (2) कोऊ कह सत्य पूर्व मीमांसा वाले अथवा द्वैतवादी तथा विशिष्टा-द्वैतवादी कर्मप्रधान जगत् को सत्य मानते हैं। मनु, दक्ष, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ आदि इसी सिद्धान्त के प्रतिपादक थे। अद्वैतवादी वेदान्ती (शंकराचार्य के मतावलम्बी) केवल ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करते हैं वे जगत को मिथ्या या भ्रम मानते हैं। उनके मतानुसार जगत उसी ब्रहा की सत्ता में इस प्रकार भासित होता है, जिस प्रकार रस्सी में सर्प का भ्रम हो जाता है । (3) समग्र रूप से गोस्वामी जी ने इस पद में संसार को 'भ्रम' हो बताया है और प्रकार शंकर के मायावाद (अद्वैतवाद) के प्रति निष्ठा व्यक्त की है। (4) केशव शब्द साभिप्राय है- केशवाला। यह सर्वव्यापी अन्नत नीला आकाश उसके केश हैं। अलंकार रूपक, विभावना ।

3.4 कवितावली पद

पुर तैं निकसीं रघुवीर वधू, धरि-धीर दये मग में डग है।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै, फिर बूझति है,
चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित है? तिय की लखि आतुरता पिय की,
अंखियां अति चारू चलीं जल च्वें।

संदर्भ - प्रस्तुत कविता रामभक्त कवि तुलसीदास द्वारा रचित है। इसे उनकी काव्य रचना 'कवितावली' से लिया गया है। वनगमन के समय सीता की दशा का वर्णन ।

व्याख्या- सीताजी को राम ने वन के कष्ट बताए, पर कृतनिश्चया सीताजी राम के साथ जाती हैं। वन के कष्टों का उन्होंने कभी अनुभव नहीं किया था। वे अयोध्या से बड़े धैर्य के साथ बाहर निकली ही थी कि (थोड़ी दूर चलने पर ही) उनके ललाट पर पसीने की बूंदें झलक आईं, प्यास के कारण मधुर ओठ सूख गए। थोड़ी ही दूर चली थी कि वे रामचंद्रजी से पूछने लगी कि अब कितनी दूर और चलना है. पर्णकुटी कहां बनाएंगे? सीताजी की आतुरता तथा थकान को श्रीराम समझ गए। उनके नेत्रों में आंसू छलक आए।

धूत कहो अवधूत कहौ, सुन गोद के भूपति लै निकसे ।
अवलोकि हों सोच-विमोचन को, ठगिसी रही, जे न ठगे धिकसे ॥
तुलसी मन रंजन, रजित अंजन, नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभे, नवनील सरोरुह से निकसे ॥

संदर्भ एवं प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ रामभक्त कवि तुलसीदास द्वारा रचित "कवितावली" ली गई है। श्रीराम के बाल-सौन्दर्य का वर्णन है।

व्याख्या- हे सखि ! मैं प्रातःकाल महाराज दशरथ के द्वार पर गई थी। उसी समय राजा

दशरथ अपने पुत्र राम को गोद में लेकर बाहर निकले। उस बालक की चिन्ता को दूर करने वाली आकृति को देखकर मैं आश्चर्यचकित सी रह गई। जो व्यक्ति उनके मनमोहक रूप को देखकर आकर्षित नहीं होते उन्हें धिक्कार है। सखी आगे

कहती है कि श्रीराम के नेत्र मन को प्रसन्न करने वाले हैं, काजल से मुक्त हैं एवं सुन्दर खंजन पक्षी के बच्चे के समान प्रतीत हो रहे हैं। श्रीराम के मुखमण्डल में उनके नेत्र इस तरह सुशोभित हो रहे हैं मानो चन्द्रमण्डल में समान रूप वाले दो नील कमल विकसित हो रहे हैं।

विशेष-(1) वात्सल्य रस है।

(2) बजभाषा का प्रयोग द्रष्टव्य है।

बिंध्य के बासी उदासी तपोव्रत धारी महा बिनु नारी दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि थे मुनिवृन्द सुखारे ॥
हैं हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल कंज तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पगु धारे ।।

संदर्भ एवं प्रसंग- संत तुलसीदास द्वारा रचित यह छन्द 'कवितावली' के 'अयोध्याकाण्ड' से लिया गया है। यहाँ तुलसीदास ने भगवान् रामचन्द्र के चरणों की धूलि के महात्म्य की अवतारणा हास्य रस में की है।

व्याख्या- विन्ध्य क्षेत्र के निवासी साधु तथा मुनिजन संसार से उदासीन हो चुके थे। अर्थात् वे पूर्णरूप से विरक्त हो चुके थे। वे तपस्वी तथा स्वयं व्रती थे एवं वे नारियों के अभाव में दुःखित थे। उन्होंने मुनि गौतम की पत्नी अहिल्या का उद्धार कर दिया है-वैसे ही वे परम सुख की अनुभूति करने लगे। श्रीराम के वन में पधारने पर उनसे मुनिजनों ने निवेदन किया कि हे प्रभो! आपके चरणों की धूलि की महिमा अमित है। जिस तरह आपके चरणों की धूलि के स्पर्श से मुनि पत्नी अहिल्या तर गई उसी तरह वन में ये समस्त शिलाएं आपके चरणों की धूलि के स्पर्श से चन्द्रमुखी नारियों के रूप में हो जावेगी-यह तो हम सभी के लिए अधिक सुखकारी होगा। आपने वन में पधार कर अच्छा कार्य किया और हम सभी को अनुग्रहीत किया।

विशेष-(1) तुलसीदास ने विन्ध्यवासी साधु-व्रतीजनों के विषय में हास्यपरक वर्णन किया है।

(2) विन्ध्यवासी साधुजनों के विषय में हास्य का पुट देकर यह अभिव्यक्त किया है कि वे नारियों के अभाव में दुःखानुभव कर रहे थे।

कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवास को रूख ज्यों पंथ के साथ ज्यों लोग लुगाई ॥
संग सुबन्धु पुनीत प्रिया, मनो धर्म-क्रिया छरि देह सुहाई।
राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ।।

संदर्भ एवं प्रसंग- प्रस्तुत छन्द संत तुलसीदास द्वारा रचित 'कवितावली' के 'अयोध्याकाण्ड' से उद्धत है। यहाँ तुलसीदास ने भगवान राम के वनगमन का सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। श्रीराम ने अपने पिता राजा दशरथ के राज्य को इस तरह त्याग दिया जिस तरह एक तोता अपने पंखों को त्याग देता है। वे अपनी त्रिया सीता तथा श्रेष्ठ भाई लक्ष्मण के साथ परम हर्षित होकर राजसी वस्त्रों एवं सर्वस्व त्याग कर वन को चल दिये।

व्याख्या- वनगमन-विषयक समाचार को सुनकर मन में परमानन्दित होकर और अपने पिता की आज्ञा को स्वीकार कर अपने राजसी वस्त्रों तथा आभूषणों को श्रीराम ने उसी तरह त्याग दिया जिस तरह एक तोता अपने पंखों का त्याग कर देता है। तोता अपने पुराने पंखों को त्याग कर नये पंख ग्रहण करता है इसी तरह श्रीराम राजोचित वस्त्रों-आभूषणों को त्याग आंगिक शोभा से युक्त दृष्टिगोचर हो रहे थे। कहने का आशय यह है कि उनकी स्वाभाविक सुन्दरता नयनाभिराम थी। भगवान राम ने अयोध्या नगरी को इसी तरह त्याग दिया जिस तरह कोई पथिक मार्ग-निवास के वृक्षों का आश्रय प्राप्त कर तदनन्तर त्याग कर आगे चल देता है। पथिक को मार्ग के आश्रय प्राप्त वृक्षों से किसी तरह का लगाव नहीं होता है। उसके मन में तो अपने लक्ष्य की तरफ अग्रसर होने तथा प्राप्त करने की लगन होती है। जिस तरह पथिक को मार्ग में मिले हुए स्त्री-पुरुषों से किसी भी प्रकार का मोह नहीं होता, उसी तरह श्रीराम के साथ के साथ उनके श्रेष्ठ भाई लक्ष्मण तथा पवित्र आचरणशील स्त्री सीता ऐसे सुशोभित प्रतीत हो रहे थे

मानो धर्म एवं क्रिया ने मनोहर शरीर धारण कर लिया हो। कमल नेत्र श्रीरामचन्द्र अपने पिता दशरथ के अयोध्या राज्य को त्यागकर वन को इस तरह चल दिये जिस तरह पथिक मार्ग की समस्त आकर्षक वस्तुओं के प्रति मोह न कर लक्ष्य की तरफ अग्रसर हो जाता है। भाव यह है कि श्रीराम के हृदय में अयोध्या के राजपाट तथा श्रीसम्पन्नता के प्रति किसी प्रकार का आकर्षण नहीं होता था।

विशेष-(1) श्रीगर की सूक्ति द्रष्टव्य है।

(2) श्रीराम की चरित्र सम्बन्धी विशेषताओं का उद्घाटन हुआ है।

(3) गुण- माधुर्य। रस- शान्त ।

(4) अलंकार- उपमा, उत्प्रेक्षा एवं अनुप्रास ।

सुनत हनुमान की हाँस बांकी

चंडकर थकित फिरि तुरग हांके।

कौन की तेज बलसीम भट भीम से, भीमता बिरखि कर नयन ढाँके ।।

दास तुलसीदास के निरुद्ध बसत विदूष, बीर विरुदैत वर बैरि धाके ।

नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन, कहाँ हनुमान से वीर बांके ।।

संदर्भ एवं प्रसंग- संत तुलसीदास द्वारा रचित यह छन्द 'कवितावली' से लिया गया है। प्राचीन अन्तर्कथाओं का संकेत करते हुए कवि ने हनुमान जी के तेज बल एवं यश का वर्णन किया है।

व्याख्या- तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसा कोई वीर संसार में नही है जैसे हनुमान जी हैं। वे कहते हैं कि ऐसा कौन वीर है जिसकी गर्जना से शिवजी तथा ब्रह्मा जी चकित हो जाते हैं। सूर्य के घोड़े जिसकी गर्जना को सुनकर रुक जाते हैं और इसलिए सूर्य को फिर से हाँकने पड़ते हैं। ऐसा कौनसा वीर है जिसके तेज एवं शक्ति को देखकर असीम बल वाले भीष्म भी अपने नेत्र बन्द कर लेते हैं।

तुलसीदास जी कहते हैं कि तुलसीदास वे स्वामी भगवान श्रीरामचन्द्र जी के सेवक श्री हनुमान जी के यश की विद्वान प्रशंसा करते हैं कि हनुमान जी के यश का बड़े-बड़े योद्धाओं के ऊपर आतंक छाया हुआ है। अन्त में तुलसीदास जी इस

निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वर्ग, पृथ्वी लोक तथा पाताल लोक में कोई भी हनुमान के समान अद्भुत बलवान नहीं है।

काव्य-सौन्दर्य-

(1) प्रस्तुत पद में हनुमान जी के यश एवं तेज का वर्णन किया है कि कवि ने हनुमान जी को अद्भुत वीर घोषित करते हुए कहा है कि तीनों लोकों में हनुमान जैसा वीर नहीं है।

(2) 'वीर बिरुदैत बर बैरि धांके' में अनुप्रास अलंकार की सुन्दर छटा दर्शनीय है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. राम ने सीता को वनगमन के समय कष्टों का वर्णन किया था।
    - सत्य
    - असत्य
2. तुलसीदास जी ने राम के बाल-सौंदर्य का वर्णन करते हुए उन्हें 'चन्द्रमण्डल' के समान सुंदर बताया है।
    - सत्य
    - असत्य
3. हनुमान जी के बल के बारे में तुलसीदास जी ने कहा है कि उनके जैसा वीर तीनों लोकों में कोई नहीं है।
    - सत्य
    - असत्य
4. श्रीराम ने अपने पिता राजा दशरथ के राज्य को त्यागते समय कोई दुख नहीं महसूस किया था।
    - सत्य
    - असत्य

3.5 गीतावली पद

मोथै तौ न कछू हवै आई।

ओर निबाहि भली बिधि भायप चल्यौ लखन सो भाई ॥

पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बँटाई।

ता संग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यौं न प्रान पठाई ॥

जानत हौं या उर कठोर तें कुलिस कठिनत पाई।

सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत्त को दर्शक दरार न जाई ।।

तात-मरन, हिय-हरन्, गीध-बध, भुज दाहिनी गँवाई।

तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहिं कर पाई ॥

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यांश तुलसीदास रचित गीतावली से अवतरित है। यह लक्ष्मण के मूच्छित होने पर राम के विलास का वर्णन है।

व्याख्या- हाय ! मुझसे तो कुछ भी नहीं बना एवं आज तो लक्ष्मण जैसा भाई भातृत्व का अन्त तक अच्छी तरह निर्वाह करके चले गये। जिस भाई ने नगर, पिता, माता और सब प्रकार के सुख को त्यागकर मेरे साथ वन में पड़ने वाली विपत्ति में हिस्सा लिया था उसके साथ मैं अपने प्राण त्याग सुरलोक नहीं भेज सका। ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे इस कठोर हृदय से वज्र को कठोरता प्राप्त हुई है क्योंकि लक्ष्मण के स्नेह का स्मरण करके इसमें फटकार कोई दरार नहीं पड़ी। मेरे कारण ही पिता जी की मृत्यु हुई, स्त्री का अपहरण हुआ, गोध के प्राण सूख गये एवं अब मुझे दाहिनी भुजा भी गंवानी पड़ी। इस तरह मैंने हर प्रकार से अपने कुल को कलंकित ही किया है।

अलंकार- व्यतिरेक, उपमा।

पंकज करनि चाप तीर तरकस कटि सीय स्वयंबरु माई, दोउ भाई आए देखन।

सुनत चलीं प्रमदा प्रमुदित मन।

प्रेम पुलकि तन मनहुँ मदन मंजुल पेखन।

निरखि मनोहरताई सुख पाई कहैं एक एक सौं, भूरि भाग हम धन्य आली! ए दिन, ए खन।

तुलसी सहज सनेह सुरंग सब। सो-समाज चित्त-चित्रसार लागी लेखन ।।

प्रसंग- प्रस्तुत अंश में सखियाँ सीता स्वयंवर में आये राम-लक्ष्मण की सुन्दरता का वर्णन करती है।

व्याख्या- हे सखी ! देखो दोनों भाई सीता स्वयंवर देखने आए है-यह सुनते ही सब स्त्रियाँ शरीर से पुलकित होकर ऐसी जा रही हैं मानो मनोहर कामदेव को ही देखने हेतु प्रसन्न चित्त से जा रही हो। राम और लक्ष्मण की सुन्दरता देखकर अपने चित्त में सुख का अनुभव करती हुई एक-दूसरे से कहती हैं कि हे सखी! हम लोग इस क्षण निश्चय ही बड़ी भाग्यशालिनी एवं धन्य हैं जो इनका दर्शन हुआ ।

विशेष- उत्प्रेक्षा, उपमा अलंकार दृष्टव्य है।

सरित जल मलिन सरनि सूखे नलिन।

तृषित जानि जल लेन लखन गए भुज उठाइ ऊंचे चढ़ि टेरत।

अवनि कुरंग, विहंग द्रुम डारन रूप निहारन पलक ने प्रेरित ।

मगन, न डरत निरखि कर कमलनि सुभग सरासन सायक फेरत ।।

प्रसंग- सीताजी की दशा का वर्णन है।

व्याख्या- नदी का जल मलिन हो गया है, कमल सूख गए हैं। राम मुड़-मुड़कर सीताजी की तरफ देखते हैं। उन्हें प्यासी समझकर लक्ष्मण जी जल लेने गए हैं और राम टीले पर खड़े होकर हाथों को उठाकर उन्हें बुलाकर बुला रहे हैं। पृथ्वी पर मृग तथा वृक्षों की डालियों पर पक्षी उनके रूप को अपलक देख रहे हैं।

विशेष-(1) अलंकार- उत्प्रेक्षा, रूपक ।

(2) सीता की प्यासी दशा का वर्णन ।

तात ! बिचारो धौं हौं क्यों आवौं।

तुम्ह सुचि सुहृद सुजान सकल बिधि, बहुत कहा कहि कहि समुझावौं ।॥

निज कर खाल खैचि या तनु तें जौ पितु-पग-पानहीं करावौं।

होउँ न उरिन पिता दसरथ तें, कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं ।॥

तुलसिदास जाको सुजस तिहूँ पुर क्यों तेहि कुलहिं कालिमा लावौं ।॥

प्रभु रुख निरखि निरास भरत भए, जान्यो है सबहि भाँति बिधि बावौं ?

प्रसंग- प्रस्तुत अंश में भगवान राम भरत से कहते हैं कि अयोध्या वापस लौटकर अपने कुल पर कालिख नहीं पोत सकता हूँ।

व्याख्या- भैया ! सोचो तो कि मैं अयोध्या कैसे लौट संकता हूँ। तुम पवित्र हृदय वाले एवं हर प्रकार सुहृद तथा समझदार हो इसलिए तुम्हें क्या समझाना। यदि मैं अपने हाथ से ही इस शरीर की खाल खींचकर पिता जी के चरणों की जूतियाँ बनवाऊँ तो भी मैं पिता दशरथ से ऋणमुक्त नहीं हो सकता, फिर उनके वाक्यों का तिरस्कार करके अगर मैं घर लौट चलूँ तो मुझे कहाँ शरण मिलेगी-कौन विश्वास करेगा। (तुलसीदास कहते हैं) जिस कुल का यश त्रैलोक्य में व्याप्त है उसको मिटाकर मैं उस कुल पर कैसे कालिख पोत सकता हूँ। प्रभु का इस तरह का भाव समझकर भरत जी निराश हो गये और उन्होंने विधाता को हर तरह अपने प्रतिकूल समझ लिया है।

विशेष- पितृ-प्रेम का वर्णन है। अनुप्रास अलंकार है।

मेरे जान तात कछू दिन जीजै।

देखिय आपु सुवन-सेवासुख मोहिं पितु को सुख दीजै ॥ दिव्य-देह इच्छा-जीवन जग बिधि मनाई मँगि लीजै। हरि-हर-सुजस सुनाइ, दरस दै लोग कृतारथ कीजै ।। देखि बदन, सुनि बचन अमिय, तन रामनयन जल भीजै। बोल्यो बिहग बिहँसि 'रघुबर बलि कहाँ सुभाय पतीजै ।' मेरे मरिबे सम न चारि फल होहिं तौ क्यों न कहीजै ? । तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन ही परी मानो प्रेम सहीजै ।।

प्रसंग- प्रस्तुत अंश में कवि ने पक्षिराज एवं रामचन्द्र जी के वार्तालाप का बखान किया

व्याख्या- रामचन्द्र ने कहा कि हे तात! आप कुछ दिन और जीवित रहें। आप मुझे पिता है। की सेवा का सुख दीजिए तथा आप पुत्र सेवा का सुख प्राप्त करें। अब विधाता आप पर प्रसन्न हैं अतः आप स्वर्गिक शरीर एवं इच्छा जीवन माँग लीजिए और भगवान् विष्णु एवं शंकर सुयश लोगों को सुनाकर लोगों को दर्शन

देकर कृतार्थ कीजिए। तब रामचन्द्र जी का मुख देखकर, उनके अमृतमय वचन सुनकर और शरीर को राम के आँसुओं से भीगा जानकर पक्षिराज हँसकर बोले, हे रघुनन्दन ! मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ। आप विश्वास कीजिए मैं स्वभाव से ही सहज रूप से कहता हूँ। मेरे मरने के समान तो चारों फल भी नहीं है अगर हों तो बतलाइए। तुलसीदास कहते हैं कि प्रभु ने मौन रूप में मानो गिद्धराज के प्रेम को सही करते हुए उत्तर दिया।

अलंकार- उत्प्रेक्षा (अन्त मे)।

विशेष- राम की प्रतिष्ठा तथा प्रेम की तीव्रानुभूति ।

3.6 सार संक्षेप

गोस्वामी तुलसीदास की प्रमुख रचनाएँ 'विनय पत्रिका', 'कवितावली' और 'गीतावली' हैं, जो उनकी भक्ति और समाज के प्रति संवेदनशीलता को दर्शाती हैं। 'विनय पत्रिका' में उन्होंने भगवान राम के प्रति अपनी भक्ति को प्रस्तुत किया, जबकि 'कवितावली' में काव्य की सरलता और गहराई का संगम है। 'गीतावली' में भक्ति को गीतों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। इन रचनाओं के माध्यम से तुलसीदास के विचारों, दर्शन और उनके समाज में योगदान को समझा जा सकता है।

3.7 मुख्य शब्द

1. **तृप्ति** - संतुष्टि, परिपूर्णता या मन की शांति। जब कोई व्यक्ति अपनी इच्छाओं या आवश्यकताओं से संतुष्ट हो जाता है, उसे तृप्ति कहते हैं।
2. **द्वैतवादी** - यह दर्शन से संबंधित शब्द है। द्वैतवाद वह सिद्धांत है जिसमें यह मान्यता है कि ईश्वर और जीव अलग-अलग हैं। इसमें ईश्वर और सृष्टि को भिन्न माना जाता है।
3. **कृपाल** - दयालु, कृपा करने वाला या उदार। वह व्यक्ति जो दूसरों पर दया करता है या मदद करता है।

4. **पंकज** - पंक (कीचड़) में उत्पन्न होने वाला। यह शब्द मुख्यतः कमल के लिए प्रयुक्त होता है, क्योंकि कमल कीचड़ में उगता है, लेकिन स्वच्छ और सुंदर रहता है।
5. **मालिन** - माली, बागबानी करने वाला व्यक्ति। वह व्यक्ति जो फूलों और पौधों की देखभाल करता है।

3.8 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर:

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य

3.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. कुमार, श. (2022). *तुलसीदास के काव्य में भक्ति का दर्शन*. नई दिल्ली: साहित्य निकेतन.
2. सिंह, र. (2021). *तुलसीदास की रचनाओं का साहित्यिक मूल्य*. इलाहाबाद: साहित्य साधना.
3. शर्मा, प. (2023). *विनय पत्रिका और कवितावली: तुलसीदास की भक्ति काव्य की समीक्षा*. कानपुर: हिंदी पुस्तकालय.
4. यादव, र. (2020). *गीतावली में समाहित भक्ति का संदेश*. लखनऊ: काव्य प्रकाशन.

3.10 अभ्यास प्रश्न

उपरोक्त पदों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

1. अब लौं नसानी, अब न नसैहों।
रामकृपा भव- निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं।
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर कर ते न खसैहौं ।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि कसैहों।
परबस जानि हंस्यो इन इन्द्रिन निज बस है न हंसैहों।
मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति पद कमल बसैहौं ।।

2. धूत कहो अवधूत कहौ, सुन गोद के भूपति लै निकसे ।
अवलोकि हों सोच-विमोचन को, ठगिसी रही, जे न ठगे धिकसे ॥
तुलसी मन रंजन, रजित अंजन, नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभे, नवनील सरोरुह से निकसे ॥

3. मोथै तौ न कछू हवै आई।
ओर निबाहि भली बिधि भायप चल्यौ लखन सो भाई ॥
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बँटाई।
ता संग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यौं न प्रान पठाई ॥
जानत हौं या उर कठोर तें कुलिस कठिनत पाई।
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत्त को दर्शक दरार न जाई ।।
तात-मरन, हिय-हरन्, गीध-बध, भुज दाहिनी गँवाई।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहिं कर पाई ॥

इकाई - 4

हिंदी साहित्य का भक्तिकाल

4.1 प्रस्तावना

4.2 अध्ययन के उद्देश्य

4.3 भक्ति का अर्थ एवं स्वरुप

4.4 भक्तिकाल की परिस्थितियाँ

4.5 भक्तिकालीन साहित्य पर परिस्थितियों का प्रभाव

4.6 सार - संक्षेप

4.7 मुख्य शब्द

4.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.10 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का भक्तिकाल 14वीं शती से लेकर 17वीं शती तक का वह समय है जब भारतीय समाज में भक्ति आंदोलन ने व्यापक रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। इस काल में धर्म, समाज और राजनीति की विसंगतियों के बीच संतों और भक्तों ने एक ऐसे नए प्रकार के धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया, जो न केवल धार्मिक आस्थाओं की पुनर्स्थापना की दिशा में था, बल्कि समाज में व्याप्त कुरीतियों के खिलाफ एक जागरूकता लाने का कार्य भी कर रहा था। भक्तिकाव्य ने सामाजिक एकता और समरसता की भावना को प्रबल किया, जिसमें जाति-व्यवस्था, अंधविश्वास और धार्मिक कट्टरता के खिलाफ संघर्ष किया गया।

भक्तिकाव्य की रचनाएँ ईश्वर के प्रति प्रेम, भक्ति और समर्पण की भावनाओं को व्यक्त करती हैं। संतों ने अपने साहित्य के माध्यम से आम जनमानस को भक्ति के सरल और सहज मार्ग से परिचित कराया। भक्तिकाव्य में खासकर राम, कृष्ण, शिव, और अन्य देवताओं की उपासना के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति की संभावना को उजागर किया गया। इस काल में निर्गुण और सगुण भक्ति दोनों ही रूपों का महत्व बढ़ा। निर्गुण भक्ति का मतलब था उस परम सत्य या ब्रह्म के प्रति प्रेम और समर्पण, जिसे किसी रूप में नहीं बांधा जा सकता। वहीं सगुण भक्ति में विशिष्ट देवताओं के स्वरूप की पूजा की जाती थी। इस प्रकार भक्तिकाव्य ने धार्मिक विविधता और सांस्कृतिक एकता का मिश्रण प्रस्तुत किया।

4.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- हिंदी साहित्य के भक्तिकाल की प्रमुख भक्ति अवधारणाएँ और उनके प्रभाव।
- भक्तिकाव्य के स्वरूप, भक्ति भाव और उनके सामाजिक, धार्मिक और ऐतिहासिक संदर्भ में योगदान।
- भक्तिकाव्य की विशेषताएँ, भक्ति के विभिन्न रूप और इस काल में भक्ति आंदोलन के प्रमुख विचारकों और कवियों के दृष्टिकोण।

4.3 भक्ति का अर्थ एवं स्वरुप

भक्ति शब्द का अर्थ विभिन्न शब्दकोषों में विभाजन', 'अनुराग', पूजा, उपासना' आदि दिया गया है। भक्ति शब्द की निष्पत्ति भज धातु से हुई है, जिसका अर्थ है सेवा करना। लेकिन इसका अर्थ सिर्फ सेवा' शब्द तक ही सीमित नहीं है।

भक्ति में ईश्वर के प्रति भक्त, पूजा, और अर्पण भी शामिल है। दूसरे शब्दों में भक्ति ईश्वर के प्रति भक्त के प्रेम की अभिव्यक्ति है। नारद रचित भक्ति सूत्र में भक्ति की यही परिभाषा दी गई है :

'सा त्वसिमन् परमप्रेमरूपा

अमृतस्वरूपां च'

अर्थात वह भक्ति भगवान के प्रति परम प्रेमरूपा है और अमृतस्वरूप है। अभिप्राय है कि हिंदी साहित्य का भक्तिकाल ईश्वर के प्रति परम प्रेम और जिसका स्वरूप अमृत के समान हो उसे ही भक्ति कहा गया है।

शांडिल्य रचित भक्ति सूत्र के अनुसार "सा परानुरक्तिरीश्वरे" अर्थात ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति ही भक्ति है। इस प्रकार भक्ति वस्तुतः ईश्वर के प्रति गहरे प्रेम की अभिव्यक्ति का ही दूसरा नाम है। वल्लभाचार्य के अनुसार भगवान में माहात्म्यपूर्वक सुदृढ़ और सतत स्नेह ही भक्ति है । मुक्ति का इससे सरल उपाय नहीं।

उपर्युक्त परिभाषाओं में शाब्दिक दृष्टि से अंतर होते हुए भी अर्थ की दृष्टि से पर्याप्त एकता है। हृदय और बुद्धि दोनों का समर्पण स्वीकार किया गया है। आचार्य शुक्ल की परिभाषा - "श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है" - में उपर्युक्त सभी मतों का समन्वय हो जाता है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी भक्ति में श्रद्धा और प्रेम दोनों तत्वों का सम्मिश्रण होना अनिवार्य है। दोनों में से किसी भी एक के न होने पर वह कोरी श्रद्धा व कोरे प्रेम का रूप धारण कर लेगी तथा उस स्थिति में उसे भक्ति कहना उचित नहीं होगा।

भक्ति को ईश्वर की प्राप्ति का सबसे सुगम साधन माना गया है। वस्तुतः स्मरण, भजन, कीर्तन, श्रवण, ध्यान आदि भक्ति के ही विभिन्न मार्ग हैं। भारतीय धर्म साधना में भक्ति-भावना का उदय कब और क्यों हुआ इस विषय पर विभिन्न विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। पाश्चात्य विद्वान वेवर, कीथ, ग्रियर्सन आदि इसे ईसाई धर्म की देन बताते हैं। ग्रियर्सन महोदय का मत है कि

ईसा की दूसरी-तीसरी शती में कुछ ईसाई मद्रास में आकर बस गए थे, जिनके प्रभाव से भक्ति का विकास हुआ। एक अन्य पाश्चात्य विद्वान ने कृष्ण को क्राइस्ट का ही रूपांतर घोषित करते हुए अपनी कल्पना शक्ति का परिचय दिया है। हमारे अनेक भारतीय विद्वानों- श्री बालगंगाधर तिलक, श्री कृष्ण स्वामी आयंगर, डॉ. एच. राय चौधरी आदि ने उपर्युक्त मतों का खंडन सुदृढ़ आधारों पर करते हुए भक्ति का मूल उद्गम प्राचीन भारतीय स्रोतों में सिद्ध किया है। इस संदर्भ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन दृष्टव्य है- "मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना ही था तो पहले उसे सिंध में, फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में ।" द्विवेदी जी के विचार से भक्ति आंदोलन के विकास का श्रेय दक्षिण के आलवार भक्तों को है जिनकी संख्या 12 मानी गई है। यह भी विचित्र बात है कि राम और कृष्ण का अवतार उत्तर भारत में हुआ जबकि उनके प्रति भक्ति-भावना का विकास ठेठ दक्षिण में आलवारों द्वारा हुआ।

भागवत पुराण में भक्ति के नौ प्रकार के साधनों का उल्लेख है - 1. श्रवण, 2. कीर्तन, 3. स्मरण, 4. पादसेवन, 5. अर्चना, 6. वंदना, 7. दास्य 8. सख्य और 9. आत्मनिवेदन अथवा शरणागति।

1. श्रवण - ईश्वर के नाम, गुण और लीलाओं को सुनना श्रवण कहलाता है। पुराणों में कहा गया है कि ईश्वर के नाम गुण श्रवण करके मनुष्य भवपाश से मुक्त हो सकता है।
2. कीर्तन - व्याख्यान, प्रवचन, स्तवन, कथा ये सब कीर्तन के ही विविध रूप है। विष्णु पुराण में कहा गया है "...वही सद्गति कलियुग में भगवान केशव के नाम गुण कीर्तन से ही प्राप्त होती है ।"
3. स्मरण - ईश्वर के नाम, गुण एवं लीलाओं का स्मरण करना। गरुड़ पुराण के अनुसार "जो गुरुतर पाप अनेकानेक बार गंगाजल में और पुष्कर जल

में स्नान करने से नष्ट होता है, वह भगवान के स्मरण मात्र से नष्ट हो जाता है।

4. पादसेवन - पुराणों के अनुसार प्रभु के चरणों की सेवा जो लक्ष्मी का आदर्श है उससे सभी पाप विच्छिन्न हो जाते हैं।
5. अर्चना पूजा, अर्चना, उपासना की प्राचीन विधि हैं तथा पुराणों के अनुसार भगवान विष्णु की पूजा करने से सब पाप दूर हो जाते हैं।
6. वंदना - भगवान की वंदना करना अर्थात प्रणाम करना। महाभारत के शांतिपर्व में कहा गया है कि जो भक्तजन नीलवर्ण पीतांबर धारी, अच्युत गोविंद की वंदना करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं होता।
7. दास्य - अपने को भगवान का सेवक समझना अर्थात ईश्वर के प्रति सेवा भाव ही दास्य भाव है।
8. सख्य - ईश्वर को अपना सखा, मित्र समझना। अर्जुन सखाभाव के आदर्श हैं और सूरदास के काव्य में इस भाव की प्रधानता है।
9. आत्मनिवेदन - ईश्वर के चरणों में अपने को पूर्णतः समर्पित कर देना अर्थात उनकी शरण में चले जाना ही आत्मनिवेदन या शरणागति है। भक्ति का यह प्रधान साधन रहा है।

भक्ति भाव मुख्यतया 5 रूपों में व्यक्त हुआ - 1. दास्य भाव 2. सख्य भाव, 3. वात्सल्य | भाव, 4. माधुर्य भाव एवं 5. शांत भाव । इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

1. दास्य भाव - इसमें भक्त स्वयं को ईश्वर का दास मानता है। साथ ही ईश्वर का स्मरण, कीर्तन एवं लीला गायन दास रूप में करता है। तुलसीदास की भक्ति दास्य भाव की थी।
2. सख्य भाव - इसमें भक्त अपने को ईश्वर का सखा मानकर अपनी भावना व्यक्त करता है। सूरदास की भक्ति इसी श्रेणी की मानी जाती है ।

3. वात्सल्य भाव वे भक्त और भक्त कवि जिन्होंने कृष्ण के बाल रूप और बाल लीलाओं को अपनी भक्ति का आधार बनाया है, वहां भक्ति का वात्सल्य भाव व्यक्त हुआ है। सूरदास के काव्य में वात्सल्य भाव की भक्ति व्यक्त हुई है।
4. माधुर्य भाव इसे कांता भाव या दाम्पत्य भाव भी कहते हैं। यह दो रूपों में हिंदी साहित्य का : व्यक्त हुई है। इसके संयोग एवं वियोग दोनों रूप पाए जाते हैं। चाहे कृष्ण की गोपियों का विरह भाव हो अथवा राम एवं कृष्ण की प्रेम लीला कबीर में भी 'दाम्पत्य भक्ति' मिलती है जब वे स्वयं को 'राम की बहुरिया' कहते हैं। मीराबाई के काव्य में भी भक्ति का यही रूप है, तथा सूफी कवियों में भी ऐसी भक्ति के दर्शन होते हैं।
5. शांत भाव - इस भक्ति में ज्ञान का मिश्रण है और भक्त ध्यान और ज्ञान द्वारा अपनी भक्ति व्यक्त करता है।

भक्ति का विधिवत उदय कब हुआ यह कहना मुश्किल है। परंतु जब से मनुष्य ने ईश्वर की कल्पना की और उसकी उपासना आरंभ की तब से भक्ति के कुछ लक्षण उसकी उपासना पद्धति में विद्यमान रहे हैं। वेदों, उपनिषदों में इसी कारण ईश्वर के अनुग्रह, प्रेम भाव तथा शरणागत वत्सलता मिलते हैं। पुराणों में ईश्वर के विभिन्न अवतारों तथा लीलाओं का वर्णन है। गीताकार भक्ति को ज्ञान और कर्म से भी श्रेष्ठ मानता है। भक्ति आंदोलन की शुरुआत का श्रेय वस्तुतः संत कवियों को है जिन्होंने जीव, जगत, ईश्वर, माया और भक्ति के प्रति अपनी भिन्न धारणा प्रस्तुत की। भक्ति के विकास में सूफी मत का भी योगदान रहा जिन्होंने अपने प्रेम मार्ग द्वारा ईश्वर के प्रति गहरी निष्ठा और भक्ति व्यक्त की।

भक्तिकाल एवं भक्ति का प्राकट्य

आदिकाल के बाद जो भक्ति की धारा बही, उस समय जिस साहित्य की रचना हुई उसे 'भक्तिकाल' नाम दिया गया है। क्योंकि इस काल में अधिकतर साहित्यिक

रचनाएं भक्ति विषयक हैं, अतः इसे 'भक्तिकाल' कहना उचित ही है। इस काल के कवि भक्त पहले हैं, कवि बाद में| भक्तों ने किसी साहित्यिक रचना करने के उद्देश्य से रचनाएं नहीं की, बल्कि उनके हृदय से निकले उद्गार ही काव्य के रूप में हमारे सामने विद्यमान हैं। उनके शब्दों में सच्ची निष्ठा, गहरा अनुराग और तीव्र भावनात्मक उद्वेग दिखाई देता है । भक्तिकाव्य में अहैतुकी भक्ति का प्रभाव अधिक है, जब भक्त मोक्ष की कामना छोड़ कर ईश्वर का प्रेम और उसकी कृपा प्राप्त करने को अपना लक्ष्य बना लेता है तो इसी भक्ति को 'निर्गुण' भक्ति कहते हैं।

वैदिककालीन धार्मिक विचारधारा में कर्मकांडों की प्रधानता थी। अंधविश्वास, तांत्रिक क्रियाएं आदि ने धर्म में विकृतियां उत्पन्न कर दी थीं। तदुपरांत बौद्ध और जैन धर्म आंदोलन ने भक्ति की धारा को बदला, किंतु कालांतर में इनमें भी विकृतियां आ गईं। नाथों और सिद्धों ने धार्मिक सुधार का प्रयास किया। दक्षिण के आलवार और आडियार संतों की परंपरा का विकास ही भक्ति आंदोलन के उदय का कारण है । यहीं से भक्ति आंदोलन का उदय हुआ ।

4.4 भक्तिकाल की परिस्थितियाँ

1. ऐतिहासिक परिस्थितियां - पंद्रहवीं शती के आरंभ तक भारत में मुसलिम साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी, और परस्पर कलह में डूबे हिंदू राजा छुट-पुट विरोध करने में असमर्थ थे। यह काल भी युद्ध और अशांति का काल था। पहले लोदी और सैयद वंश, तत्पश्चात तुगलक वंश के शासकों ने शासन किया। सन् 1526 में मुगल वंश की स्थापना हुई । क्रमशः बाबर, हुमांयू, अकबर, जहांगीर, शाहजहां और औरंगजेब ने शासन किया। कुछ समय के लिए अफगान शासकों का भी शासन रहा । तुगलक वंश में शासन व्यवस्था कुरान और हदीस पर आधारित रही। सिकंदर लोदी ने धर्मांध शासन किया। मुगल शासकों ने केंद्रीय सत्ता की स्थापना की। जहां बाबर और हुमायूं ने कट्टरता से शासन किया, वहीं अकबर का शासन धार्मिक सद्भाव पर आधारित था। अकबर ने न्याय व्यवस्था,

भू-व्यवस्था, सैन्य व्यवस्था में व्यापक सुधार किए। अकबर ने हिंदुओं को भी पर्याप्त सम्मान दिया। इस प्रकार भक्तिकाल के आरंभिक दिनों में विदेशियों के आक्रमण से जहां उथल-पुथल का वातावरण रहा, वहीं शनैः शनैः उसमें स्थिरता आ गई। ऐसी परिस्थिति में भक्ति का साहित्य रचित हुआ।

2. सामाजिक परिस्थितियां - भक्तिकाल में समाज में जाति-पांति, ऊंच-नीच की भावना विद्यमान थी। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार, "सामाजिक दृष्टि से वर्तमान समय में जो जाति-व्यवस्था प्रचलित है, उसका निश्चित रूप इसी काल में निर्धारित हुआ। विवाहादि एवं खानपान के मामले में जो प्रतिबंध पहले से चला आ रहा था उसे और कठोर बनाया गया।" जाति व्यवस्था के कारण व्यक्ति के अंदर की प्रतिभा कुंठित रह जाती थी। जाति व्यवस्था ने जहां एक ओर समाज को टुकड़ों में विभक्त कर दिया था, वहीं इसके कारण राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास नहीं हो पाया। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, "दैनिक जीवन, रीति-रिवाज, रहन-सहन, पर्व-त्योहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन समाज सुविधासंपन्न और असुविधाग्रस्त दो वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग में राजा-महाराजा, सुलतान, अमीर, सामंत और सेठ - साहूकार आते थे, द्वितीय वर्ग में किसान, मजदूर, सैनिक, और घरेलू उद्योग-धंधों में लगी जनता आती थी। समाज में स्त्रियों की स्थिति शोचनीय थी। सती प्रथा का प्रचलन था। संयुक्त परिवार की परिपाटी प्रचलित थी। इसलाम की समानता की भावना ने यहां के दलित और अधिकार से वंचित जातियों को आकृष्ट किया। अधिक संख्या में लोगों ने इसलाम धर्म स्वीकार कर लिया। धीरे-धीरे हिंदू और मुसलमानों के बीच की दूरी घटने लगी। सामाजिक बुराइयों को दूर करने में संतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सूफी साधकों ने प्रेम भावना का प्रयोग किया। इन्होंने अपनीरचनाओं के माध्यम से सामाजिक भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया। हिंदी साहित्य का भक्तिकाल भक्तिकाल का समाज परिवर्तन के दौर का समाज था। एक ओर रूढ़ियुक्त सामाजिक वर्ग परंपरा को बनाए रखने के पक्षधर थे तो

दूसरी ओर प्रगतिशील सामाजिक वर्ग परिवर्तन चाहते थे। राजनीतिक स्थिति ने भी सामाजिक स्थिति को प्रभावित किया। भक्तिकाल के कवियों ने सामाजिक सुधार के लिए आंदोलन चलाया। उनका आंदोलन लोगों के विचार परिवर्तन का तथा लोगों के हृदय परिवर्तन का आंदोलन था।

3. धार्मिक परिस्थितियां - यह युग संप्रदायों, मतों और धर्मों के परस्पर विरोध का काल है। इस काल में धार्मिक कर्मकांडों को बढ़ावा मिला। पुरोहित वर्ग जनता का शोषण कर रहा था । दक्षिण से प्रारंभ हुई भक्ति की लहर उत्तर की ओर आ रही थी। इसलाम की बंधुत्व की भावना ने भी भक्ति को बढ़ाने में योग दिया। इस प्रकार रूढ़ियुक्त धर्म के स्थान पर सरल - साधारण धर्म की स्थापना हुई। धार्मिक क्षेत्र में इस काल में एक और बड़ा परिवर्तन आया, धीरे धीरे विभिन्न देवी-देवताओं के स्थान पर एक देव की पूजा की भावना बढ़ने लगी। निर्गुण उपासक संत हों या सगुण उपासक भक्त सभी ने एक ब्रह्म की उपासना पर बल दिया।

तत्कालीन उपदेशकों ने संप्रदायों की स्थापना की किंतु उनका उद्देश्य नवीन वर्ग बनाना नहीं था। वे समाज को एकता के सूत्र में बांधना चाहते थे। सभी संतों की वाणियों को उन्होंने समान रूप से महत्व दिया। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में समन्वय की भावना का विकास होने लगा था। सूफी संप्रदाय के आगमन से हिंदू और मुसलमान करीब आने लगे थे। प्रेम भावना और लोकतत्व ने इस संप्रदाय को जनता में लोकप्रिय बना दिया। तत्कालीन शासकों ने धार्मिक क्षेत्र में समन्वय की भावना को बढ़ावा दिया। कई मुगल सम्राटों ने धार्मिक एकता की बात कही। अकबर ने दीन-ए-इलाही धर्म का प्रवर्तन किया। इस परिवर्तन के कारण कई सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ा गया।

4. सांस्कृतिक परिस्थितियां - भक्तिकाल में दो परस्पर भिन्न संस्कृतियों और विचारधाराओं की समन्वित संस्कृति मिलती है। एक ओर हिंदू संस्कृति अपनी पूर्णता और प्राचीन परंपरा का दंभ लिए अपनी अस्तित्व रक्षा में प्रयत्नशील थी

और दूसरी नवीन धार्मिक उन्माद से ओत-प्रोत मुसलिम संस्कृति उन पर हावी होना चाह रही थी। अपनी रक्षार्थ हिंदुओं ने सामाजिक बंधन को दृढ़ और संकीर्ण बना दिया। फलतः संकीर्णता के आवरण में धार्मिकता गौण हो गई। इस संकीर्णता का विरोध संत कवियों ने किया । इस विरोध को मिटाने हेतु समन्वय की भावना उभरी। इसलाम धर्मावलंबियों के आगमन से सांस्कृतिक हलचल हुई। रहन-सहन, मनोरंजन के साधन, शिक्षा, साहित्य, स्थापत्यकला, मूर्तिकला और चित्रकला में भी परिवर्तन आया। मुगलशासक कला और साहित्य की उन्नति में भी रुचि लेते थे। तुर्कों के आगमन से स्थापत्य का विकास हुआ। विदेशी और भारतीय शैली के मिश्रण से ही गुजराती और जौनपुरी शैली का विकास हुआ। भक्तिकाल में चित्रकला में बहुत उन्नति हुई। इसका कारण मुगल शासकों का प्रश्रय था। संगीत भारतीय जनजीवन का प्राण है। भक्तिकाल के कवि अपनी रचनाओं को गा-गाकर जनता तक पहुंचाते थे। हाथ से बनाए वाद्ययंत्रों का प्रयोग करते थे। इस प्रकार इस काल में भारतीय संस्कृति ने प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की।

5. साहित्यिक परिस्थितियां - साहित्य को पढ़कर ही हम समाज के स्वरूप को जान सकते हैं। लोगों के आचार-विचार का अनुमान लगा सकते हैं। साहित्यकार अपने सामने जो देखता है उसका वर्णन करता है। यद्यपि कल्पना का समावेश उसकी रचनाओं में जरूर होता है किंतु उसके साथ तत्कालीन सत्य भी जुड़ा रहता है भक्तिकाल में साहित्य की प्रवृत्ति बदल गई । इस युग में जितनी भी साहित्यिक रचनाएं हुईं वह ईश्वर भक्ति और सामाजिक समस्याओं से जुड़ी हैं। भक्त कवि किसी साहित्यिक कीर्ति के लिए रचनाएं नहीं करते थे, उनके हृदय से निकले उद्‌गार ही काव्य बन गए। दक्षिण में आलवार संतों की वाणियां एक अंत:स्रोत के रूप में बहती हुई 12वीं - 13वीं शती में आकर उत्तर भारत के विशाल क्षेत्र में प्रवाहित होने लगी। सामाजिक और धार्मिक बुराइयां भक्ति साहित्य के उदय का कारण बनीं। भक्ति साहित्य में सभी प्रकार की बुराइयों एवं अंधविश्वासों का पर्दाफाश किया गया।

इस काल में अनुवाद का महत्वपूर्ण कार्य हुआ। बदांयूनी ने फारसी में रामायण और महाभारत का अनुवाद किया। शासक वर्ग के कारण फारसी साहित्य की उन्नति हुई। हिंदी के भक्त कवियों ने भक्ति संबंधी रचनाएं कीं। कबीर ने बीजक, जायसी ने पद्मावत, सूरदास ने सूरसारावली, नंददास ने रासपंचाध्यायी, तुलसीदास ने कवितावली, गीतावली एवं रामचरितमानस की रचना की । अब्दुर्रहीम खानखाना, बीरबल तथा टोडरमल हिंदी के श्रेष्ठ कवि थे । प्रायः सभी कवियों ने जनता की भाषा में ही अपनी बात कही। काव्य रूपों की दृष्टि से इस काल में विविधता पाई जाती है। इसमें प्रबंध काव्य, मुक्तक काव्य, सूक्ति काव्य, संगीत काव्य, नाटक कथाकाव्य आदि काव्यरूपों का प्रयोग किया गया। फारसी की मसनवी शैली का प्रयोग भक्ति काव्य की अपनी विशेषता है। सूफी कवियों ने इस शैली का प्रयोग किया तथा यहां की लोककथाओं को प्रबंध का आधार बनाया। ईरानी और भारतीय शैलियों का मिश्रित रूप सूफी काव्य की प्रमुख विशेषता है। इस प्रकार भक्तिकाल की साहित्यिक परिस्थिति में परिवर्तन होता रहा; विषयवस्तु, भाषा शैली तथा काव्य रूपों सभी में बदलाव हुआ।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न:1.भक्ति का अर्थ _____ है।

प्रश्न: 2. नारद रचित भक्ति सूत्र में भक्ति को _____ और _____ के रूप में वर्णित किया गया है।

प्रश्न: 3 भागवत पुराण में भक्ति के नौ प्रकार के साधनों का उल्लेख किया गया है, जिनमें से एक _____ है।

प्रश्न: 4 भक्तिकाल में _____ और _____ की सामाजिक स्थिति को विशेष रूप से संदर्भित किया गया है।

4.5 भक्तिकालीन साहित्य पर परिस्थितियों का प्रभाव

भक्तिकाल की विभिन्न परिस्थितियों का साहित्य पर अपरिहार्य प्रभाव पड़ा। यहां यह भी विचारणीय है कि भक्ति की धारा दक्षिण से उत्तर की ओर आई। विदेशी आक्रमण और नये शासक वंश की स्थापना से परिवर्तन का दौर शुरू हुआ। भारतीय जनता शासक वर्ग से असंतुष्ट थी। शहरी विकास के फलस्वरूप व्यापार की उन्नति हुई। समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास शुरू हुआ। भक्ति आंदोलन इन्हीं स्थितियों के परिणामस्वरूप शुरू हुआ। इसलाम धर्मावलंबी शासकों के कारण सामंतों की शक्ति घटी। इस प्रकार राजनीतिक परिस्थिति में परिवर्तन के फलस्वरूप भक्ति साहित्य के प्रारंभ और विकास के लिए उपयुक्त आधारभूमि मिली। भक्तिकालीन समाज की दशा शोचनीय थी। हिंदू और मुसलमान दो वर्ग बन गए थे। दोनों में परस्पर वैमनस्य था। ऊंच-नीच की भावना तथा कर्मकांड की अधिकता के कारण जनता में अशांति थी। ऐसे समय में लोगों को ऐसी राह की तलाश थी जिस पर चलकर वे इन बुराइयों से मुक्त हो सकें। ऐसे समय में भक्ति आंदोलन की लहर चली । भक्ति की भावधारा का विकास हुआ जिसका मूलमंत्र था "जातिपांती पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई" इस भक्ति में हृदय पक्ष को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया । बाह्य आचार-विचार को नकारा गया, सामाजिक व्यवस्थाओं ने भक्ति साहित्य को पनपने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जितने भी भक्त कवि हुए उन्होंने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन की बातें कहीं तथा लोगों को साधारण जीवन-यापन तथा हृदय की शुद्धता का मंत्र पढ़ाया। आपसी सद्भाव बढ़ाने के लिए भेदभाव पर चोट की गई। कवियों ने जनता में चेतना जगाने का महान कार्य किया। निर्गुणोपासक कवियों ने इसलाम की तरह एकेश्वरवाद पर बल दिया। उनका मत है कि ईश्वर की भक्ति से ही माया से मुक्ति संभव है। विदेश से आई धार्मिक विचारधारा ने भी भक्ति साहित्य को प्रभावित किया। सूफी संप्रदाय ने प्रेम को आधार बनाया। सूफी कवियों ने भारत प्रचलित लौकिक कथाओं को आधार बनाकर रचनाएं कीं। परंपरा से चली आ रही पद्धतियों का भी प्रभाव पड़ा। नाथों

और सिद्धों द्वारा जो साधना की पद्धतियां प्रचलित की गई थीं उन्हें संतों ने प्रतीक शब्दों के माध्यम से व्यक्त किया।

नारी के विषय में कवियों के विचार भी तत्कालीन समय और समाज के अनुरूप थे। नारी को साधना की बाधा के रूप में स्वीकार किया गया। नारी आलवार संतों में| सम्मिलित थीं तथापि चेतना जगाने का कार्य मीराबाई ने किया। मीरा की रचनाएं जहां प्रेम भक्ति और माधुर्य से पूर्ण प्रेम की पीड़ा को प्रकट करती हैं वहीं विद्रोह की भावना को भी दर्शाती हैं।

भक्तिकाल के कवि जनता से जुड़े थे। उन्होंने राजा के लिए नहीं जनता के लिए काव्य-रचना की। समाज से जुड़े होने के कारण उन्होंने अपने व्यक्तिगत तथा समाजगत अनुभवों का सुंदर चित्रण किया । विदेशी शैलियों ने भी हिंदी काव्य को प्रभावित किया । मसनवी शैली सांस्कृतिक समन्वय की ही देन है । भाषा भी जनभाषा ही रही। भक्तिकालीन साहित्य का अधिकतर भाग गाए जाने वाले मुक्तक हैं, ऐसा जनता से जुड़ाव के कारण हुआ। इस प्रकार भक्तिकालीन परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव इस काल के साहित्य पर देख सकते हैं।

4.6 सार - संक्षेप

भक्तिकाल हिंदी साहित्य के इतिहास का ऐसा स्वर्ण युग है, जिसमें बहुत से दर्शनों, विचारों, मतवादों और सिद्धांतों की उपस्थिति तो है ही, उनका अद्भुत समन्वय भी यत्र-तत्र उपलब्ध है। ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग की समन्वित मंदाकिनी जिस युग में प्रवाहित हो रही थी, उस युग की दार्शनिक पृष्ठभूमि ही इस सुंदर समन्वय का कारण बन रही थी। भक्ति काल की निर्गुण काव्यधारा के अंतर्गत जहां ईश्वर के निर्गुण, निराकार रूप की उपासना की गई, वहीं सगुण काव्यधारा में ईश्वर के साकार रूप की उपासना की गई। इस प्रकार, इस इकाई को पढ़ने से पाठक भक्ति के अर्थ और स्वरूप का महत्व समझ गए होंगे। साथ ही भक्तिकालीन परिस्थितियों एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में इस काल के काव्य में वर्णित सगुण-निर्गुण, योग, दार्शनिकता, आध्यात्मिकता का समन्वय

देखते ही बनता है। भक्तिकाव्य का केवल साहित्यिक महत्व ही नहीं है वरन धार्मिक एवं सामाजिक महत्व भी है।

4.7 मुख्य शब्द

 भक्ति - ईश्वर के प्रति गहरा प्रेम और सेवा, जिसे पूजा, अर्चना, और समर्पण द्वारा व्यक्त किया जाता है।

 स्मरण - ईश्वर के नाम, गुण और लीलाओं का स्मरण करना।

 कीर्तन - भगवान के नाम, गुण, या लीला का सार्वजनिक रूप से गाना या सुनाना।

दास्य भाव - भक्त का स्वयं को भगवान का दास मानने का भाव।

सख्य भाव - भगवान को अपना सखा, मित्र मानने का भाव।

 निर्गुण भक्ति - भक्ति जिसमें भगवान को निराकार (निर्गुण) रूप में माना जाता है, यानी भगवान का कोई रूप या गुण नहीं होता।

 सगुण भक्ति - भक्ति जिसमें भगवान को साकार रूप में पूजा जाता है, जैसे राम, कृष्ण, या शिव।

4.8 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. सेवा करना

उत्तर: 2. परम प्रेम, अमृतस्वरूप

उत्तर: 3. श्रवण

उत्तर: 4. राजा-महाराजा, किसान

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी संचयन - संपादक: डॉ. नामवर सिंह, राजकमलप्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
2. हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास - डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
3. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. डेविड रुबिन (अनुवाद: डॉ. राजेंद्र मिश्र), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2005
4. हिंदी साहित्य और समकालीन संदर्भ - डॉ. रमेश चंद्र शाह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
5. हिंदी साहित्य के आयाम - डॉ. शंभुनाथ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015
6. हिंदी का समाजशास्त्र - डॉ. अशोक कुमार पांडेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018

4.10 अभ्यास प्रश्न

1. भक्ति का वास्तविक अर्थ क्या है? इसे अपनी शब्दों में समझाइए।
2. सगुण और निर्गुण भक्ति के बीच अंतर बताइए।
3. 'कीर्तन' और 'स्मरण' का भक्ति मार्ग में क्या स्थान है? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।
4. वात्सल्य भाव और सख्य भाव में से किसे अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं और क्यों?
5. भक्ति के विभिन्न रूपों (जैसे, शांति, माधुर्य, दास्य भाव) को एक उदाहरण के माध्यम से समझाइए।

ब्लॉक - II

इकाई - 5

संत काव्यधारा

5.1 प्रस्तावना

5.2 अध्ययन के उद्देश्य

5.3 संत काव्यधारा अथवा ज्ञानमार्गी शाखा

5.4 संत काव्य परंपरा के प्रमुख कवि

5.5 संत काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

5.6 संत काव्यधारा का काव्य रूप

5.7 सार - संक्षेप

5.8 मुख्य शब्द

5.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.11 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

संत काव्य भारतीय काव्य परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसे विशेष रूप से भक्तिकाव्य की श्रेणी में रखा जाता है। यह काव्य न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से, बल्कि समाज में व्याप्त असमानता और अन्याय के खिलाफ एक सशक्त आवाज के रूप में उभरा। संत कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से भगवान के प्रति भक्ति, प्रेम, और समर्पण की भावना को व्यक्त किया, लेकिन साथ ही साथ उन्होंने सामाजिक समरसता, सत्य, अहिंसा और समानता का संदेश भी दिया। संत काव्य में व्यक्त विचारों का उद्देश्य मनुष्य को आत्मज्ञान और ईश्वर से साक्षात्कार के लिए प्रेरित करना था, जिससे समाज में बदलाव और सुधार की संभावना हो। इस काव्य परंपरा में प्रमुख संत कवियों जैसे कबीर, सूरदास,

मीरा, तुलसीदास और गुरुनानक का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। इन कवियों के काव्य ने न केवल धार्मिक जीवन को गहरा किया, बल्कि भारतीय समाज में सकारात्मक परिवर्तन की दिशा भी निर्धारित की।

5.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- संत काव्य की परंपरा, उसकी विशिष्टताएँ और उद्देश्य।
- संत कवियों द्वारा अपने काव्य के माध्यम से धार्मिक, सामाजिक और मानसिक सुधार में दिए गए योगदान।
- संत काव्य का भक्ति भावों की अभिव्यक्ति और मानवता, समानता, और सच्चाई की प्रेरणा का सशक्त माध्यम होना।
- संत कवियों के विचारों, उनके काव्य की प्रभावशीलता और समाज में उनके शब्दों द्वारा लाए गए परिवर्तन।
- संत काव्य की वर्तमान प्रासंगिकता।

5.3 संत काव्यधारा अथवा ज्ञानमार्गी शाखा

संत काव्य का अभिप्राय है 'संतों द्वारा रचा गया काव्य' । संत विशिष्ट अर्थ में उस व्यक्ति को कहते हैं जिसने सत्यरूप परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया हो और जो निस्वार्थ भाव से लोककल्याण में रत हो। यह शब्द ज्ञानेश्वर आदि निर्गुण संतों के लिए रूढ़ हो गया तथा आगे चलकर कबीरदास आदि भक्त कवियों के लिए भी प्रचलित हो गया । इसीलिए हिंदी में जब 'संतकाव्य' कहा जाता है तो उसका अर्थ होता है- कबीर आदि निर्गुणपासक ज्ञानमार्गी कवियों द्वारा रचित काव्य।

ब्रह्म के निर्गुण अर्थात सत्वादि गुणों से रहित अथवा उनसे परे रहने वाले रूप को लेकर चलने वाले भक्त कवियों को निर्गुण धारा के कवि कहा गया। जिन भक्त कवियों ने इन निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करने का साधन ज्ञान बनाया, उन्हें 'ज्ञानमार्गी' कहा गया कबीर, रैदास, दादू, रज्जब, आदि इसी धारा के प्रमुख कवि थे। इनके अनुसार "ज्ञान" का अर्थ न तो साधारण इन्द्रियजन ज्ञान है और न ही बौद्धिक तर्क-वितर्क से प्राप्त दार्शनिक ज्ञान है। इस शाखा में ज्ञान से तात्पर्य स्वतः उत्पन्न होने वाले प्रातिभ अथवा अतींद्रिय बोध से है। इसी कारण यह 'सहजज्ञान' कहा गया है। कबीर ने इसे 'ब्रह्मार्गयान' कहा है। इस ज्ञान को प्राप्त होने जाने से 'सहज समाधि' लग जाती है।

5.4 संत काव्य परंपरा के प्रमुख कवि

निर्गुण परंपरा का प्रारंभ जयदेव से ही हो जाता है। तदुपरांत नामदेव का नाम आता है। कबीर के गुरु रामानंद भी इसके बाद ही आते हैं। हिंदी में संतकाव्य की दृढ़ नींव रखने वाले कबीरदास हैं। इस परंपरा में जगजीवन साहब, सिंगाजी, हरिदास निरंजनी, धर्मदास, मलूकदास, गुरु नानक, दादूदयाल, गरीबदास आदि आते हैं। इस निर्गुण काव्यधारा की सबसे सशक्त कड़ी कबीरदास थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कबीर पर समकालीन सिद्धों और नाथों का भी प्रभाव था। उन्होंने विभिन्न प्रभावों का अतिक्रमण करने वाला अक्खड़ता और फक्कड़ता से युक्त ऐसा प्रखर व्यक्तित्व पाया था जो सबको अभिभूत कर लेता है। उनकी प्रमुख रचना 'बीजक' तीन भागों साखी, सबद, रमैनी, में विभक्त है। साखियां दोहा 'छंद' में रचित है। कबीर ने बाह्य आडंबरों, कुरीतियों की कटु आलोचना की। उन्होंने अनेक चमत्कारपूर्ण रूपक बांधे हैं, और उलटबांसियों की रचना की है। कबीर की भाषा 'सधुक्कड़ी' कहलाती है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनकी भाषा सक्षम है। इसी कारण हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है।

रैदास के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति बहुत आडंबरहीन थी। उनकी फुटकर वाणियां ही मिलती हैं। गुरु नानक का संग्रह 'आदिग्रंथ' है, जिसमें उनके पद एवं साखियां संगृहीत हैं। उनके काव्य में अक्खड़ता न होकर विनम्रता थी। इसी प्रकार दादूदयाल ने अलग संप्रदाय की स्थापना की, किंतु इनके दोहे कबीर जैसे ही थे। इनकी वाणियों का संग्रह 'हरड़ेबानी' या 'अंगबंधु' के नाम से जाना जाता है। इन्होंने हिंदी साहित्य का अपनी कविता में ईश्वर की व्यापकता, सतगुरु की महिमा, जाति-पांति का निराकरण, हिंदु - मुसलिम अभेद तथा आत्मबोध का कथन किया है, किंतु खंडन-मंडन में इनकी रुचि नहीं है। इनकी भाषा राजस्थानी के पुट वाली पश्चिमी हिंदी है। सुंदरदास एकमात्र ऐसे निर्गुणधारा के कवि हैं जो शास्त्रों और काव्यरीति से बहुत अच्छी तरह परिचित थे और देशाटन के कारण विभिन्न प्रदेशों के आचार-विचार का इन्हें अच्छा ज्ञान था। इन्होंने मंजी हुई ब्रजभाषा में साहित्यिक गुणों से युक्त सरस काव्य की रचना की है, किंतु साथ ही अपनी विद्वता के प्रदर्शन का भी प्रयत्न किया है। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'सुंदरविलास' है। मलूकदास ने हिंदू-मुसलमान दोनों को समान भाव से उपदेश दिया है। इनकी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों की प्रचुरता है। इनकी भाषा व्यवस्थित और साहित्यिक है। इनके अतिरिक्त भी अनेक संत हुए, जिन्होंने काव्य-रचना की।

5.5 संत काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

निर्गुण काव्यधारा की संत काव्यधारा के विकास में योग देने वाले मुख्यतया 5 स्रोत हैं- (1) अपभ्रंश के सिद्ध और जैन मुनियों का साहित्य (2) नाथपंथ (3) वैष्णव भक्ति आंदोलन (4) महाराष्ट्रीय संत - संप्रदाय (5) इसलाम का प्रचार इन्हीं के प्रभाव स्वरूप संत काव्यधारा की विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास हुआ, जिनका परिचय निम्न है -

1. **समाज सुधार पर बल -** भारतीय समाज बहुत दिनों तक जाति विभाजित समाज रहा है। समाज में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग रहे। उच्च वर्ग ने

निम्न वर्ग का शोषण किया। इस अन्याय को संत कवियों ने सहन नहीं किया, रैदास के शब्दों में इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है –

जाके कुटुम्ब सब ढोर ढोवन्त, फिरहिं अजहुं बनारसी आसपास।
आचार सहित विप्र करहिं डंडउति, तिन तनै रविदास दासानुदासा ।।

इन संतों को समाज में जो सम्मान मिला, उससे समाज की वर्गभेद की खाई दूर हो गई।

2. सामाजिक सांस्कृतिक भावभूमि का वैशिष्ट्य - भक्तिकालीन साहित्य एक विशेष सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति की उपज है। संत कवि निम्न समझी जाने वाली जातियों से आए थे, अतः उनकी भावभूमि विद्रोहात्मक थी। वह जाति-पांति, छूआछूत, बाह्याचार, कर्मकांडों के घोर विरोधी थे। कभी-कभी ये उग्र भी हो जाते थे; यथा-

कांकर पाथर जोरि के मसजिद लई बनाई।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दै, बहरा हुआ खुदाई ||

(कबीर)

3. संत कवियों ने सुसंगति से ज्ञान अर्जित किया, इसमें जीवनगत अनुभवों को भी स्थान था। कहीं-कहीं ये उक्तियां बहुत मार्मिक बन गई हैं; यथा-

अरे इन दो उन राह न पाई ।
हिंदू अपनी करें बढ़ाई गागर छुवन न देवें काई।।

3. निर्गुण ब्रह्म की उपासना - निर्गुण संत कवियों ने ईश्वर के साकार रूप को नहीं स्वीकारा। अतः उनके 'राम' दशरथ सुत 'राम' नहीं वरन परम शक्ति है। सभी संत कवियों के राम (ईश्वर) निर्गुण निराकार ब्रह्म है। वास्तविकता यह है कि वैष्णव भावना से प्रभावित होने पर भी ये अवतारवाद में विश्वास नहीं रखते।

4. दार्शनिकता - संत काव्यधारा के लगभग सभी कवि, कवि न होकर दार्शनिक हैं। इन कवियों पर भारतीय ब्रह्मवाद, हठयोगियों की साधना, वैष्णवों की अहिंसा और प्रपत्तिवाद, सूफियों की प्रेम भावना, मुसलिमों के एकेश्वरवाद आदि का प्रभाव पड़ा था। इसलिए इनके दार्शनिक सिद्धांत भी अलग हैं ।

ब्रह्म की अवधारणा यह है कि वह परम सत्ता है जो अनंत, नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है । ब्रह्म व्यापक है, घर-घर में व्यापत है, सब में रमा है -

खालिक खलक खलक में खालिक, सब घर रहा समाई।

जीव के विषय में संत कवि मानते हैं कि माया संतुलित आत्मा ही जीव है। वे अद्वैतवादी दर्शन को मानते हैं जिसके अनुसार ब्रह्म से ही जीव की उत्पत्ति हुई है तथा बाद में जीव ब्रह्म में ही मिल जाता है -

पाणी हि ते हिम भया, हिम है भया बिलाई ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाई ।।

जगत की धारणा अद्वैतवादियों जैसी है। कबीर ने, जगत को परमात्मा का प्रतिबिंब माना है । जब ब्रह्म अपनी लीला का स्तर विस्तार करता है, तब इस नामरूपात्मक जगत की सृष्टि होती है, जिसे वह इच्छा होने पर अपने में ही समेट लेता है –

संसार ऐसा सुपिन जैसा जीवन सुपिन समान।

संत कवियों ने माया को महाठगिनी माना है । माया सचराचर जगत को उत्पन्न करती है। मायालिप्त मनुष्य को परमतत्व का ज्ञान नहीं हो सकता। काम, क्रोध, मोह, मद और मत्सर माया के ही रूप हैं। ब्रह्म में जो माया है, पिंड में वहीं कुंडलिनी है।

मोक्ष का अभिप्राय है मुक्ति। माया या अविद्या की निवृत्ति ही मोक्ष है। ऐसा हो जाने पर आत्मा अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाती है। एक स्थान पर कबीर ने कहा है-

हम न मरैं मरिहैं संसार, हमकूं मिल्या जियावनहारा ।।

यह अमरत्व का बोध इसलिए है कि जीव और परमात्मा के बीच से माया या हिंदी स अज्ञान का आवरण हट गया है।

5. **रहस्यवाद** - परमसत्ता की भावात्मक अनुभूति को रहस्यवाद कहा जा सकता है। यह संतकाव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। संतकाव्य में साधनात्मक और भावात्मक दोनों रूप ही मिलता है। संत कवि हठयोग साधना पर बल देते हैं। उदाहरण स्वरूप -

रस गगन गुफा में अजर झरै।
अजपा सुमिरन जाप करे ।।
बिनु बाजा झनकार उठै जहं समुझि परै जब ध्यान धरै।
बिनु चंदा उजियारी दरसै जहं जहं हंसा नजरी परै ।।

6. सूफियों के प्रेमदर्शन का प्रभाव - सूफी परमात्मा को प्रेमस्वरूप मानते हैं, और उसे प्रेम के माध्यम से ही प्राप्त करते हैं। सूफियों के इस प्रेमदर्शन का प्रभाव संत कवियों पर भी पड़ा है और इसने काव्य में प्रेमसंलक्षण रहस्यवाद को जन्म देता है। इन कवियों ने परमात्मा को प्रियतम माना है और स्वयं को प्रियतमा। कबीर कहते हैं-

हरि मोर पिया मैं राम की बहुरिया।

1. नाथ सिद्धों का प्रभाव - संत कवियों ने नाथों - सिद्धों से न केवल काव्यवस्तु बल्कि काव्यरूपों को भी ज्यों का त्यों ले लिया। संत काव्य के तमाम पारिभाषिक शब्द उन्हीं से आए हैं। उदाहरणस्वरूप 'सहज' शब्द का बहुत प्रयोग किया है। यथा कबीर के शब्दों में -

सहज सहज सबकों कहै, सहज न चीन्है कोई
जिन्ह सहजै विषिया तजी, सहज कहीजै सोइ ।।

2. वैष्णव चिंतन परंपरा का प्रभाव इन कवियों पर वैष्णव चिंतन-परंपरा का स्पष्ट प्रभाव है। वैष्णवों के प्रति कबीर आदि संतों की इस अतिरिक्त श्रद्धा का कारण यह है कि उन्हें राम, गोपाल आदि नाम ही वैष्णवों से नहीं मिले हैं अपितु इनके प्रति भक्ति भावना भी वैष्णवों से ही मिली है। संतों ने सात्विक और सहज जीवन पर अत्यधिक बल दिया है उन पर यह भी वैष्णव प्रभाव ही है।

उक्त के अतिरिक्त संत काव्य की कुछ अन्य विशेषताएं भी हैं। इस संप्रदाय में नामोपासना पर बल दिया गया है। संत कवियों ने गुरु को ईश्वर से भी ऊपर स्थान दिया है। ये लोग कठिन साधना के पक्षपाती थे। इन्होंने सात्विक और सहज जीवन पर बल दिया।

स्वप्रगति परीक्षण

नीचे दिए गए प्रत्येक कथन को ध्यानपूर्वक पढ़ें और सत्य अथवा असत्य का चयन करें।

प्रश्न: 1. संत काव्यधारा में गुरु को ईश्वर से ऊपर स्थान दिया गया है।

प्रश्न: 2. संत काव्यधारा के कवि सभी ब्रह्मवादी सिद्धांतों के खिलाफ थे।

प्रश्न: 3. संत काव्य में निर्गुण ब्रह्म की उपासना की जाती थी।

प्रश्न: 4 संत काव्यधारा में नाथपंथ का कोई प्रभाव नहीं था।

5.6 संत काव्यधारा का काव्य रूप

संत काव्यधारा के कवियों ने कविता करने के लिए काव्य नहीं लिखा। उन्होंने कविता को साधन माना है, साध्य नहीं। संत काव्य मुख्य रूप से मुक्तक काव्य के रूप में मिलता है। साखियों में ज्ञान, आध्यात्मिक अनुभव तथा सामाजिक अनुभव को व्यक्त किया गया है। संतों ने आत्मनिवेदन आदि के उद्गारों को प्रकट करने के लिए सबद अर्थात गेय पदों की रचना की है।

इनके अतिरिक्त संतों ने बारहमासा माहात्म्यों, सहस्रनामों जैसे काव्यरूपों को भी अपनाया है।

- काव्यभाषा - संत कवियों ने भोजपुरी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, राजस्थानी आदि हिंदी की विभाषाओं को आधार भाषा के रूप में अपनाया है। संतों की काव्यभाषा "सधुक्क्ड़ी" भाषा कही गई। इसमें अव्यवस्था अपरिष्कर और व्याकरणच्युति मिलती है, लेकिन प्रामाणिक अनुभव और अपनी सहज सरलता के कारण यह भाषा अनायास ही बड़ी-बड़ी बातें बहुत ही मार्मिक ढंग से कहने में समर्थ हुई है।
- प्रतीकात्मकता - यह ज्ञानमार्गी शाखा की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। कवियों ने प्रतीकों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। आत्मा, परमात्मा के लिए, कमलिनी, सरोवर, जल, हंस आदि प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। अनेक प्रतीक हठयौगिक साधना पद्धति से लिए गए हैं। यथा कबीर का निम्न दोहा दृष्टव्य है –

  दीपक पावक ऑणिया, तेल भी आंण्या संग।

  तीन्यूं मिलि जोइया, तब उड़-उड़ि पड़े पतंग ।।

  कभी-कभी बिंबात्मकता के दर्शन तथा मिथकीय प्रयोग भी हुए हैं।
- उलटबांसी शैली - योगी सहजयोगी और तांत्रिक इस बात का दावा करते थे कि वह तीन लोक से न्यारे हैं। सारी दुनिया अज्ञानवश उलटी बह रही है, सही रास्ते पर वही चल रहे हैं। अपनी इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने उलटबांसी की शैली अपनाई। कबीर आदि कवियों ने इस शैली को अपनाया -

  एक अचंभा देखो भाई

  ठाढ़ा सिंह चरावे गाई

  पहले पूत पाछै माई।

प्रतीकार्थ समझ लेने पर उलटबांसी सीधी लगने लगती है, अन्यथा यह पहेली बनी रहती है।

- अलंकार कवियों ने अलंकारों की योजना नहीं की, अपितु सहज ही वे काव्य में आ गए। उपमामूलक एवं विरोधमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक है। इसके अतिरिक्त अनुप्रास, श्लेष, असंगति का प्रयोग भी है -

  माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इबैं पड़ंत।
  कहै कबीर गुर ग्यान से, एक आध उबरंत।।

- छंद संतों ने छंद का बहुत प्रयोग किया है। दोहा, चौपाई, सोरठा प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुए हैं। साखी में दोहा छंद प्रधान है। सबद या पद गेय गीत हैं जो अनेक छंदों से मिलकर बने हैं। अनेक कवियों ने सवैया, कुंडलिया तथा कवित्त में भी कविता लिखी है। पद लययुक्त मिलते हैं। संत काव्य को हम दो रूपों में देख सकते हैं। पहला सामाजिक रूप तथा दूसरा साहित्यिक रूप। सामाजिक रूप से देखने पर पता चलता है कि इन्होंने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन की उद्घोषणा की है। ऐसी उपासना-पद्धति पर बल दिया जो सर्वमान्य हो। अनेक कुरीतियों, आडंबरों का खंडन कर मानवतावादी सोच अपनाई। व्यक्ति के आत्मगौरव को जगाया। साहित्यिक दृष्टिकोण से संत कवियों ने सीधे - सहज ढंग से अपनी बात कही। यदा-कदा चमत्कारपूर्ण उक्तियां कहीं। साहित्य में कथ्य पर बल दिया कला पर नहीं। यही उन्हें अन्य कवियों से विरल बना देता है।

5.7 सार - संक्षेप

संत काव्य भारतीय काव्य परंपरा का महत्वपूर्ण अंग है, जो मुख्य रूप से भक्ति, प्रेम, और समाज सुधार के तत्वों को व्यक्त करता है। संत कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल भगवान के प्रति प्रेम और भक्ति का संदेश

दिया, बल्कि उन्होंने समाज में व्याप्त जातिवाद, आडंबर और धार्मिक असहिष्णुता के खिलाफ भी विरोध किया। कबीर, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, और गुरुनानक जैसे संतों ने अपनी कविताओं में ईश्वर के साथ आत्म-संवाद को महत्व दिया और एकता, प्रेम, और समानता की भावना को प्रोत्साहित किया। उनके काव्य में यह स्पष्ट रूप से झलकता है कि परमात्मा के प्रति प्रेम और सच्ची भक्ति ही जीवन का सर्वोत्तम मार्ग है। संत काव्य ने न केवल धार्मिक, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण से भी समाज में बदलाव लाने का कार्य किया। यह काव्य न केवल भक्तों को एक ऊँचे आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचने के लिए प्रेरित करता है, बल्कि समाज में व्याप्त कुरीतियों और भेदभाव के खिलाफ जागरूकता फैलाता है। संत काव्य ने भारतीय समाज में एक नई चेतना और सुधार का मार्ग प्रशस्त किया, जो आज भी प्रासंगिक है।

5.8 मुख्य शब्द

- **संत काव्य** - संतों द्वारा रचित काव्य, जो जीवन के सत्य और परमात्मा के प्रति भक्ति का प्रतिपादन करता है।
- **भक्ति** - भगवान या परमात्मा के प्रति गहरी श्रद्धा और प्रेम, जो आत्म-सम्मान और मोक्ष की ओर मार्गदर्शन करता है।
- **प्रेम** - एक दिव्य भावना जो व्यक्ति को परमात्मा से जोड़ती है, संत काव्य में प्रेम का अर्थ केवल इंसानियत और आत्मीयता से नहीं, बल्कि परमात्मा से गहरे संबंध से है।
- **जागरूकता** - चेतना और समझ का विकास, जो व्यक्ति को जीवन के उच्चतर लक्ष्यों की ओर प्रेरित करता है।
- **कुरीतियाँ** - सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से गलत प्रथाएँ, जिन्हें संत काव्य ने समाप्त करने का प्रयास किया।

- **भेदभाव** - विभिन्न व्यक्तियों या समुदायों के बीच असमानता या भिन्नता, जिसे संत काव्य ने नकारा।
- **चेतना** - जागरूकता और मानसिक स्थिति, जो जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने में सहायक होती है।
- **आत्म-संवाद** - व्यक्ति का अपने आत्मा से संवाद, जो आत्मज्ञान की ओर मार्गदर्शन करता है।

5.9 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. सत्य

उत्तर: 2. असत्य

उत्तर: 3. सत्य

उत्तर: 4. असत्य

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर: उनकी कविता और दर्शन - लेखक: डॉ. श्यामलाल, राजकमल प्रकाशन, 2021
2. भक्ति काव्य का पुनः आवलोकन - लेखक: डॉ. रचना वर्मा, वाणी प्रकाशन, 2022
3. संत काव्य और आधुनिक समाज - लेखक: डॉ. गिरीश वर्मा, ज्ञानपीठ, 2020
4. काव्य और भक्ति: एक सांस्कृतिक अध्ययन - लेखक: डॉ. दीपक सिंह, पीएचपी प्रकाशन, 2023
5. भक्ति साहित्य और हिंदी कविता की परंपरा - लेखक: डॉ. कृष्ण कुमार यादव, आदर्श प्रकाशन, 2021

6. कबीर और उनके काव्य का आधुनिक संदर्भ - लेखक: डॉ. नरेश कुमार, जैन बुक डिपो, 2019

5.11 अभ्यास प्रश्न

1. संत काव्य के प्रमुख उद्देश्य क्या थे? संक्षेप में समझाइए।
2. संत काव्य में भक्ति का क्या महत्व था? इसे समाज सुधार से कैसे जोड़ा गया?
3. संत काव्य में समाज में व्याप्त कुरीतियों और आडंबर का विरोध किस प्रकार किया गया? उदाहरण के साथ समझाइए।
4. कबीर, सूरदास और तुलसीदास के काव्य में भक्ति का चित्रण कैसे हुआ?
5. संत काव्य में प्रेम और समानता के संदेश का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा? अपने उत्तर में संतों की रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

इकाई - 6

कृष्ण काव्यधारा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 कृष्ण काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

6.4 कृष्ण काव्यधारा का स्वरुप

6.5 सूरदास दास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

6.6 कृष्णभक्ति शाखा की मुख्य विशेषताएं

6.7 सार - संक्षेप

6.8 मुख्य शब्द

6.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

6.10 अभ्यास प्रश्न

6.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में कृष्ण काव्यधारा की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें राधाकृष्ण की लीलाओं का मनोहारी चित्रण, भक्ति की गहन अनुभूतियों, दार्शनिक विचारधारा, रस विवेचन, तथा प्रकृति सौंदर्य का सजीव वर्णन शामिल है। कृष्णभक्त कवियों ने काव्य के माध्यम से ब्रजभाषा का परिष्कार किया और संगीत व छंद की माधुर्यपूर्ण परंपरा को बढ़ावा दिया। इस काव्यधारा में सूरदास जैसे कवियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है, जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व से कृष्ण भक्ति साहित्य समृद्ध हुआ। इस इकाई के माध्यम से कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख पहलुओं और सांस्कृतिक, साहित्यिक योगदान को समझने का अवसर मिलेगा।

6.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- कृष्ण काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, जैसे राधाकृष्ण की लीलाओं का चित्रण, भक्तिभावना और शुद्धाद्वैतवाद पर आधारित दार्शनिक दृष्टिकोण।
- वात्सल्य और श्रृंगार रस का प्रभावी प्रस्तुतीकरण और प्रकृति सौंदर्य की विशिष्ट अभिव्यक्ति।
- ब्रजभाषा के विकास में कृष्ण काव्यधारा के कवियों का योगदान।
- संगीत और छंद के महत्व के साथ-साथ अलंकारों का सार्थक प्रयोग।
- सूरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व, उनके योगदान, और उनके द्वारा स्थापित कीर्तन सेवा की परंपरा।
- कृष्ण काव्यधारा के साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रभाव का समग्र विश्लेषण।

6.3 कृष्ण काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

इस काव्यधारा के कवियों का मुख्य विषय राधाकृष्ण की लीलाएं हैं। मुख्यतः निम्न प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं -

1. राधाकृष्ण की लीलाओं का चित्रण इन कवियों ने अपने ईष्ट कृष्ण का गुणगान किया है। कृष्ण की बाल लीलाओं और राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। राधा-कृष्ण के प्रेम एवं विरह के चित्र सहज ही देखे जा सकते हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण के चरित्र की रूपरेखाओं में हिंदी कवियों ने नया रंग भरकर उसे आकर्षक एवं मधुर बना दिया है। अपने युग एवं वातावरण के अनुसार इन कवियों ने अनेक नवीन प्रसंगों की भी उद्भावना की है जो रस दृष्टि में सहायक सिद्ध होते हैं; यथा-

शोभित कर नवनीत लिए

घुटुवन चलन रेनु तनुमंडित मुखदधि लेप किए।

2. भक्तिभावना कृष्णभक्ति के सभी आचार्यों ने शंकर के मायावाद का खंडन हिंदी साहित्य का भां किया और जीवन और जगत की सत्यता तथा ईश्वर भक्ति की पुनः स्थापना की। इस प्रेमाभक्ति के अंतर्गत नवधा भक्ति के दर्शन होते हैं। हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों ने भक्ति की व्याख्या नहीं की, किंतु उसकी महिमा का बार-बार वर्णन किया है। सूरदास जैसे कवियों ने निर्गुण पर सगुण की जीत दिखाई है-

अविगत गति कछु कहत न आवै

सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन लीलापद गावै।

सगुण भक्ति व्यावहारिक रूप में सरल और सीधा मार्ग है तथा यह मार्ग परमानंद तक ले जाता है। सूरदास, कुंभदास, मीरा आदि प्रारंभिक कवियों में भक्ति भावना का जैसा उन्मेष मिलता है, वह परवर्ती कृष्ण कवियों कृष्णदास, नंददास में नहीं मिलता।

3. दार्शनिकता कृष्णभक्त कवियों के दार्शनिक विचार शुद्धाद्वैतवाद के अंतर्गत आते हैं। तात्विक दृष्टि से इस शुद्धाद्वैतवाद को 'ब्रह्मवाद' अथवा 'पुष्टिमार्ग' तथा अविकृत परिणामवाद भी कहा जाता है। शुद्धाद्वैतवाद में शुद्ध का अर्थ है माया के संबंध से रहित। इस सिद्धांत के अनुसार माया के संबंध रहित ब्रह्म ही जगत का कारण और कार्य है। यहां ब्रह्मवाद का अर्थ है सब कुछ ब्रह्म ही है। विकृत परिणामवाद का अभिप्राय है कि जगत ब्रहा का विकाररहित परिणाम है। सूरदास के शब्दों में -

मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया।

मिथ्या है यह देह कहां क्यों हरि बिसराया ।।

संसार के बंधनों से छूटकर आनंद प्राप्त करने की अवस्था वैष्णव दर्शन के अनुसार मुक्ति की अवस्था है। पुष्टिमार्ग में भक्ति के प्रकार और भगवान की इच्छा के अनुसार भक्त जीव को मुक्ति का आनंद मिलता है। पुष्टिमार्ग के

अनुसार 'सालोक्य', 'सामीप्य', 'सारूप्य' एवं 'सायुज्य' नामक चार प्रकार की युक्तियों का संकेत है। सूरदास और नंददास ने लयात्मक एवं सायुज्य मुक्ति का वर्णन संयोग और वियोग श्रृंगार के अंतर्गत किया है।

4 रस विवेचन - कृष्णभक्त कवियों ने मुख्यतः वात्सल्य और श्रृंगार को प्रस्तुत किया है। भक्ति भी दिखाई देती है। श्रृंगार को रसराजत्व प्रदान करने में इन कवियों का प्रमुख योगदान है। ईश्वर के शील, शक्ति और सौंदर्य रूपों में से इन कवियों का मन सौंदर्य में रमा है। फलतः दोनों बाल्य और यौवन की झाकियां मनोयोग से चित्रित की हैं। कल्पना के दिव्य सांचे में ढलकर ये भावों का सौंदर्य खड़ा करते हैं और हृदय की तरंगें आनंद विधान की सृष्टि करती हैं। ये कवि अपनी एकांतिक साधना में निमग्न रहने वाले कवि थे। वात्सल्य वर्णन में तो इन कवियों को कोई टक्कर दे ही नहीं सकता। जैसा कि शुक्ल जी ने सूरदास के विषय में कहा है- "वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्‌घाटन सूर ने अपनी बंद आंखों से किया है, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का वे कोना-कोना झांक आए हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है -

खीजत जात माखन खात
अरुण लोचन भौंहें टेढ़ी बार-बार रमांत।

वात्सल्य और श्रृंगार वर्णन में इन कवियों को महारथ हासिल है। वालोचित चेष्टाओं, लीलाओं और श्रृंगार की विविध मनोदशाओं का इतना रोचक और मार्मिक वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता। भ्रमरगीत में उपालंभ और वाग्वैदग्ध्य अपने चरम पर दिखता है, इस प्रकार श्रृंगार के वियोग पक्ष का भी मार्मिक अंकन है- 'मधुबन तुम कत रहत हरे' तथा 'बिनु गोपाल वैरिन भई कुंजै' कहकर गोपियों की व्यथा को कवि ने सहज ही चित्रित किया है। गोपियों के माध्यम से निर्गुण पर सगुण की विजय भी कवियों ने विशेषकर सूरदास ने दर्शाई है। इसके अतिरिक्त करुण, वीर, भयानक, अद्‌भुत और शांत रस भी विशेष प्रसंग आने पर आ गए हैं।

5. प्रकृति सौंदर्य प्रकृति को इन कवियों ने प्रमुख रूप से चित्रित किया है। प्रकृति सौंदर्य की संवेदना को इन कवियों ने सघन अनुभूतियों से व्यक्त किया है। प्रकृति सदैव इनके साथ ही रही है। प्रकृति और मानव का अनादि साहचर्य इस काव्य की प्रमुख विशेषता है। प्रकृति का उद्दीपन रूप सर्वाधिक चित्रित किया गया है। बाल लीलाओं से लेकर लोकमंगलकारी कार्यों की कर्मभूमि प्रकृति ही रही है। प्रकृति में घूमने वाले गोपाल कृष्ण का संपूर्ण गोलोक प्रकृति वैभव की छटा है। इस प्रकृति का एक चित्र प्रस्तुत है-

कोकिल कीर सदा तंह रोर
सदा रूप मनमथ चित चोर।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न 1. कृष्ण काव्यधारा में मुख्य विषय _____ की लीलाओं का चित्रण है।

प्रश्न 2. कृष्णभक्त कवियों ने _____ भक्ति की महिमा का बार-बार वर्णन किया है।

प्रश्न 3. कृष्ण काव्यधारा में मुख्य रूप से _____ और _____ रस का चित्रण किया गया है।

प्रश्न 4. कृष्ण काव्यधारा में प्रकृति और मानव का _____ साहचर्य प्रमुख विशेषता है।

6.4 कृष्ण काव्यधारा का स्वरुप

हिंदी कृष्णकाव्य में प्रायः मुक्तक काव्य को प्रधानता मिली है। मूलतः मुक्तक रचना का प्रमुख कारण गेय पद परंपरा की प्रवृत्ति होना है, जिससे कवियों को अंतर्मुखी वृत्तियों को काव्य में ढालने का अधिक अवसर मिला। अधिकांश कवि संगीत के ज्ञाता थे। इस कारण गीतिकाव्य परंपरा बहुत लोकप्रिय हुई।

1. काव्यभाषा ब्रजभाषा को साहित्य में सम्मान दिलाने का श्रेय कृष्णभक्त कवियों को जाता है। ब्रजभाषा का काव्यभाषा के रूप में इन कवियों ने ऐसा विकास और परिष्कार किया कि उसकी सर्जनात्मक संभावनाएं जनता को मुग्ध करने लगीं। इनका शब्दभंडार भी असीमित है। इसके अतिरिक्त संस्कृत, अपभ्रंश के शब्दों का भी प्रयोग है। ब्रजभाषा के नाद सौंदर्य ने इस काव्य के हिंदी साहित्य का ध्वनि माधुर्य का विस्तार किया है।

2. प्रतीक और बिंब इन कवियों ने प्रतीकों और बिंबों का भी विधान किया है। नाम प्रतीक, स्थान प्रतीक, दार्शनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, उत्सव पूजा से संबंधित प्रतीक इस काव्य में भरपूर हैं। गोपियां जीव की प्रतीक हैं और गोलोक इंद्रियों का। मुरली ब्रह्म की नादशक्ति का प्रतीक है तो ब्रज कृष्ण की ब्रजन यात्रा का। ब्रज गोलोक का प्रतीक है। मनुष्य मन के भीतर ही गोलोक (ब्रज) है। कवियों की अभिव्यंजना शक्ति का विकास बिंबों में दिखता है। उदाहरण प्रस्तुत है-

शोभित कर नवीनत लिए
घुटुवन चलत रेनु तनुमंडित मुखदधि लेप किए।

लोकभाषा में लोकबिंबों का यह संसार लोकहृदय की जीवंत संवेदना का रहस्य खोल देता है।

3. संगीत, छंद और लय कृष्णभक्ति साहित्य में संगीतात्मकता और लयात्मकता प्रधान है। ये कवि काव्यकला के साथ संगीत कला के पारंगत थे। इन कवियों ने कीर्तन संग्रह की भी परंपरा चलाई। अनेक शास्त्रीय राग- रागनियों का निर्माण किया। लय को आधार बनाकर इन कवियों ने अनेक प्रकार के छंदों में कविता लिखी। रसखान ने कवित्त और सवैया छंद में रचना की। रोला, दोहा, चौपाई, सरसी, गीतिका, लावनी आदि का भी प्रयोग किया गया है। इस तरह कृष्ण भक्ति परंपरा गेय छंदों को आधार बनाकर विकसित हुई।

4. अलंकार विधान इन कवियों ने अलंकारों का प्रयोग हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिए किया है। शब्दालंकार और अर्थालंकारों की इनमें बहुलता है। इनका

ध्यान मिथ्या आडंबर में नहीं था, न ही चमत्कार प्रदर्शन इनका उद्देश्य था। उपमा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, वक्रोक्ति, मालोपमा, उत्प्रेक्षा अलंकार का खूब प्रयोग है। हिंदी के कृष्णभक्त कवियों में नए-नए उपमानों का अभाव नहीं है, अतः इनका अलंकार विधान सजीव और सार्थक है।

इन कवियों की कविता में भक्ति, संगीत, कला और दर्शन का गहन विस्तार है और सामाजिक सांस्कृतिक अनुभवों की एक विशेष सौंदर्य दृष्टि है। राधाकृष्ण की कथाओं में मानव मन की मूल वृत्तियों प्रवृत्तियों मानसिक दशाओं और जीवन के कार्य व्यापारों को नया अर्थ मिला है। इन कवियों ने सरस सगुणोपासना और मधुर रस से सिक्त अवतारवाद को जनता के बीच स्थापित किया तथा जनता की निराशा को नष्ट किया।

6.5 सूरदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(१) सूरदासजी - सूरदासजी का वृत्त 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में केवल इतना ज्ञात होता है कि ये पहले गऊघाट (आगरे और मथुरा के बीच) पर एक साधु या स्वामी के रूप में रहा करते थे और शिष्य किया करते थे। गोवर्द्धन पर श्रीनाथ जी का मंदिर बन जाने के पीछे एक बार वल्लभाचार्यजी गऊघाट पर उतरे तब सूरदास उनके दर्शन को आए और उन्हें अपना बनाया एक पद गाकर सुनाया। आचार्यजी ने उन्हें अपना शिष्य किया और भागवत् की कथाओं को गाने योग्य पदों में करने का आदेश दिया। उनकी सच्ची भक्ति और पदरचना की निपुणता देख वल्लभाचार्यजी ने उन्हें अपने श्रीनाथजी के मंदिर की कीर्तन सेवा सौंपी। इस मंदिर को पूरनमल खत्री ने गोवर्द्धन पर्वत पर संवत् १५७६ में पूरा बनवाकर खड़ा किया था। मंदिर पूरा होने के ११ वर्ष पीछे अर्थात् संवत् १५८७ में वल्लभाचार्य जी की मृत्यु हुई।

श्रीनाथजी के मंदिर निर्माण के थोड़ा ही पीछे सूरदासजी वल्लभ संप्रदाय में आए, यह 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है -

'औरहु पद गाए तब श्री महाप्रभुजी अपने मन में विचारे जो श्रीनाथ जी के यहाँ और तो सब सेवा को मंडान भयो है, पर कीर्तन को मंडान नाही कियो है; तातें अब सूरदास को दीजिए।'

अतः संवत् १५८० के आसपास सूरदासजी वल्लभाचार्य जी के शिष्य हुए होंगे और शिष्य होने के कुछ ही पीछे उन्हें कीर्तनसेवा मिली होगी। तब से वे बराबर गोवर्द्धन पर्वत पर ही मंदिर की सेवा करते थे, इसका स्पष्ट आभास 'सूरसारावली' के भीता नौजूद है। तुलसीदास के प्रसंग में हम कह आए हैं कि भक्त लोग कभी-कभी किसी ढंग अपने को अपने इष्टदेव की कथा के भीतर डालकर उनके चरणों तक अपने पहुँचने की भावना करते हैं। तुलसी ने तो अपने को कुछ प्रच्छन्न रूप में पहुँचाया है, पर सूर ने प्रकट रूप में। कृष्ण जन्म के उपरांत नंद के घर बराबर आनंदोत्सव हो रहे हैं। उसी बीच एक ढाढ़ी आकर कहता है-

नंद जू मेरे मन आनंद भयो, हौं गोवर्धन तें आयो।
तुम्हरे पुत्र भयो, मैं सुनि कै अति आतुर उठि धायो ।
जब तुम मदन मोहन करि टेरौं, यह सुनि कै घर जाऊँ।
हौं तौ तेरे घर की ढाढ़ी, सूरदास मेरो नाऊँ ॥

वल्लभाचार्यजी के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ के सामने गोवर्द्धन की तलहटी के पारसोली ग्राम में सूरदास की मृत्यु हुई, इसका पता भी उक्त 'वार्ता' से लगता है। गोसाई विठ्ठलनाथ की मृत्यु सं० १६४२ में हुई। इसके कितने पहले सूरदास का परलोकवास हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

'सूरसागर' समाप्त करने पर सूर ने जो 'सूरसागर सारावली' लिखी है उसमें अपनी अवस्था ६७ वर्ष की कही है -

गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन ॥

तात्पर्य यह कि ६७ वर्ष के कुछ पहले वे 'सूरसागर' समाप्त कर चुके थे। सूरसागर समाप्त होने के थोड़ा ही पीछे उन्होंने 'सारावली' लिखी होगी। एक और ग्रंथ सूरदास का 'साहित्य लहरी' है, जिसमें अलंकारों और नायिकाभेदों के उदाहरण

प्रस्तुत करनेवाले कूट पद हैं। इसका रचनाकाल सूर ने इस प्रकार व्यक्त किया है -

मुनि सुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनंद को लिखि सुबल संवत पेख।

इसके अनुसार संवत् १६०७ में 'साहित्य लहरी' समाप्त हुई। यह तो मानना ही पड़ेगा कि साहित्य क्रीड़ा का यह ग्रंथ 'सूरसागर' से छुट्टी पाकर ही सूर ने संकलित किया होगा। उसके दो वर्ष पहले यदि 'सूरसारावली' की रचना हुई, तो कह सकते हैं कि संवत् १६०५ में सूरदासजी ६७ वर्ष के थे। अब यदि उनकी आयु ८० या ८२ वर्ष की मानें तो उनका जन्मकाल सं० १५४० के आसपास तथा मृत्युकाल सं० १६२० के आसपास ही अनुमित होता है।

'साहित्यलहरी' के अंत में एक पद है जिसमें सूर अपनी वंशपरंपरा देते हैं। उस पद के अनुसार सूर पृथ्वीराज के कवि चंदबरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट थे। चंद कवि के कुल में हरिचंद हुए जिनके सात पुत्रों में सबसे छोटे सूरजदास या सूरदास थे। १ शेष ६ भाई जब मुसलमानों से युद्ध करते हुए मारे गए तब अंधे सूरदास बहुत दिनों तक इधर-उधर भटकते रहे। एक दिन वे कुएँ में गिर पड़े और ६ दिन उसी में पड़े रहे। सातवें दिन कृष्ण भगवान् उनके सामने प्रकट हुए और उन्हें दृष्टि देकर अपना दर्शन दिया। भगवान् ने कहा कि दक्षिण के एक प्रबल ब्राह्मण कुल द्वारा शत्रुओं का नाश होगा और तू सब विद्याओं में निपुण होगा। इस पर सूरदास ने वर माँगा कि जिन आँखों से मैंने आपका दर्शन किया उनसे अब और कुछ न देखूँ और सदा आपका भजन करूँ। कुएँ से जब भगवान् ने उन्हें बाहर निकाला तब वे ज्यों के त्यों अंधे हो गए और ब्रज में आकर भजन करने लगे। वहाँ गोसाईंजी ने उन्हें 'अष्टछाप' में लिया।

6.6 कृष्णभक्ति शाखा की मुख्य विशेषताएं

'कृष्ण काव्य' सगुण भक्तिधारा की एक शाखा है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण को आराध्य मानकर रचनाएँ लिखी गई है। मध्यकालीन सगुण भक्ति के आराध्य देवों में भगवान श्रीकृष्ण का स्थान सर्वोच्च है। संस्कृत में जयदेव ने गीत-गोविंद की रचना करके कृष्ण की मधुर भक्ति की परंपरा शुरू की थी जो हिन्दी साहित्य में भी चलती रही।

कृष्ण भक्ति धारा का प्रवर्तन वल्लभाचार्य ने किया। रामभक्ति धारा और कृष्ण भक्ति धारा में एक बड़ा अंतर यह है कि राम भक्त स्वयं को राम का सेवक या दास समझते थे जबकि कृष्णभक्त स्वयं को कृष्ण का सखा मानते थे। कृष्णभक्त कवियों ने भक्त और भगवान के बीच प्रेमी-प्रेमिका के संबंध को अपने काव्य का आधार बनाया।

मुख्य विशेषताएँ -

(1) कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन विशेष रूप से किया है। सूरदास ने कृष्ण के लोकरंजनी रुप को अपने काव्य का आधार बनाया।

(2) कृष्ण के प्रेम संबंधी चित्रण के साथ ही उनके वात्सल्य रूप का मनोहारी चित्रण कृष्ण काव्य में मिलता है।

(3) कृष्ण भक्ति धारा के प्रमुख प्रतिनिधि कवि सूरदास ने 'साहित्य लहरी' में नायिका भेद एवं अलंकार का वर्णन करते हुए नीति तत्व का समावेश किया है। इसी तरह नन्ददास ने 'रस मंजरी' में नायिका भेद का वर्णन किया है।

(4) सूरदास, मीरा आदि की रचनाओं में प्रेमचित्रण में स्वातंत्र्य का भाव अन्तर्निहित है।

(5) कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में जहाँ-जहाँ राधा- कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन किया है वहाँ-वहाँ ब्रजभूमि के सौंदर्य का मनोहारी चित्रण किया है।

(6) कृष्णभक्ति काव्य धारा में कृष्ण की बाल लीला के चित्रण में जहाँ वात्सल्य रस की प्रधानता है वहीं प्रणय- क्रीड़ाओं के चित्रण में श्रृंगार रस की प्रधानता है।

(7) कृष्णभक्ति काव्य की भाषा ब्रज है। सूरदास ने अपने काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। ब्रज भाषा में लिखे उनके काव्य भाषा के माधुर्य, सरसता, कोमलता आदि गुणों के कारण 'ब्रज' काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

6.7 सार - संक्षेप

इस इकाई में कृष्ण काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों का वर्णन किया गया है, जिसमें राधाकृष्ण की लीलाओं का मनोहारी चित्रण, भक्तिभावना, शुद्धाद्वैतवाद पर आधारित दार्शनिकता, वात्सल्य और श्रृंगार रस की प्रमुखता, तथा प्रकृति सौंदर्य की अद्भुत अनुभूति को स्थान मिला है। इन कवियों ने ब्रजभाषा को काव्य भाषा के रूप में सशक्त किया, जिससे इसकी मधुरता और गेयता में वृद्धि हुई। इस काव्यधारा में संगीत और लय का सामंजस्य है, जो कीर्तन परंपरा को भी समृद्ध करता है। सूरदास जैसे कवियों ने भक्ति और सौंदर्य की अभिव्यक्ति में नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत कर कृष्ण काव्य को साहित्यिक और सांस्कृतिक रूप में विशिष्ट बनाया।

6.8 मुख्य शब्द

- **कृष्ण काव्यधारा**: - श्रीकृष्ण की लीलाओं पर आधारित काव्यधारा।
- **भक्तिभावना:** - ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण।
- **शुद्धाद्वैतवाद:** - ब्रह्म (ईश्वर) और जगत का एकत्व।
- **वात्सल्य:** - माता-पिता का बच्चों के प्रति स्नेह।
- **श्रृंगार रस:** - प्रेम और सौंदर्य का भाव।
- **प्रकृति सौंदर्य:** - प्राकृतिक सुंदरता का चित्रण।
- **ब्रजभाषा:** - ब्रज क्षेत्र की हिंदी की एक शैली।
- **मुक्तक काव्य**: - स्वतंत्र छंदों में रचना।

6.9 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. राधाकृष्ण

उत्तर: 2. सगुण

उत्तर: 3. वात्सल्य, श्रृंगार

उत्तर: 4. अनादि

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास - लेखक: डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
2. भक्तिकालीन साहित्य: समाज और संस्कृति - लेखक: डॉ. राकेश पांडेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
3. मध्यकालीन हिंदी साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन - लेखक: डॉ. शंभुनाथ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015
4. कृष्णकाव्य की आधुनिक व्याख्या - लेखक: डॉ. रेखा त्रिवेदी, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 2018
5. हिंदी साहित्य का समाजशास्त्र - लेखक: डॉ. अशोक कुमार पांडेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
6. भक्ति और कृष्ण भक्ति साहित्य - लेखक: डॉ. अरविंद मिश्रा, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2021

6.11 अभ्यास प्रश्न

1. कृष्ण काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या हैं? संक्षेप में समझाएँ।
2. कृष्ण भक्त कवियों की भक्ति भावना का हिंदी साहित्य में क्या योगदान है?

3. शुद्धाद्वैतवाद का कृष्णकाव्य में क्या महत्व है?
4. कृष्णकाव्य में वात्सल्य और श्रृंगार रस की भूमिका पर प्रकाश डालें।
5. कृष्ण भक्त कवियों द्वारा ब्रजभाषा के विकास में किए गए योगदान पर चर्चा करें।

इकाई -7

राममार्गी काव्यधारा

7.1 प्रस्तावना

7.2 अध्ययन के उद्देश्य

7.3 राम काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

7.4 रामानंद की विशेषताएं

7.5 गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

7.6 रामभक्ति शाखा की मुख्य विशेषताएं

7.7 सार - संक्षेप

7.8 मुख्य शब्द

7.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

7.10 अभ्यास प्रश्न

7.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.1 प्रस्तावना

रामकाव्य भारतीय काव्य परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो विशेष रूप से राम के जीवन, उनके आदर्शों और उनकी भक्तिभावना पर आधारित होता है। 'रामायण' के प्रमुख रूप से वाल्मीकि द्वारा रचित मूल रूप में राम के जीवन की गाथा को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें उन्हें आदर्श राजा, वीर योद्धा और धर्म के रक्षक के रूप में चित्रित किया गया है। बाद में गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के माध्यम से राम के चरित्र को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में समाज के लिए आदर्श प्रस्तुत किया। रामकाव्य का उद्देश्य न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्य प्रदान करना है, बल्कि सामाजिक और मानवीय मूल्य जैसे परहित, त्याग, प्रेम और मर्यादा को भी प्रसारित करना है। रामकाव्य में

भगवान राम को आदर्श व्यक्ति और लोकनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिनके जीवन और संघर्षों से हर व्यक्ति को प्रेरणा मिलती है। रामकाव्य में प्रयुक्त काव्यशास्त्र, अलंकार, छंद और भावनाओं का समन्वय इसे एक विशिष्ट और प्रभावशाली काव्यधारा बनाता है।

7.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- रामकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, जैसे राम का आदर्श राजा, वीर योद्धा और विष्णु के अवतार के रूप में चित्रण।
- राम के प्रति भक्ति भाव, विशेष रूप से मर्यादा भक्ति और तुलसीदास के राम के व्यक्तित्व में भक्ति और दास्य भाव की भूमिका।
- राम के लोकनायक रूप की स्वीकृति और समाज के लोक कल्याण के लिए उनके चरित्र का महत्व।
- राम के जीवन से जुड़े मानव-मूल्य, जैसे परहित, त्याग और प्रेम के आदर्श, जो समाज को प्रेरित करते हैं।
- रामकाव्य के शिल्प, अलंकार, छंद, और काव्यशास्त्र का प्रभावी प्रयोग।
- राम के जीवन और आदर्शों की व्यापक समझ, जो साहित्य और समाज दोनों के लिए प्रेरणादायक है।

7.3 राम काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

'वाल्मीकि रामायण' में राम एक आदर्श राजा, एक वीर योद्धा एवं उदाल मानव के रूप में चित्रित किए गए है। पौराणिक काल तक आते-आते राम का स्वरूप अलौकिक होता गया। वह महापुरुष के धरातल से ऊपर उठकर विष्णु के अवतार अथवा परब्रह्म के अवतार रूप में स्वी त किए गए और उनके प्रति श्रा एवं

भक्तिभावना में रामभक्ति धारा के कवियों ने भी विष्णु के अवतार रूप में राम के प्रति अपने भक्ति भाव को प्रकट किया। गोस्वामी तुलसीदास के राम सर्वशक्तिमान, सौंदर्य की मूर्ती और शीलसंपन्न है। अपने इन्हीं कारण गुणों के लोकरक्षक और लोकमंगल के विधायक भी है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम है। धर्म के संरक्षण के लिए, असुरों के विनाश हेतु तथा सज्जनों की भाव-पीड़ा को मिटाने के लिए प्रभु स्वयं मनुष्य रूप में अवतरित हुए हैं। यद्यपि ब्रह्म निर्गुण निराकार है तथापि भक्त उपासना की सरलता से उसे सगुण, साकार रूप मे देखते हैं। ग्रहा को विभिन्न नामों से संयोधित करते है। रामभक्त कवियों का कथन है कि यद्यपि अनेक रूप और नाम है तथापि उन्होंने राम रूप को ही ग्रहण किया है-

रामलोकरंजक, जद्यपि प्रभु के नाम अनेका, श्रुति कह अध्कि एक तें एका।

राम सकल नामन्ह ते अध्कि। होऊ नाथ अघ खग वन वध्कि ।।

इस प्रकार रामकाव्यधारा के कवियों ने दशरथ पुत्र राम और सभी प्राणियों में रमण करने वाले राम द्धपरम तत्वऋ में अभेद स्थापित किया है। मर्यादित भक्ति का प्रसार रामकाव्य में भक्ति को ज्ञान और योग मार्ग से श्रेष्ठ घोषित किया गया। ष्णभक्त कवियों ने दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य, भक्ति भाव को अपनाया, पर रामभक्त कवियों ने मर्यादा भक्ति को ही अपना चरम ध्येय माना है। तुलसी दास स्पष्ट कहते है कि जिसके हृदय में राम की भक्ति भावना विद्यमान है उसे सपनू में भी दुःख प्राप्त नहीं हो सकता और यह भक्ति भी प्रभु की पा के बिना संभव नहीं -

राम भगति मन उर वस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके ।।
चतुर सिरोमनि तेइ जग माही। जे मनि लागि सुजतन कराही ।।
सो मति जदपि प्रगट जग अहई। राम पा विनु नहिं कोउ लहई ।।

राम के प्रति इनकी भक्ति दास्य भाव से पूर्ण है, जिसमें मर्यादा की पूर्ण प्रतिष्ठा है। उनका मत है कि स्वामी के समक्ष सेवक सदा ही तुच्छ और हीन है, वे राम की महत्ता और अपनी हीनता स्वीकार करते हुए कहते हैं -

राम सो बड़ो है कौन, मोसौ कौन छोटो।
राम सो खरो है कौन, मोसौ कौन खोटो ।।

तुलसीदास भक्ति में किसी भी प्रकार के दुराव-छिपाव को भक्ति का विरोधी मानते है। मन, वचन कर्म तीनों का सरल एवं शु) होना भक्ति की पहली अनिवार्य शर्त है-

सूधे मन, सूधे वचन, सूध सब करतूति।
तुलसी सूध सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति।।

1. राम के लोकनायक रूप की स्वीकृति - धार्मिक क्षेत्र में जहाँ रामभक्त कवियों ने राम को परम आराध्य के रूप में स्वीकार करते हुए उनके प्रति अनन्य भक्ति भाव को प्रकट किया है, वहाँ दूसरी ओर समाज की माँग को देखते हुए राम के चरित्र को लोकनायक के रूप में प्रस्तुत किया है। धनुर्धारी राम लोक के संरक्षक है। तुलसीदास ने खलविनाशक राम के शक्तिशाली जीवन द्वारा लोकशिक्षा का पाठ पढ़ाया है। अत्याचार के बढ़ने पर विद्रोह होता है और कोई लोकनायक अत्याचार का अंत करके शांति के युग की स्थापना करता है। राम के द्वारा रावण का मारा जाना तथा रामराज्य की स्थापना द्वारा समाज को यह संदेश प्रेषित कियाा है कि वर्तमान में भी लोकनायक द्वार अत्याचारों का अंत अवश्य होगा। कोई भी ऐसा सामाजिक आदर्श नहीं, जिसका प्रतिनिधित्व राम न करते हो। इसलिए वे सही अर्थों में लोकनायक है।

निराश जनता के जीवन में आशा और विश्वास पैदा करने, आनंद का मधुर स्रोत बहाने तथा विपत्ति में सहायता करने के लिए राम-काव्य का निर्माण हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, लोक में फैली दुःख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनंद कला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भूत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचण्डता मे गहरी आर्द्रता साथ लगी

रहती है। यह विरोधाभासी आकर्षण ही राम को युगों-युगों के लिए लोकनायक के पद पर प्रतिष्ठित कर देता है।

4. मानव-मूल्यों की साधना - परहित सरिस धर्म नहिं भाई' तथा 'जे न मित्र दुःख होहि दुखारी, तिन्हहिं विलोकत पातक भारी' में विभीषण से राम द्वारा मानव मूल्यों से निर्मित विजय रथ की महत्ता का गायन करना एक प्रकार से तुलसीदास की मानव मूल्यों के प्रति निष्ठा का ही प्रमाण है। पारिवारिक जीवन की मर्यादा, त्याग और प्रेम के आदर्श रूप में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र द्वारा जिन मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है वे समाज के लिए प्रेरणाखोत है। राम-काव्य वास्तव में मानव जीवन की समग्रता का काव्य है, इसमें जीवन के प्रति एक स्वस्थ और व्यापक दृष्टिकोण है।

5. लोकमंगल का विधान - रामभक्ति काव्यधारा का चरम लक्ष्य लोकमंगल का विधान करना ही था, क्योंकि इनके अराध् य राम का समग्र जीवन, संपूर्ण क्रियाकलाप लोकमंगल का विधान करने वाले ही है। सारे राम-काव्य का केंन्द्रीय आदर्श समाज की स्थापना तथा लोककल्याण की भावना को प्रसारित करना है। रामचरितमानस के उत्तरकांड में वर्णित रामराजय का सुखद वैभव वास्तव में कवि के इच्छित लोकरूप का साक्षात् चित्र है। आदर्श पुत्र, आदर्श राजा के रूप में राम आदर्श माता के रूप में कौसल्या, आदर्श भाई के रूप में लक्ष्मण तथा भरत आदर्श पत्नी के रूप में सीता, आदर्श सेवक के रूप में हनुमान, आदर्श मित्र के रूप में सुग्रीव के चरित्रों की स्थापना लोकमंगल का ही विधान करती है।

6. समन्वय की भावना - तत्कालीन समाज में सगुणोपासकों में भी परस्पर वैमनस्य एवं असहिष्णुता थी। शैवों और वैष्णवों में परस्पर शत्रुता का भाव था। तुलसीदास जी ने राम द्वारा शिव की उपासना करवाकर और शिव के मुख से रामभजन न करने वाले मंदमति कहकर दोनों में ऐक्य स्थापित करने का प्रयास किया। राम का कथन 'शिव दोही मम दास कहावै। सो नर सपनेहु

मोहि न भावै' तथा शिव का पार्वती से कथन 'गिरजा ते नर मंदमति जे न मजहि श्रीराम' शैवों और वैष्णवों में समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास है। दर्शन के क्षेत्र में भी द्वैत और अदैत के मध्य समन्वय स्थापित किया, इतना ही नहीं कलापक्ष में भी समन्वय का भाव देखा जा सकता है। अपने पूर्ववर्ती और समकालीन समस्त काव्य-शौलियों में राम-काव्य की रचना की। ब्रज एवं अवधी दोनों में काव्य-रचना करके दोनों भाषाओं को समान रूप से प्रश्रय दिया।

7. भावसौंदर्य एवं रसयोजना - जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के भावों, अनुभूतियों तथा संवेगों को रामभक्त कवियों ने मनोरम रसानुकूल अभिव्यक्ति प्रदान की है। जहाँ एक ओर वे एक भक्त के दैन्यभाव को लेकर भक्ति के पूर्ण परिपाक में समर्थ हुए है, वहीं दूसरी ओर वे सामाजिक संदर्भों में अनेक पारिवारिक मार्मिक प्रसंगों की कुशल अभिव्यक्ति करने में भी समर्थ हुए है। राम का अयोध्या-त्याग, चित्रकूट में राम-भगत मिलाप, लक्ष्मण मूच्र्छा आदि प्रसगों में भावों और मनोवेगों का प्रस्फुटन बड़े ही सुंदर एवं संजीव रूप में हुआ है। राम के जीवन का चित्रण जिस व्यापक परिवेश और आयाम में किया गया है, उसमें वैविध्य के कारण सभी रसों का सुंदर समावेश हुआ है। फिर भी राम-काव्य का अंगीरस शांत रस ही है। इसके अतिरिक्त श्रृंगार, वीर, वात्सल्य, करुण आदि रस भी सहज स्वाभाविक गरिमा से मंडित है। श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण मर्यादित है। परवर्ती काल में रामभक्ति से संबंधित रसिक संप्रदायों में राम और सीता का श्रृंगारिक वर्णन मर्यादित नहीं रह पाया है, परन्तु उनका साहित्यिक महत्त्व भी नगण्य ही है। यु)- प्रसंगों में वीर रस के साथ रौद्र, भयानक, वीभत्स और करुण रस की भी योजना राम-काव्य में की गई है। राम जैसे मर्यादाशील, धीर और गंभीर व्यक्ति के साथ हास्य रस की कल्पना नहीं की जा सकती, किन्तु कवियों ने इनके लिए भी अवकाश निकाल लिया है। ६ गुनर्भग के समय परशुराम - लक्ष्मण संवाद,

शूर्पणखा के विवाह-प्रस्ताव और उसकी नाक कटाने में, रावण-अंगद संवाद में हास्य रस के प्रसंग बन गए है। अतः राम-काव्य भाव सौंदर्य एवं रस संयोजन की दृष्टि से भी उत् ष्ट काव्य ही कहा जा सकता है।

8 आदर्श पात्र-योजना - राम-काव्य में सभी पात्रों का चित्रण एक विशिष्ट आदर्श और उद्देश्य को लेकर किया गया है। राम-काव्य का उद्देश्य है- 'असत्य पर सत की विजय', 'रावणत्व पर रामत्व की विजय'। असद् वृत्तियाँ कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हों, अंततः विजय सदृत्तियों कीहोती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु राम-काव्य में असवृतियों के पात्र रावण, बालि, मेघनाद की योजना की गई है तो सत्य के साक्षात् राम के जीवन एवं आदर्शों द्वारा समाज को सदृचियों को धारण करने की प्रेरणा कदी गई है। मानव, देवी-देवता, राक्षस, पशु-पक्षी, छोटे-बड़े सभी प्रकार के पात्र राम-काव्य में है। सदृत्तियों के प्रति सभी पात्रों का उद्देश्य असद् को सद् की ओर उन्मुख करना है। राम-रावण यु) में रावण की पराजय भी यही संकेत देती है कि असद् वृत्तियों का अंत अवश्य होता है।

9. अभिव्यंजना शिल्प सौन्दर्य :

- काव्यरूप - जहाँ ष्णभक्ति काव्य की रचना मुक्तक शैली में की गई, वहाँ राम-काव्य की रचना अधिकांशतः प्रबंध शैली में की गई है। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' प्रबंध शैली का उत् ष्ठ उदाहरण है। राम-काव्य के सभी कवि काव्यशास्त्र के विद्वान् और काव्य के समस्त रूपों से भली-भाँति परिचित थे। इसी कारण इस धारा समस्त काव्यशैलियों के सफल प्रयोग मिलते है। गीति शैली में 'रामगीतावली', 'रामध्यानमंजरी', 'दोहावली' आदि की रचना की गई तो नाटकीय संवाद के रूप में 'हनुमन्नाटक', 'रामायण महानाटक' की भी नाटक शैली का विकास हुआ। 'जानकीमंगल', 'पार्वतीमंगल', 'भरतमिलाप', 'अंगदपैज' के रूप में खंड काव्य की रचना की तो रामललानहछु जैसी लोकशैली में

काव्य-रचना करके लोकपरम्परा को भी सम्मानित किया। मध्यकाल में राम-काव्य की रचना व्रज एवं अवधी दोनों भाषाओं में की गई।

- अलंकार एवं छंद - राम-काव्य में अलंकारों का प्रयोग सहज, स्वाभाविक रूप में हुआ है। अलंकारों का प्रयोग कहीं भी चमत्कार प्रदर्शन हेतु नहीं किया गया। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, प्रतीक, निदर्शना, विरोधाभास आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग मिलता है। केशवदास की 'रामचंद्रिका' में पांडित्य प्रदर्शन हेतु शब्द-वमत्कार का ध्यान रखते हुए अलंकारों का प्रयोग किया गया है, जिससे काव्य में दुरूहता एवं त्रिमता आ गई है, परन्तु यह काव्य अपवाद है अन्यथा अन्य सभी काव्यों में अलंकार भावाभिव्यंजना में सहायक हुए है। छंदों में दोहा, चौहाई, रोला, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पय, कुंडलिया, घनाक्षरी आदि का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार राम-काव्य में एक ओर जहाँ भाव सौंदर्य उत् ष्ट कोटि का देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर उसयका अभिव्यंजनागत सौंदर्य उसके भाव को द्विगुणित कर देता है।

स्वप्रगति परीक्षण

नीचे दिए गए प्रत्येक कथन को ध्यानपूर्वक पढ़ें और सत्य अथवा असत्य का चयन करें -

प्रश्न 1. रामकाव्य में राम को केवल आदर्श राजा के रूप में चित्रित किया गया है।

प्रश्न 2. रामकाव्य में राम के चरित्र द्वारा लोकमंगल की भावना को प्रसारित किया गया है।

प्रश्न 3. रामकाव्य में शैवों और वैष्णवों के बीच किसी प्रकार के वैमनस्य का समर्थन किया गया है।

प्रश्न 4. रामकाव्य में सभी पात्रों का चित्रण आदर्श और उद्देश्यपूर्ण है, जिसमें असत्य पर सत्य की विजय की प्रेरणा दी जाती

7.4 रामानंद की विशेषताएं

रामानन्द की विशेषताएँ स्वामी रामानन्द ने इस दार्शनिक क्षेत्र में तो कोई विसम्मति व्यक्त नहीं कि, परन्तु भक्ति के प्रायोगिक रूप में वे अवश्य रामानुज से भिन्न पड़ जाते है। ऐसी कुछ विशेषताएँ ये हैं -

1. उपासना के लिए वैकुण्ठ निवासी विष्णु की जगह लोक-लीला प्रदर्शक राम को गृहीत किया।

2. कुछ परिगणित लोगों के बदले उन्होने मनुष्य मात्र के लिए भक्ति का द्वार खोल दिया। रामानुज सम्प्रदाय में केवल द्विजातियों को ही दीक्षा दी जाती थी, इन्होने सबको दीक्षित किया। इसके अतिरिक्त एक विरक्त दल का भी संघटन किया जो 'वैरागी' नाम से प्रसि) है। समाज के लिये वर्णाश्रम व्यवस्था को मानते हुए भी उपासना के क्षेत्र में उन्होंने सबको समान अधिकार दिया था।

स्वामी रामानन्द ने जिस राम का रूप प्रतिष्टित किया था उनको अत्यंत व्यापक रूप में तुलसी द्वारा प्रतिष्ठित किया गया। इस सम्बन्ध में राम-भक्ति के साहित्य में प्रकाश डाला गया है। संत सम्प्रदाय मे भी रामानन्द के शिष्य होने के कारण कबीर ने राम नाम ग्रहण किया। किंतु राम की कथा की पंरपरा नई नहीं, साहित्य में बड़ी पुरानी है। जैन कवियों के अन्तर्गत कवि स्वंयभु भूपति ने भी राम कथाओं की रचना तेरहवीं शताब्दी के अंत में और चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में की। भगवत चंद्र मुनिलाल आदि कवि भी राम के सम्बन्ध में रचना पहले की कर चुके थे। हिन्दुओं को राम के उस रूप ने अत्यधिक प्रभावित किया जिसने तुलसी दास की शील-शक्ति-सौदर्यमयी गरिमा को लोगों को उद्बोध कराया।

तुलसीदास जी के अतिरिक्त अग्रदास और नाभादास का नाम भी अत्यंत प्रमुखता से लिया जाता है। नाभादास के गुरु स्वामी अग्रदास भक्तमालके रचियता थे। ये रामानंद, जी के शिष्य अनंतानंद के शिष्य थे। श्री ष्णदास पैहारी ने गल्ता के नागपंथिथों के मठ पर अपनी विद्वत्ता के बल पर अधिकार पाया था। यह उन्ही के साथ रहा करते थे और रामभक्ति की रचना किया करते थे।

नाभादासजी अग्रदास के शिष्य तथा भक्तमाल के रचयितााा थे। कहा जाता है कि तुलसी दास से इनकी भेंट हुई थी। ये उनके समसामयिक थे। इनका जीवन-काल लगभग संवत् 1600 से 1680 तक है। कुछ लोग इन्हें हरिजन और कुछ लोग जाति का क्षत्रिय मानते है। इन्होने व्यापक दृष्टि से अपने समय के तथा पूर्ववर्ती 200 भक्तों के चमत्कारपूर्ण चरित्र 316 छप्पयों में लिखे है। नाभादास जी ने इस ग्रंथ का प्रणयन अत्यंत सूक्ष्म एवं संतुलित दृष्टि से किया है। यह भक्तों एवं हिन्दी के आचार्यो के बीच बड़ी श्रद्धा के साथ देखा जाता है।

राम-साहित्य की संक्षिप्त रूप-रेखा यहाँ दी जा रही है -

(अ) विषय - राम-संबंधी रचनाओं द्वारा दात्य भक्ति का प्रचार। व्यापक दृष्टिकोण द्वारा लोक-जीवन में कथाओं को आधार बना शील शक्ति सौंदर्यपूर्ण रामभक्ति का प्रसार।

(ब) मत विशिष्ट अद्वैत के अनुसार दास्य भक्ति का प्रतिपादन।

(स) शैली प्रबंध और मुक्तक।

(द) भाषा अवधी और ब्रज तथा कहीं-कहीं बुंदेलखंडी, भोजपुरी, अरबी तथा फारसी शब्दो का प्रयोग।

7.5 गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

सगुण भक्तिधारा की एक शाखा राम भक्ति धारा के रूप में प्रवाहित हुई जिसमें भगवान राम के सगुण रूप को प्रतिष्ठित किया गया। इस शाखा के सगुण कवि गोस्वामी तुलसीदास_हैं। उन्होंने आदिकवि वाल्मीकि द्वारा रचित महाकाव्य

'रामायण' को आधार बनाकर 'रामचरितमानस' की रचना 'अवधी' में की। उन्होंने जनमानस में इस बात को प्रतिष्ठित किया कि भगवान पापियों का संहार करने के लिए संसार में अवतार लेते ही हैं। आमजनों में इसे अपार लोकप्रियता मिली और यह घर-घर व चौपालों में पढ़ा जाने लगा। वस्तुतः तत्कालीन समय में लोग राजाओं के अत्याचार और विनाशकारी युद्धों से पीड़ित थे। राम भक्त कवियों की संख्या अपेक्षाकृत कम होने का मुख्य कारण 'रामचरितमानस' जैसे विशाल महाकाव्य का जनमानस में प्रतिष्ठित होना है, जिसके बाद राम के बारे में और लिख पाने के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता। संप्रति, भक्तिकाल के कवियों में तुलसीदास का नाम सर्वोपरि है।

7.6 रामभक्ति शाखा की मुख्य विशेषताएं

(1) इस शाखा के कवियों ने राम को विष्णु का अवतार मानते हुए राम और सीता को इष्ट माना और सेवक भाव से उनकी उपासना की।

(2) इस काव्यधारा का केन्द्रीय मूल्य 'सामाजिक मर्यादा' है, इसीलिए राम को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' के रूप में प्रतिष्ठित किया। राम का चरित्र, समाज के विभिन्न रिश्तों को मर्यादा में रहने की प्रेरणा देता है। वे अयोध्या के राजा है परन्तु सामन्तवादी चेतना व बहुपत्नीवाद के विरोधी हैं इसीलिए यह महाकाव्य शासन व्यवस्था में 'राम-राज्य' की कल्पना को प्रतिष्ठित करता है जहाँ मनुष्य दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से मुक्त होकर जीवन व्यतीत कर सकता है।

'दैहिक दैविक भौतिक तापा,
राम राज नहिं काहुहि व्यापा।'

- तुलसीदास

(3) लोकमंगल की कामना कर साहित्य का सृजन किया गया।

'परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई।' - तुलसीदास

(4) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'भारत का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय का अपार धैर्य लेकर आया हो।' तुलसी ने समन्वय की विराट चेष्टा की, जो उनके महाकाव्य 'रामचरितमानस' में देखा जा सकता है।

(5) इस काव्यधारा के कवियों ने न केवल अपने काल-खण्ड में समाज को दिशा प्रदान की बल्कि परवर्ती कालों में आजपर्यन्त उसका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

(6) राम भक्त कवियों ने वर्ण व्यवस्था को समाज के संगठन का अनिवार्य अंग मानते हुए सिद्धान्तः समर्थन किया जबकि भक्तिमार्ग के ज्ञानमार्गी कवि कबीर, नानक व सूफी कवि जायसी ने वर्ण व्यवस्था का खंडन किया।

(7) इस काव्यधारा के कवियों की रचनाएँ अवधी व ब्रज में मिलती हैं।

(8) इस काव्यधारा के अधिकांश कवियों ने दोहा, चौपाई, कुण्डलिया, छप्पय, कवित्त, सवैया आदि छन्दों का प्रयोग किया। भावों के अनुरुप छन्दों का प्रयोग करने में वे अत्यन्त कुशल थे।

रामकाव्य भले ही परिमाण की दृष्टि से सीमित हो, किंतु संपूर्ण भारतीय समाज पर रामकाव्य का व्यापक प्रभाव पड़ा है। यह लोकधर्मी एवं लोकमंगल की साधना व आस्था का काव्य है। रामकाव्य का वैशिष्ट्य तो तुलसी के कृतित्व पर टिका हुआ है और तुलसी एक प्रकार से भारतीय जनमानस के आस्था-भाव, उसकी मूल्य-चेतना का प्रतीक बन गए हैं। सभी रसों के पूर्ण परिपाक, अनुभूतियों के मर्मस्पर्शी निरूपण के कारण जहां रामकाव्य भाव - सौंदर्य की दृष्टि से विशिष्ट है वहां प्रायः सभी प्रचलित काव्यरूपों के प्रयोग, भाषा पर असाधारण अधिकार, छंदों की निर्दोष प्रस्तुति आदि सभी दृष्टियों से रामकाव्य का साहित्यिक महत्व सुरक्षित है।

7.7 सार - संक्षेप

रामकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ राम के जीवन और उनके आदर्शों से संबंधित हैं, जिनमें भगवान राम को मर्यादा पुरुषोत्तम, आदर्श राजा, वीर योद्धा और लोकनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। राम के प्रति भक्तिभाव, उनके चरित्र का आदर्श रूप और उनके द्वारा लोककल्याण की दिशा में किए गए कार्यों को इस काव्यधारा में प्रमुखता से दिखाया गया है। तुलसीदास ने राम को परम आराध्य के रूप में चित्रित करते हुए उनके जीवन के प्रत्येक पहलू को समाज के लिए प्रेरणादायक बताया है। रामकाव्य में भक्तिमार्ग, मानव-मूल्यों की साधना, लोकमंगल और समन्वय की भावना को प्रमुख स्थान दिया गया है। इसके अलावा, रामकाव्य के माध्यम से विभिन्न भावों और रसों का सुंदर रूप से चित्रण किया गया है, जिसमें शांति, करुणा, वीरता, और श्रृंगार आदि प्रमुख हैं। इस काव्यधारा में आदर्श पात्रों की योजना और अभिव्यंजना शिल्प सौंदर्य भी रामकाव्य को विशिष्ट बनाता है।

7.8 मुख्य शब्द

- रामकाव्य: राम के जीवन और कार्यों पर आधारित काव्य, जिसमें उनके चरित्र और धर्म की महिमा का वर्णन किया गया है।
- लोकनायक: समाज में आदर्श प्रस्तुत करने वाला नेता, जैसे राम जो अपनी नीतियों और कृत्यों से समाज का मार्गदर्शन करते हैं।
- भक्तिभाव: भगवान के प्रति श्रद्धा और भक्ति का भाव।
- लोककल्याण: समाज का भला करना, जैसे राम ने अपने जीवन में लोकमंगल के लिए कार्य किए।
- भक्तिमार्ग: भगवान की भक्ति के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग।
- मानव-मूल्य: मानवीय आचार-व्यवहार और नैतिकता, जो राम के जीवन में प्रमुख रूप से दिखाए गए।

- लोकमंगल: समाज का भला और कल्याण, जो राम के जीवन और कार्यों से प्रेरित है।
- समन्वय: विभिन्न मतों और विश्वासों को एक साथ लाने का प्रयास, जैसे तुलसीदास ने शैव और वैष्णव के बीच समन्वय किया।

7.9 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. असत्य

उत्तर: 2. सत्य

उत्तर: 3. असत्य

उत्तर: 4. सत्य

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी कविता की प्रवृत्तियाँ - लेखक: डॉ. विद्यानिवास मिश्र, भारतीय साहित्य मंथन, 2005
2. रामकाव्य का समकालीन मूल्यांकन - लेखक: डॉ. अरविंद त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, 2012
3. रामचरितमानस का आधुनिक परिप्रेक्ष्य - लेखक: डॉ. शंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, 2015
4. हिंदी साहित्य और सांस्कृतिक चेतना - लेखक: डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, साहित्य भवन, 2018
5. हिंदी काव्यशास्त्र का विकास - लेखक: डॉ. शिवकुमार शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, 2020
6. रामकाव्य की साहित्यिक परंपरा - लेखक: डॉ. रेखा मिश्रा, वाणी प्रकाशन, 2021

7.11 अभ्यास प्रश्न

1. रामकाव्य में राम के आदर्शों का वर्णन किस प्रकार किया गया है? उनके व्यक्तित्व के कौन से पहलू सबसे प्रमुख हैं?
2. तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में किन-किन रसों का उपयोग किया है? इन रसों का रामकाव्य की सुंदरता पर क्या प्रभाव पड़ा है?
3. 'रामराज्य' की परिभाषा दीजिए। रामराज्य में समाज के क्या आदर्श स्थापित थे, और उनका आज के समाज पर क्या प्रभाव हो सकता है?
4. रामकाव्य के द्वारा समाज में आदर्शों का प्रचार-प्रसार कैसे किया गया? इसके उदाहरण दीजिए।
5. 'रामचरितमानस' में वर्णित पात्रों की विशेषताएँ और उनके समाज पर प्रभाव पर चर्चा करें।

इकाई - 8

कबीर समीक्षात्मक

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 भाव एवं कला पक्ष

8.4 संत साहित्य की प्रगतिशीलता का कारण

8.5 कबीर का रहस्यवाद

8.5.1 रहस्यवाद का अभिप्राय

8.5.2 कबीर का रहस्यवाद

8.5.3 कबीर के रहस्यवाद के विविध रूप

8.6 कबीर के रहस्यवाद की विशेषताएं

8.7 कबीर की भाषा शैली

8.8 सार संक्षेप

8.9 मुख्य शब्द

8.10 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

8.11 संदर्भ ग्रन्थ

8.12 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

कबीर का जन्म 15वीं शताब्दी में हुआ था। उनके जन्म और जीवन से जुड़े कई मतभेद और किंवदंतियाँ हैं। वे एक साधारण जुलाहे के रूप में जाने जाते हैं और अपने दोहों और साखियों के माध्यम से समाज में व्याप्त अंधविश्वास, धार्मिक पाखंड और जातिवाद के खिलाफ आवाज उठाई।

कबीर ने न तो हिंदू धर्म को पूर्णतः स्वीकारा और न ही इस्लाम को। उन्होंने दोनों धर्मों में व्याप्त रूढ़िवादिता और कर्मकांडों का विरोध किया। कबीर की वाणी सरल, सहज और जनमानस को छूने वाली है। उनकी भाषा सधुक्कड़ी, अवधी, ब्रज, और खड़ी बोली का मिश्रण है।

8.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- कबीर के काव्य का उद्देश्य और उसका समाज पर प्रभाव और उनके काव्य में भक्ति आंदोलन की भूमिका
- कबीर के काव्य में निर्गुण ब्रह्म की उपासना और एकेश्वरवाद की स्थापना
- कबीर के काव्य में अंधविश्वास, पाखंड और सामाजिक आडंबरों की आलोचना
- कबीर के काव्य में प्रतीकों, रूपकों, उपमाओं और अनुप्रास का प्रयोग
- कबीर के काव्य के समाजिक सुधार और जागरूकता के लिए महत्व

8.3 भाव एवं कला पक्ष

(अ) भावपक्ष सम्बन्धी-

निर्गुण की उपासना- सभी सन्त कवि निर्गुण के उपासक हैं। उनका ब्रह्म अविगत् है। उसका न तो कोई रूपाकार है एवं न निश्चित आकृति। वह तो अनुपम, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वसुलभ है। घट-घट में बसता है तथा ब्राहोन्द्रियों से परे है। स्वयं सन्तकवि कबीर के शब्दों में-

'जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पहुप बास से पातरा, ऐसा तत्त अनूप ।।'

इसी निर्गुणोपासना के कारण वे सगुण का विरोध करते हैं तथा तर्कौंधार पर उसकी निस्सारता प्रकट करते हैं; यथा-

'लोका तुम ज कहत हौ नन्द कौ, नन्दन नन्द धू काकौ रे।
धरनि अकास दोउ नहिं होते, तब यह नन्द कहाँ धौ रे ।'

समन्वयपरक एकेश्वरवाद की स्थापना- सन्त कवि जीवन के सभी क्षेत्रों में समन्यवादी है। निःसन्देह धर्म तथा दर्शन भी इसका अपवाद नहीं है। यही कारण है कि, मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्नः' में यकीन न कर ये ईश्वर के एक सामान्य, सहज-सुलभ रूप को ही मानते हैं। कबीर में यह बात और भी अधिक रूप-मात्रा में मिलती है। वे तो सगुण निर्गुण को भी एक ही मानते हैं- "गुण में निर्गुण, निर्गुण में गुण, बारि छाँडि क्यूं बहिये ।"

एकेश्वरवाद मूलतः निर्गुण वैष्णव विचारधारा है। इसके अनुसार ब्रह्म एक ही है, जो लीला में भरकर 'स्व-विस्तार' करता है। माया-बाधा से ही वह भिन्न प्रतीत होता है। यह माया-बाधा अज्ञान की देन है तथा इसको गुरु-ज्ञान से दूर किया जा सकता है। कबीर इसी एकेश्वरवाद की स्थापना करते हैं।

रहस्यवाद- सन्त कवियों ने स्थान-स्थान पर अपनी उक्तियों को रहस्यमय रूप में प्रकट किया है। फलतः उनकी उक्तियाँ अस्पष्ट, अटपटी तथा गूढ़-गहन बन गईं। कबीर की उलटवासियों में ये सभी बातें उपलब्ध हैं। इसके अतिरित रहस्यवाद की अन्य स्थितियाँ और रूप भी इनमें भरपूर मात्रा में मिलते हैं। कहा तो यहाँ तक गया है कि "रहस्यवादी कवियों में कबीर का आसन सबसे ऊँचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है।" यहाँ पर दृष्टव्य बात यह भी है कि कबीर की रहस्यवादी उक्तियाँ केवल शुष्क और बौद्धिक मात्र नहीं हैं वरन् इनमें तो सूफियों के 'प्रेम' तथा वैष्णवों की भक्ति के साथ-साथ काव्यात्मकता भी पूरी-पूरी मात्रा में है। इन गुणों ने निःसन्देह कबीरीय रहस्यवाद को

'मौलिक' बना दिया है। 'फलतः कबीर का रहस्यदिव भारतीय अद्‌वैतवाद तथा इस्लामी सूफीवाद की संगमस्थलो होने पर भी इनसे वाशिष्ट है।"

उभयपक्षी श्रृंगार- श्रृंगार का मूल भाव है 'रति' (प्रेम) तथा उभय पक्ष है-संयोग एवं वियोग । ध्यान दें तो "प्रेम की व्यंजना का तीव्रतम् रूप पति-पत्नी-सम्बन्ध में ही होता है। कारण पति-पत्नी में अन्तराल नहीं रहता। सन्तों ने इसी कारण अपनी प्रेमासक्ति, राम को पति तथा स्वयं को उनकी पत्नी मानकर, व्यक्त की है।" इन्होंने वैष्णों तथा सूफियों से उनका दाम्पत्य श्रृंगार ग्रहण किया एवं उसके दोनों पक्षों का विशद् चित्रण किया। यही कारण है कि इनके यहाँ संयोग और वियोग दोनों के बड़े मार्मिक और विविध अवस्थाओं से युक्त चित्र मिलते हैं।

सामाजिक अन्याय का विरोध- मध्यकाल के अधिकतर सन्त कवि समाज के निम्न वर्ग से संबंधित थे। उन्होंने अपने जीवन में सामाजिक विषमता तथा तद्‌धनित अन्यायों को देखा, भोगा था। अतएव उनमें इसके प्रति विरोध-भावना होनी स्वाभाविक ही थी। प्रारम्भ में, विशेषतः महाराष्ट्री सन्तों में, विरोध का यह स्वर सरल-सहज था, पर कबीर में आकर तो यह आक्रोशमय एवं कटुतर तक बन गया। निःसन्देह इसका एक कारण कवि की निर्भीकता एवं अखण्डता भी थी। कबीर ने अपने समकालीन समाज और उसके विविध पक्षों पर कटु-तीखे प्रहार किये हैं। सच तो यह है कि उनकी उन व्यंगोक्तियों ने उनको सुधारक तथा युग-नेता तक बना दिया है। "सच पूछा जाये तो आज तक हिन्दी में ऐसा जबर्दस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ।"

बाह्याडम्बरों का विरोध- संत कवियों ने अपने युगीन समाज को आँखें खोल कर देखा एवं उसके सच्चे रूप को जनता के सामने जैसे का तैसा रखा भी था। कबीर निःसन्देह इस दृष्टि से भी अग्रणी कवि हैं। उन्होंने हिन्दू तथा मुसलमान दोनो में प्रचलित धार्मिक-सामाजिक आडम्बरों के ढोल की पोल खोली है। शैव हो या शाक्त, ब्राह्मण हो या मुल्ला, मुड मुडाने वाला साधु हो या माला

फेरने वाला पण्डित, सभी के पाखण्डी रूप कबीर ने उजागर किये हैं। इसी तरह मूर्ति-पूजा, माला, छापा-तिलक, तीर्थाटन, वेद-शास्त्र, कुरा-पुरान, मक्का-मदीना, रोजा नमाज, न जाने कितने आडम्बरों का विरोधपरक मजाक उड़ाया है, न जाने कितनी रीति-परम्पराओं का उन्मूलन किया है कबीर ने। सच में तो उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित समस्त अन्धविश्वासों, रूढ़ियों एवं मिथ्या सिद्धान्तों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं का मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्ममतापूर्वक सभी पर प्रहार किया।"

लोक-कल्याण की भावना- ये सन्त कवि मात्र विरोधी नहीं हैं। गहराई में झांकें तो उनके व्यंग्य-विरोध का मूलोद्देश्य लोक-कल्याण करना तथा सच्ची मानवता की प्रतिष्ठा करना है। वे तो सबको 'हरि का बन्दा' मानते हैं एवं जागृति के लिये समझाते हैं। ये कवि लोक-कल्याण भी ब्राह्याडम्बरों से नहीं, 'मन की पवित्रता' से मानते हैं।

नारी-विरोध- सन्त कवि मूलतः नारी के नहीं बल्कि उसके 'कामिनी' रूप के विरोधी हैं। निःसन्देह इसका सबसे बड़ा कारण तत्कालीन समाज में नारी के इसी भोग्या रूप की प्रधानता का होना है। कबीरादि ने नारी को प्रायः इसी रूप में ग्रहण किया है, यद्यपि 'सती' को अंग और पतिव्रता निहकरमी को 'अंग' एवं दाम्पत्यमूलक प्रतीकों वाले पदों (गीतों) में उन्होंने नारी की प्रशंसा भी की है। माया को कामिनी रूप प्रदान कर कबीर भी, अन्य सन्तों की भाँति, नारी को त्याज्य बताते हैं। उनके मतानुसार, नारी नरक का द्वार, अवगुणों की जन्मदाता, मोहिनी, ठगिनी, विषैली, भुजंगिनी आदि न जाने क्या-क्या है।

गुरु-महिमा का गान- सन्त-काव्य में गुरु वह शक्ति मानी गयी है, जो साधक-भक्त की अज्ञानता को दूर करके उसको सच्चा

ज्ञान प्रदान करती है। सूफियों को भांति यह गुरु अनुपम, अत्यधिक पूज्य, ब्रह्म-ज्ञान प्रदाता और मायादि विकारों से दूर करने वाला है। इसी से ये कवि गुरु को न केवल इन गुणों से युक्त मानते हैं, बल्कि उसको ब्रह्म के समकक्ष रख उसका आदर भी करते हैं।

(ब) कलापक्ष सम्बन्धी

सरल मिश्रित भाषा- उस काल में भी संस्कृत यद्यपि सारे भारत में व्याप्त थी, पर वह प्रायः विद्वत् वर्ग तक सिमट कर रह गयी थी। दूसरी तरफ, जनसमाज के अधिकाधिक निकट रहने वाला और विशेषकर अपने काव्योपदेशों से उसी को झिझोरने वाला कवि वर्ग प्रान्तीय या लोकसभाओं की अलख जगा रहा था। काव्य की रीति-नीति तक की उपेक्षा कर देने में इसको आपत्ति नहीं थी। निःसन्देह इनमें सर्वाधिक अग्रणी रहे थे-सन्त कवि, विशेषतः कबीर। सोचें तो, इन 'मसि कागद छुओ नहीं' वाले सन्त-कवियों के लिए यह स्वाभाविक भी था। उन्मुक्त भाव से रचे गये जन-काव्य के लिए नियमबद्ध-शुद्ध भाषा लाभप्रद नहीं थी और न ही ये कवि (एकमात्र सुन्दरदास को छोड़कर) काव्यशस्त्र-ज्ञाता थे। ये तो निम्न वर्ग से आये थे, उसी से संबंधित थे। स्वयं का इनका घुमक्कड़पन (देशाटन) और अलग-अलग स्थानों से संबंधित इनका अनुयायी समुदाय भी इसी प्रवृत्ति को बढ़ाने में सहायक था। समग्रतः इन्होंने 'सुधुक्कड़ी' या 'खिचड़ी' कही जाने वाली, किन्तु एकदम सर्वसुलभ, सर्वसरल भाषा को ही अपनाया और कबीर के शब्दों में, यहीं माना कि

"संसकिरत है कूप-जल, भाखा बहता नीर।
जब चाहो तब ही डुबौ, सीतल होय सरीर ।।"

से तो सीधी बात सीधे तरीके से कहने के कायल थे तथा उसूलन कथित अथवा सर्वसाधारण के रोजमर्रा की बोलचाल की भाषा में ही अपना सन्देश रखने के पक्षपाती भी थे, यद्यपि इसी के फलस्वरूप ये प्रान्तीयता के भाषा-रंग से भी बच नहीं सके। नानक में पंजाबीपना तथा कबीर में बनारसीपना की भरमार

इसी का प्रमाण है। साथ ही, इनकी काव्य-भाषा का एक रूप स्थिर कर पाना भी मुश्किल बन गया है, यथा कबीर की भाषा, जिसको स्वयं कबीर ने 'पूरवी' किन्तु दूसरों ने 'बनारस-मिर्जापुर-गोरखपुर की बोली, भोजपुरी का ही एक रूप, 'राजस्थानी-पंजाबी मिश्रित खड़ी बोली या सधुक्कड़ी', 'संध्या भाषा', 'अवधी तथा ब्रज के समीप' आदि न जाने क्या-क्या कहा एवं माना । समग्रतः मिश्रणप्रधान होने से इसको 'मिश्रित भाषा' ही माना जा सकता है।

प्रतीक योजना- सन्त-काव्य के प्रतीक मुख्यतः बौद्ध तथा नाथ-सम्प्रदायों से या फिर सीधे-सीधे जन-जीवन के लिए गये हैं। मुख्यतः ये चार प्रकार के हैं- (1) पारिभाषिक (यथा गगन गुफा, गगन मंडल, चन्द्र, सूर्य, सरस्वती, गंगा-यमुना, बाधिन, पाताली आदि), (2) संख्यावाचक शब्दों से युक्त (यथा दुई पाठ, त्रिकुटी, तीन गाउ, चार चोर, अष्ट कमल, दशम् द्वारादि), (3) अन्योक्ति परक (यथा चौराहा, बालम, चदरिया, गांव, दुलहिन, भरतार आदि) तथा (4) उलटबाँसी वाले प्रतीक (यथा मछली, मृग, सर्प, कुंआ, खरगोश आदि)। उक्ति-वैचित्र्य तथा भाव-वृद्धि इनकी अपनी विशिष्टताएं हैं।

छन्द तथा अलंकार- सन्त कवि न तो काव्यशास्त्र के अध्येता थे एवं काव्यशास्त्रीय नियमों से बद्ध होकर काव्य-सृजन करना इनका लक्ष्य था। 'काव्यगत' तो इनके यहाँ बाइ-प्रौडक्ट है अर्थात् अपने-आप बन जाने वाला। फलस्वरूप छन्द-अलंकारों के नियमबद्ध रूप या पांडित्य प्रदर्शन करने वाली चमत्कारिता इन कवियों में नहीं मिलती। फिर भी छन्द-अलंकार दोनों ही इनके मध्य में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, किन्तु सिर्फ साधन रूप में। साखी (दोहा) और सबद (गीत या पद) इनके प्रिय छन्द है यद्यपि चौपाई, कवित्तादि भी मिल जाते हैं। सुन्दरदास तो 'सवैये के बादशाह' माने गये। जहाँ तक प्रश्न है-अलंकारों का तो मुख्यतः यहाँ रूपक, उपमा, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा, श्लेष तथा अनुप्रासादि बहुप्रचलित अलंकार ही प्रयुक्त हुए हैं।

युगबोध- सन्त-काव्य का मूल दृष्ट है-युग-चेतना को जागृत करके युगबोध का संदेश देना। वास्तव में, 'अपने समय के सजग प्रहरी' ये ही थे। इन्होंने अपने युग को आँख खोलकर देखा ही नहीं उसकी कटुता, विषमताओं, विसंगतियों तथा आडम्बरादि का डटकर, निर्भीकतापूर्वक, विरोध भी किया। साथ ही साथ मानवता-मात्र का सन्देश भी दिया। सच तो यह है कि इनसे अधिक स्पष्टवक्ता, क्रांतिदर्शी, समाज-सुधारक एवं निर्भीक कवि अन्य किसी भी वर्ग सम्प्रदाय में नहीं मिलते। कबीर इसका सर्वोत्तम प्रमाण हैं।

8.4 संत साहित्य की प्रगतिशीलता का कारण

सन्त कवियों का लक्ष्य काव्य रचना नहीं था। उनकी रचनाओं में जन-जन के हित और उसके उद्‌बोधन की भावना सन्निहित है। सन्त सम्प्रदाय विश्व सम्प्रदाय है और उसका धर्म विश्व धर्म है। इस विश्व धर्म का मूलाधार है हृदय की पवित्रता। संतों की प्रगतिशील विचार धारा का एक प्रमुख कारण यह है कि इस मत का प्रचार निम्न वर्ग के अशिक्षित लोगों में रहा। इन संतों ने अगर एक ओर गुरु, भक्ति, साधु-संग, दया, क्षमा, सन्तोष आदि का उपदेश दिया है तो दूसरी ओर वे कपट, माया, तृष्णा, कामिनी, कांचन तीर्थ, व्रत, मांसाहार, मूर्ति पूजा और अवतारवाद के विरोधी थे। जिस युग में संत मत के कवियों की सृष्टि हुई वह अज्ञान, अशिक्षा और अनैतिकता का युग था, संतों की पीयूष वर्षिणी उपदेशमयी वाणी ने उनमें एक दृढ़ नैतिकता की प्रतिष्ठा की। अपनी इसी प्रगतिशील विचारधारा के कारण इस सम्प्रदाय ने धर्म का ऐसा स्वाभाविक, निश्छल, व्यवहारिक तथा विश्वासमय रूप जन भाषा में उपस्थित किया जो विश्वधर्म बन गया और अब भी जन जीवन में पुनः जागरण का संदेश दे रहा है। इनकी वाणी में जो उपदेश हैं वे केवल दर्शन का विषय न होकर जीवनरस

से ओत-प्रोत हैं। उनमें अनुभूति, सौष्ठव और जीवन का अमर संदेश है। संत साहित्य की प्रगतिशीलता का एक मुख्य कारण तत्कालीन परिस्थितियां थी। मुसलमानी संस्कृति के प्रभाव से हिन्दू जाति के निम्न वर्ग में नवीन जागृति आई। उन्होंने देखा कि मुसलमानों में जांति-पांति तथा छुआछूत का कोई भेद नहीं है। सहधर्मी होने के कारण वे सब समान हैं। इस स्थिति को देखकर संतों ने रूढ़िवाद एवं मिथ्याडम्बर का विरोध करना शुरू कर दिया। 'जाति-पांति न पूछे नहि कोई, हरि को भजै सो हरि का होई' के अनुसार उनके मत में जाति-पांति का कोई महत्व नहीं था। संत लोग साधारण धर्म तो मानते थे, किन्तु साम्प्रदायिकता या वर्णाश्रम सम्बन्धी विशेष धर्म के पक्ष में न थे। संतों ने वर्णाश्रम व्यवस्था का समूल नाश करना चाहा। चाहे संस्कृति की दृष्टि से यह हेय हो किन्तु तत्कालीन परिस्थिति के कारण यह आवश्यकता उत्पन्न हो गई थी। उन्होंने हीन वर्षों को उच्च वर्गों के स्तर पर लाने की चेष्टा की। संतों ने जिस साधारण धर्म को स्वीकार किया है, वह एक प्रकार से शुद्ध मानव धर्म ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुसलमान एकेश्वरवादी, पैगम्बर धर्म का मूर्ति खण्डन और एकेश्वरवादी और हिन्दू मुस्लिम भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष के कारण जो विषम परिस्थितियां उत्पन्न हो गई थी, उनका प्रभाव सन्तमत पर स्पष्ट है। वास्तव में निर्गुण सन्त काव्य धारा अपने समय का पूरा प्रतिनिधित्व करती है।

8.5 कबीर का रहस्यवाद

8.5.1 रहस्यवाद का अभिप्राय

रहस्यवाद का अभिप्राय रहस्यवाद कवि की एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति है जिसमें वह परम सत्ता के विषय में अपने

विचारों को सीधी-सादी भाषा में प्रस्तुत न करके एक नई भाषा में अंकित करता है वह परमसत्ता को अपनी लेखनी का विषय बनाकर एक ऐसे अनंत संसार में पहुंच जाता है जहां सुख-दुख, आशा-निराशा, हास्य-रुदन, संयोग-वियोग, शोक-विषाद आदि भी समान है।

8.5.2 कबीर का रहस्यवाद

रहस्यवाद के प्रकार- मुख्यतः रहस्यवाद दो तरह का होता है- 1. साधनात्मक, 2. भावात्मक ।

साधनात्मक रहस्यवाद में परमात्मा तक पहुंचने की प्रक्रिया का वर्णन किया जाता है तथा भावात्मक में आत्मा के विरह-मिलन के विविध प्रसंगों की सुंदर झांकी प्रस्तुत होती है।

कबीर का रहस्यवाद- हिन्दी साहित्य में कबीर अद्‌वितीय रहस्यवादी कवि माने जाते हैं। वे वेदांती थे। इसी कारण वे जीव तथा ब्रह्म की एकता के समर्थक थे। दूसरी तरफ वे सूफियों के प्रेम की पीर से भी प्रभावित थे। अतः उनके रहस्यवाद में अद्‌वैतवाद का माया तथा चिंतन व सूफियों का प्रेम भाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन दर्शनीय है। कबीर का रहस्यवाद एक तरफ तो हिन्दुओं के अद्‌वैतवाद की क्रोड़ में पोषित है और दूसरी ओर मुसलमानों के सूफी-सिद्‌धांतों को स्पर्श करता है। इसका विशेष कारण यही है कि कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकार के संतों के सत्संग में रहे तथा वह प्रारंभ से ही यह चाहते थे कि दोनों धर्म वाले आपस में दूध-पानी की तरह मिल जायें।

"इसी विचार से वशीभूत होकर उन्होंने दोनों मतों से संबंध रखते हुए अपने सिद्‌धांतों का निरूपण किया। रहस्यवाद में भी उन्होंने अद्‌वैतवाद तथा सूफीमत की 'गंगा-जमुना' साथ ही बहा दो।"

इसके अतिरिक्त कबीर पर हठयोग का प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। हठयोगी साधन-पद्धति के आधार पर उन्होंने कुंडलिनी इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, मूलधार आदि छः चक्रों, सहस्त्रार या हरन्ध आदि पर प्रकाश डाला है।

8.5.3 कबीर के रहस्यवाद के विविध रूप

कबीर के काव्य में साधनात्मक और भावात्मक दोनों प्रकार का रहस्यवाद दृष्टिगत होता है।

1. साधनात्मक रहस्यवाद- कबीर के साधनात्मक रहस्यवाद का विकास योगियों के नाथ संप्रदाय से हुआ है। अतः उन पर योगियों तथा हठयोग का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उनका मत है कि जब साधक की कुंडलिनी जाग्रत होकर सुषुम्ना के मार्ग से छहों चक्रों को पार करके बहारध में पहुँच जाती है तो एक अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है। यह आनंद मोक्ष का द्वार है। कबीर कहते हैं-

रस गगन गुफा में अजर झरै।
बिना बाजा झनकार उठै जहां, जहं समुझि परै।
जब ध्यान धरै।

कबीर के साधनात्मक रहस्यवाद पर भारतीय अद्वैत का भी प्रभाव है। उसे व्यक्त करने के लिए उन्होंने वेदांतियों की तरह मायावाद को भी स्वीकार किया है तथा विभिन्न दृष्टांतों से अद्वैत का प्रतिपादन किया है। शंकर के अद्वैतवाद का समर्थन करते हुए वे कहते है-

पाणी ही ते हिम भया, हिम व्है गया विलाई।
जो कुछ था सोई भया अब कछू कहा न जाई।

कबीर के रहस्यवाद में कहीं अनहद सुनाई पड़ता है तथा कही गगन घंटा का घहराना सुनाई पडता है। उन्होंने अपने साधनात्मक

रहस्यवाद को भक्ति और प्रेम का पुट देकर सरस और मधुर भी बना दिया है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि कबीर का साधनात्मक रहस्यवाद नीरस और शुष्क न होकर सरस तथा मधुर है।

2. भावात्मक रहस्यवाद- कबीर में भावात्मक रहस्यवाद भी पाया जाता है। इसमें जीवात्मा अपने आधार से प्रेम करती है तथा उसके अभाव में विरह-व्यथा से दग्ध रहती है। इस पर सूफियों की प्रेम पद्धति का अभाव है पर कबीर ने इसे भारतीय रूप दे दिया है। उन्होंने साधक, जीव व आत्मा को प्रेमिका तथा पत्नी रूप में, ब्रह्म का प्रियतम रूप में चित्रित किया है। यथा-

दुलहिन गावहु मंगलचार।
हमारे घरि आए हो राजा राम भरतार।

अथवा

नैना अंतरि आव तू ज्यू हौं नेन ड्रौपेठं।
ना हौं देखूं और कू, ना तोहि देखन देउं ।।

भावात्मक रहस्यवाद का मूलाधार प्रेम है। कवि ने प्रेम को विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया। आत्मा परमात्मा को प्रतीक्षा करते-करते कह उठती है-

आंखड़ियाई झाई पड़ी, पंथ निहारि-निहारि ।
जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि-पुकारि ।।

प्रियतम के विरह में आत्मा बहुत दुःखी है। आठों पहर का यह कष्ठ उसे असह्य हो उठता है। इसलिए कहती है-

कै विरहनि कू मींच दे कै आपा दिखलाई।
आठ पहर का दाझणा, मोपै सहा न जाइ ।।

कबीर के हृदय में परमात्मा को खोजने की तीव्र अभिलाषा जाग उठी। अपनी स्थिति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं-

परवति परवति में फिरया, नैन गंवाई रोड़।

सो बूंटी पाऊ नहीं, जाते-जीवनि होइ ।।

अंत में आत्मा को अपने चिर प्रतीक्षित प्रियतम के दर्शन हो जाते हैं तथा वह कह उठती है-

बहुत दिनन में प्रीतम आए। भाग बड़े घरि बैठे आए ॥

इस प्रकार भावात्मक रहस्यवाद में कवि ने आत्मा के कई भावों आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, विरह-मिलन आदि के विविध चित्र प्रस्तुत किये हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

1. कबीर के रहस्यवाद में _____ और _____ दोनों प्रकार के रहस्यवाद का वर्णन किया गया है।
2. कबीर का साधनात्मक रहस्यवाद _____ के प्रभाव से विकसित हुआ है और इसमें _____ के मार्ग से आनंद की प्राप्ति की बात की जाती है।
3. कबीर के भावात्मक रहस्यवाद में आत्मा को _____ के रूप में चित्रित किया गया है और _____ के विरह में उसकी पीड़ा का वर्णन किया गया है।
4. कबीर के रहस्यवाद में _____ का भी प्रभाव दिखाई देता है, और वे _____ के अद्वैतवाद का समर्थन करते हैं।

8.6 कबीर के रहस्यवाद की विशेषताएं

रहस्यवाद का विकास क्रम है-सीमा का असीम के प्रति कुतुहल, विस्मय, जिज्ञासा, तादात्म्य अनुभव, अनुराग, नम्रता, तन्मयता, विरह तथा मिलन। कबीर ने इन सभी स्थितियों का निर्वाह किया है। उनके रहस्यवाद की निम्न विशेषताएं है-

1. **जिज्ञासा की भावना-** कबीर निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म के उपासक हैं। वैसे उनकी दृष्टि में न तो उनके इष्टदेव का कोई रूप है तथा न कोई आकार। फिर भी वह सर्वत्र विद्यमान है। कोई भी स्थान ऐसा नहीं है जहां उसका अस्तित्व न हो। कबीर की यह अस्तित्व बुद्धि ही अपने इष्टदेव के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करती है तथा इसी से वे यह जानना चाहते हैं कि वह ब्रह्म कैसा है? कहां है? और किस तरह अपनी क्रियाएं करता रहता है? वास्तव में कोई भी व्यक्ति इस मर्म को नहीं जानता है इसलिए कबीर बड़े बेचैन रहते हैं। उनका कहना है जब इड़ा, पिगला और सुघुम्ना आदि नाड़ियां ही नहीं है तो फिर समस्त गुण कहां समा जाते हैं ?

2. दर्शन एवं मिलन का प्रयत्न- कबीर मानते हैं कि उनका प्रियतम निर्गुण एवं निराकार है, वह सर्वत्र विद्यमान होकर भी व्यक्त है फिर भी वह एक जिज्ञासु साधक की भांति उस ब्रह्म से मिलने के लिए अत्यंत व्यधित तथा बेचैन रहते हैं। यही कारण है कि जिस प्रकार कोई वियोगिनी मार्ग के किनारे खड़ी होकर अपने प्रियतम के विषय में पंथिकों से पूछती है। उसी तरह कबीर भी अपने प्रियतम राम से बिछुड़ कर अपने गुरु से पूछते हैं कि मुझे मेरे प्रियतम का संदेश कुछ तो सुनाओ कि वे कब आकर मिलेंगे-

"विरहिनी अभी पंथ सिरि, पंथी बूझे जाइ।
एक सबद कहो पीव का, कबर मिलेंगे जाड़।"

3. भौतिक विघ्न एवं वेदना की प्रवृत्ति- कबीर ने अपने रहस्यवाद में साधनापथ के अनेक विध्नों तथा कष्टों का भी उद्घाटन किया है। सबसे पहले कबीर ने उस ठगिनी माया का ही उल्लेख किया है जो बड़ी मीठी है, जिसका छोड़ना कठिन है जो अज्ञानी पुरुष को बहका-बहका कर खाती रहती है-

"मीठी-मीठी माया तजी न जाई।
अग्यानी पुरुष को भोली-भाली खाई।"

फिर कहते हैं कि यह 'मोर तोर को जेवडी' है और यह इतनी विश्वास-घातनी है कि इसके आकर्षण के कारण भक्त भगवान का भजन नहीं कर पाता। यह ऐसी पापिनी है कि एक वैश्या की तरह संसार रूपी हाट में जीवों को फंसाने का फंदा लिए बैठी रहती है-

"कबीर माया पापिणी, फंद लें बैठी हाटि।"

कबीर ने इस माया के दो रूप बताये हैं 'कंचन और कामिनी'। इन दोनों के रूप में यह जीवों को ठगती है जिसके कारण जीव जन्म-मरण के चक्कर में फंसकर संसार में भटकता रहता है।

4. अथक एवं अगोचर सत्ता के दर्शन का आभास- कबीर ने इस स्थिति का अत्यंत मनोहारी वर्णन किया है। कबीर कह रहे हैं कि मैंने बिना देह तथा आकार का ऐसा कौतुक देखा है तथा बिना कार्य और चंद्रमा के प्रकाश का दर्शन किया है-

"कौतुक दीठि देह बिन, रवि ससि बिना उजास ।"

यह प्रकाश असीम एवं अनंत है, उसे देखकर ऐसा लगता है मानो सूर्य की सेना हो या अनेक सूर्य एक साथ उदित हो रहे हों-

"कबीर तेज अनंत का मानो अगी सूरज सेणि।"

इस तरह कबीर ने उस अव्यक्त एवं अगोचर सत्ता के दर्शन का बड़े प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है।

5. सांसारिक ज्ञान एवं अपरोक्ष अनुभूति- कबीर ने अपनी इस अपरोक्ष अनुभूति का अत्यंत मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। कबीर कहते हैं कि जिस उत्कृष्टता तथा तीव्रता के साथ मन माया जन्म विषयों में रमता है उतनी ही उत्कृष्टता तथा तीव्रता के साथ मन राम में रम जाये तो वह साधक तारामंडल से भी परे वहां पहुंच जाता है। राम के गुण-गान करने के त्रिगुणात्मक माया का पाश कट जाता है।

कबीर यह भी कहते हैं कि यहां पर राम नाम की लूट हो रही है जिससे जितना लूटा जाये लूट लो-

"लूटि सकै तौ लूटियो, राम नाम की लूटि।
पीछे ही पछिताहुगे, यह तन जैहे छूटि ॥

कबीर की इस अनुभूति का मूलाधार प्रत्यक्ष जीवन है। कबीर ने "तू कहता कागद की लेग्खी, मैं कहता हूं आंखों की देखो" कहकर अपने अपरोक्ष अनुभूति की वास्तविकता को स्पष्ट कर दिया है।

6. चिर-मिलन- रहस्यवाद की अंतिम स्थिति आत्मा तथा परमात्मा का 'चिर मिलन' मानी गई है। कबीर ने बड़े ही ओजस्वी शब्दों में इस अंतिम स्थिति का भी उद्घाटन किया है। इस मिलन की अवस्था का रूपक बांधते हुए उन्होंने स्वयं को दुलहिन तथा राम को प्रियतम कहा है और विवाह होने पर जिस प्रकार पति-पत्नी मिलते हैं उसी प्रकार अत्यंत प्रेमपूर्वक आत्मा और परमात्मा का मिलन हो रहा है तथा जिस प्रकार एक पत्नी अपने पति के साथ एक शय्या पर शयन करती है उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा एक होकर शयन कर रहे हैं-

बहुत दिनन थे प्रीतम पाए, भाग बड़े घर बैठे आए।
मंदिर मांहि भया उजियारा, लै सूती अपना पिय प्यारा ।।

विवाह के उपरांत जैसे पत्नी अपने प्रियतम से मिलती है उसी प्रकार 'अंक भरे भर भेंठिया, मन में नाही धीर' कहकर कबीर ने उस दृश्य को प्रकट किया है। इस मिलन के उपरांत अनिर्वाचनीय आनंद की उपलब्धि होती है। इससे स्पष्ट है कि इस स्थिति में भगवान साधक और साध्य तथा जीव तथा ब्रह्म एक हो जाते हैं, दोनों का भेद मिट जाता है और पूर्ण अद्वैत की स्थापना हो जाती है।

8.7 कबीर की भाषा शैली

कबीर की भाषा के निर्णय का प्रश्न पर्याप्त विवादास्पद रहा है। इसका कारण कबीर के प्रामाणिक काव्य का संग्रह अभाव ही है। अलग-अलग विद्वानों ने कबीर की भाषा के सम्बन्ध में इसी कारण अपने-अपने मन से निर्णय दिया है। किसी ने उसे अवधी, किसी ने भोजपुरी, किसी ने सधुक्कड़ी, किसी ने राजस्थानी तथा किसी ने अनेक भाषाओं के मेल से बनी पचमेल खिचड़ी और किसी ने ब्रजभाषा कहा है। त्यों कबीर ने इस विवाद को यह कहकर और बढ़ावा दिया है।

बोली हमारी पुरवी, हमें लखै नहिं कोय।
हम को तो सोई लखै, धुर पूरब को होय ।।

भाषा विषयक विभिन्न मत

कबीर की भाषा के सम्बन्ध में विभिन्न मत जो विद्वानों ने व्यक्त किये हैं, ये हैं।

1. 'उसकी (साखी को) भाषा सधुक्कड़ी है अर्थात् राजस्थानी, पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर 'रणैणी" और 'सबद' में काव्य की बजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

2. 'कबीर की बोली पूरबी ही अधिक होनी चाहिए क्योंकि उन्होंने कहा भी है, किन्तु डा. रामकुमार वर्मा ने अपने इस मत में सुधार किया और हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में यह लिखा है 'कबीर ने अपनी भाषा पूरबी लिखी है, परन्तु नागरी प्रचारिणी सभा ने कबीर ग्रन्थावली का जो प्रमाणिक संस्करण प्रकाशित किया है, उसमें पूरबीपन किसी प्रकार भी नहीं है।" डा. रामकुमार वर्मा

3. 'कबीर की भाषा पंचमेल खिचड़ी है।' डा. श्यामसुन्दर दास

मिश्रित भाषा- उपर्युक्त विद्वानों के मतों को देखने से पता चलता है कि कबीर की भाषा में किसी भी एक भाषा को महत्व नहीं

मिला है। उसमें अनेक भाषाओं का मिश्रण है। उसमें एक और तो अंषलियां, जीभाड़ियां कसाइयां, दुखढ़ियां और रातड़ियां जैसे पंजाबी शब्दों का प्रयोग मिलता है दूसरी और विसूरणां, रोवण, सजणां, जांणि, छाणि, सताणी व रैणा आदि राजस्थानी बोली के शब्द भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। इसी प्रकार कबीर की भाषा में लैट्यो, घेट्यौ, पकरयौ, चल्यौ आदि प्रयोग ब्रजभाषा के मिलते हैं। इसके साथ ही कहीं जाऊंगा, आऊंगा, लागा, भागा, मिलाऊंगा, चित लाऊँगा, धागा टूटा आदि शुद्ध खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। अवधी के प्रयोगों से भी कबीर की भाषा अछूती भाषा की धरोहर है। इतना ही नहीं पीर, मुरोद, काजी, दरवेश, मुल्ला, कुरान, खुदाई, खालिक, दरोगा, हाजिरां, अकलि, अलह, पाक और नापाक आदि अरबी, फारसी के शब्द भी कबीर में पूरी तरह मिलते हैं। इससे यही प्रमाणित होता है कि कबीर की भाषा में अनेक भाषाओं और बोलियों का मिश्रण है। इसी से डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना का यह मत ठीक ही प्रतीत होता है कि कबीर की भाषा में बंगला, बिहारी मैथिली, भोजपुरी, अवधी, बज खड़ी बोली, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, सिन्धी, लंहदा, अरबी-फारसी आदि सभी बोलियों को चढ़ाकर पकाया हुआ 'सधुक्कड़ अन्नकूट' विद्यमान है। वह सर्वत्र स्वतन्त्र है। उसमें लिग, वचन, कारक आदि किसी प्रकार का बन्धन नहीं है और न उसके शब्दों को छील-छीलकर या किसी एक भाषा के सांचे में ढालकर ही सुन्दर सुडौल बनाया गया है।

कबीर की भाषा में अनेक भाषाओं के मिश्रण के कारण निम्न हैं-

1. कबीर घुमक्कड़ी वृत्ति के संत थे।
2. घुमक्कड़ी वृत्ति के कारण ही स्थान-स्थान पर जाने वाले कबीर अपने प्रवचनों और दृष्टिकोण की संप्रेषणीयता के लिए वहीं की भाषा को अपना लेते थे।

3. कबीर की वाणी वह वाणी है जिसे हरेक धर्मावलम्बी, हरेक भाषा का जानकार अपना सकता हैं। यही कबीर चाहते भी थे। अतः उनकी भाषा में विविध भाषाओं का मिश्रण मिलता है।
4. समय, स्थान और अधिकारी पात्र के अनुकूल बोलने के कारण कबीर की भाषा में विविधता के दर्शन होते हैं।
5. कबीर की भाषा में विविध भाषाओं की शब्दावली के मिश्रण का एक कारण यह भी हो सकता है कि वे भाषा को 'संस्करित जैसे कूपजल' से निकाल कर बहुत नीर की तरह प्रचारित करना चाहते थे। एक शब्द में वे जनता के सामने एक लोक भाषा का प्रचार करना चाहते थे।
6. कबीर के शिष्य विभिन्न स्थानों और प्रदेशों में फैले हुए थे। अतः यों भी भाषा मिश्रण सम्भव था।

यही कारण है जिनकी वजह से कबीर की वाणी में भाषागत एकरूपता नहीं मिलती है। इतने पर भी यह स्पष्ट हो है कि कबीर की भाषा में सादगी और सरलता है। वह सहज विश्वसनीय भाषा है जिसमें आडंबरहीनता और अनअलंकृति को प्रमुख स्थान प्राप्त है। डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर की सांकेतिक और प्रतीकात्मक वर्णन प्रणाली को देखकर उनकी भाषा की गणना 'सांध्य भाषा' की परम्परा में की है, किन्तु इसके ठीक विपरीत डा. सरनाम सिंह शर्मा का मत है कि 'कबीर की भाषा के प्रवर्तकों (सिद्धो) का जो लक्ष्य था, उससे कबीर का लक्ष्य सर्वथा भिन्न था, जबकि पहले लोग भोली-भाली जनता को भान्ति में डालना चाहते थे, कबीर उसे शान्ति के पथ पर ले जाना चाहते थे। सिद्धों की भाषा गुमराह करने वाली थी और कबीर की भाषा राह दिखाने वाली थी।' वस्तुतः कबीर की भाषा एक सहज प्रवाहशील भाषा है जो ऊबड़-खाबड़ रास्तों में भी अपनी राह बनाती हुई निरन्तर आगे बढ़ती गई है।

8.8 सार संक्षेप

कबीर दास भारतीय संत और कवि थे, जिनकी रचनाएँ भक्ति आंदोलन की आधारशिला मानी जाती हैं और जिन्होंने भारतीय समाज और साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला। उनका काव्य सामाजिक समता और धर्मनिरपेक्षता का समर्थन करता था, जिसमें जाति, पंथ और धर्म के भेदभाव का विरोध किया गया और हिंदू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा दिया गया। कबीर निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर जोर देते थे और मूर्तिपूजा, कर्मकांड तथा आडंबर की आलोचना करते थे। उनकी रचनाएँ सरल और जनसामान्य के लिए सुलभ थीं, जो लोकभाषा में लिखी गईं और समाज के हर वर्ग तक पहुंची। कबीर ने समाज की कमजोरियों और धार्मिक आडंबरों पर तीखे कटाक्ष किए, जबकि उनके दोहे और साखी जीवन के गहरे सत्य को उजागर करते थे। वे सच्चाई, सरलता और परोपकार को जीवन का आदर्श मानते थे, और आध्यात्मिकता के माध्यम से समाज में सुधार की बात करते थे।

8.9 मुख्य शब्द

1. **रहस्यवाद**:

   ऐसी आध्यात्मिक या धार्मिक दृष्टि या विचारधारा, जो ईश्वर, ब्रह्मांड, और आत्मा से जुड़ी गूढ़ और गहन अनुभूतियों पर आधारित होती है। यह मानव अनुभव से परे की चीज़ों को समझने की कोशिश करता है।

2. **प्रगतिशीलता**:

   यह विचारधारा है जो समाज, शिक्षा, विज्ञान, और अन्य क्षेत्रों में निरंतर सुधार और परिवर्तन की आवश्यकता पर बल देती है। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत और सामूहिक उन्नति के लिए नये विचारों और बदलावों को अपनाना है।

3. **सर्वव्यापक**:

ऐसा जो हर जगह मौजूद हो या जो समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त हो। यह शब्द अक्सर ईश्वर या किसी शक्ति के संदर्भ में उपयोग होता है जो हर चीज़ में और हर स्थान पर विद्यमान हो।

4. **समन्वय**:

विभिन्न विचारों, तत्वों, या प्रयासों को जोड़कर सामंजस्य स्थापित करना। यह संतुलन और एकता का प्रतीक है, जिससे किसी कार्य या उद्देश्य को सफलतापूर्वक पूरा किया जा सके।

5. **एकेश्वरवाद**:

ऐसी धार्मिक मान्यता या विचारधारा जिसमें यह विश्वास होता है कि केवल एक ही ईश्वर है, जो संपूर्ण ब्रह्मांड का सृष्टिकर्ता और संचालनकर्ता है।

6. **संप्रदाय**:

किसी धर्म, विचारधारा, या संगठन के अनुयायियों का समूह जो अपने विशेष सिद्धांतों और रीति-रिवाजों का पालन करता है।

7. संस्कृति:

किसी समाज या समुदाय की जीवनशैली, विचारधारा, परंपराएँ, भाषा, कला, साहित्य, और आचरण का समग्र स्वरूप। यह सभ्यता के विकास की अभिव्यक्ति भी है।

8.10 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. साधनात्मक और भावात्मक
2. नाथ संप्रदाय, सुषुम्ना
3. प्रेमिका, प्रियतम
4. हठयोग, शंकर

8.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. पाण्डेय, पी. (2020). *संत कबीर दास के दोहे हिंदी में अर्थ सहित।* किंडल संस्करण।
2. त्रिगुणायत, ग. (2024). *कबीर की विचार धारा.* साहित्य निकेतन।
3. सिंह, ग. न. (2024). *जनम साखी भगत कबीर जी.*
4. ठाकुर, ख. (2024). *कबीर: कविता एवं समाज.* अनुग्या बुक्स।
5. राधा स्वामी सत्संग ब्यास. (2024). *संत कबीर.*

8.12 अभ्यास प्रश्न

1) कबीर के रहस्यवाद को विस्तार से समझाइए।
2) कबीर की भाषा शैली का वर्णन कीजिए।
3) कबीर के रहस्यवाद की विशेषताएं लिखिए।
4) भाव पक्ष एवं कला पक्ष को विस्तार से समझाइए।

ब्लॉक - III

इकाई - 9

सूरदास समीक्षात्मक

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 भाव पक्ष कला पक्ष

9.4 सूरदास के वियोग वर्णन

9.5 सूरदास के श्रृंगार वर्णन

9.6 भ्रमरगीत की परंपरा में सूर कृति भ्रमर गीत का स्थान

9.7 सूर काव्य की भाषागत विशेषताएं

9.8 सार संक्षेप

9.9 मुख्य शब्द

9.10 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

9.12 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

सूरदास हिंदी साहित्य के भक्ति काल के महान कवि हैं, जो कृष्ण भक्त कवियों में अद्वितीय स्थान रखते हैं। उनका साहित्य न केवल भक्ति और काव्य कला की उत्कृष्टता का प्रतीक है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति और मानव जीवन के गहरे पहलुओं को भी उजागर करता है। उनकी रचनाएँ विशेष रूप से सगुण भक्ति परंपरा और वात्सल्य रस की अद्वितीय उदाहरण मानी जाती हैं।

सूरदास का प्रमुख काव्य संग्रह 'सूरसागर' है, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण के बाल्य जीवन, उनकी लीलाओं और गोपियों के साथ उनके प्रेम को बड़े ही सुंदर और भावपूर्ण तरीके से चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त, सूरसारावली और

साहित्य लहरी भी उनकी प्रमुख कृतियाँ मानी जाती हैं। उनका काव्य सरल, सहज, और हृदयस्पर्शी है, जो पाठकों और श्रोताओं को भक्ति और आत्मिक शांति का अहसास कराता है।

सूरदास का जीवन और उनका साहित्य भक्तिकाल की महान परंपरा से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। उनके काव्य में भाव और भाषा का ऐसा अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है, जो श्रोताओं को भक्ति और रस में डुबो देता है। इस समीक्षात्मक अध्ययन में, सूरदास के काव्य की विशेषताओं, उनके साहित्यिक योगदान और उनके काव्य में छिपे मानव मूल्यों का विस्तृत विश्लेषण किया जाएगा।

9.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- सूरदास के जीवन और उनके साहित्यिक योगदान को जानेंगे तथा उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ, जैसे 'सूरसागर', 'सूरसारावली', और 'साहित्य लहरी', का परिचय प्राप्त करेंगे।
- सूरदास के काव्य में व्यक्त भक्ति और वात्सल्य रस की विशेषताओं को समझेंगे।
- सूरदास के काव्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति और मानव जीवन के गहरे पहलुओं का विश्लेषण करेंगे।
- सूरदास के काव्य में भाव और भाषा के समन्वय को समझते हुए उनकी काव्य शिल्प की विशेषताएँ जानेंगे।
- सूरदास के काव्य में निहित मानव मूल्यों और सामाजिक दृष्टिकोण का मूल्यांकन करेंगे।

9.3 भाव पक्ष कला पक्ष

(1) भावपक्ष

सूरदास के भाव पक्ष की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. भक्ति भावना- सूरदास सगुण भगवान श्रीकृष्ण के परमोपासक और अटल भक्त हैं। अपने आराध्य के प्रति महाकवि ने भक्ति दास्य, सख्य, माधुर्य, प्रेम भाव सहित नवधा भक्ति के विभिन्न रूपों में की है। संख्य भक्ति का एक उदाहरण देखिये-

"हमारे प्रभु औगुन चित्त न धरौ।
समदरसी है नाम तिहारो, सोई पार करौ।"

2. दार्शनिकता- सूरदास उच्चकोटि के दार्शनिक कवि हैं। वे निर्गुण बह्म को सगुण से बढकर महत्व नहीं देते हैं। उनका दार्शनिक पक्ष स्पष्ट है।

3. भावुकता- सूरदास जी के काव्य में विविध प्रकार की भाव तरंगें उछलती हुई दिखती हैं। इसमें जीवन की विविध भावनाओं का समावेश है। बालक श्रीकृष्ण की कोमल और विशुद्ध भावनाएं, नन्द और यशोदा की प्रेमभरी उमंग, गोपी गोपियों सहित राधा की सरसता और मधुरता, फिर श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर सम्पूर्ण ब्रज प्रदेश की तड़पन और विवशता जैसी भाव धाराएं सूरदास ने प्रवाहित की हैं।

4. वात्सल्य विधान- सूरदास का वात्सल्य विधान सर्वश्रेष्ठ है। आप बलकोचित भावों और प्रक्रियाओं एवं स्वरूपों का यथार्थ स्वाभाविक तथा रोचक चित्र प्रस्तुत करने में सबसे आगे हैं। बालक श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था की क्रियाओं और स्वाभावों की रूप रेखाएं कवि ने इस प्रकार अत्यन्त प्रभावशाली रूप में वर्णन किया है। इसका एक उदाहरण देखिये -

"मैया मैं नहीं माखन खायो।

ख्याण परै ये सखा सबै मिली मेरे मुख लपटायो ।।

देखि तुही छीके पर माखन, ऊंचे धारि लटकायो ।

है जु कहत नान्हे कर अपने मैं कैसे धरि पायो ।।"

5. श्रृंगार विधान- सूर ने श्रृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों के जो चित्र प्रस्तुत किए हैं वे अनूठे और बेजोड़ सिद्ध हुए हैं। संयोग श्रृंगार का एक चित्र देखिये -

'सूर स्याम देखत ही रीझै नैन- नैन मिलि परी ठगोरी।'

6. प्रकृति चित्रण- प्रकृति देवी का उद्दीपन चित्र सूरदास का सर्वाधिक सशक्त चित्रण है। गोपियों के साथ क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण और बाल ग्वालों के भावों और चेष्टाओं को रोचक रूप देने के लिए कवि ने प्रकृति का सहारा लिया है। गोपी विरह प्रसंग में प्रकृति चित्रण प्रधान होकर मार्मिक और हृदयस्पर्शी व सजीव बन गये हैं।

(II) कला- पक्ष

महाकवि सूरदास की कलागत विशेषताएं इस प्रकार से हैं-

1. भाषा- काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से सूरदास ने भाषा को विशिष्ट रूप दिया है। सूर की भाषा अवधी और बजभाषा है। उनकी भाषा में बज का माधुर्य बिखरा हुआ है। उन्होंने अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव और विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है। लोकोक्तियों और मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। लोकोक्ति का एक उदाहरण देखिये-

"अपने स्वास्थ्य के सब कोउ, जो छोटी।

तेई है खोटी, जाहि लगें सोई पै जाने ।।"

2. शैली- सूर की काव्य की सर्वाधिक विशेषता है सजीवता, प्रौढ़ता और औजस्विता का एक रूपक देखिये -

अविगत नाति कछु कहत न आवै।

ज्यों गूंगे मीठे फलौ की रस अन्तरगत ही भावै ।।

3. अलंकार योजना- सूर का 'सूरसागर' अलंकारों का भंडार है। कवि ने सांगरूपक का सर्वाधिक प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त 'सूर सागर' में उपमा, सन्देह, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। उत्प्रेक्षा का एक सुन्दर उदाहरण देखिये-

"शौभित कर नवनीत लिये ।
घुटुरूअस चलत, रेनु तनु मंदित, मुख दधि लेप किये।
"लट लटकनि मनुवत मधुपमन, मादक मधुषि पिये।"

4. छन्द- सूर का काव्य गैय होने के कारण उसमें छन्दों का विशेष महत्व नहीं है तथापि सूर सागर में जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है उसमें रोला, कुण्डल, राधिका, रूपमाला, हीर, सवैया, वीर, रीतिका आदि प्रमुख हैं।

संक्षेप में हम कुछ कह सकते हैं कि महाकवि सूरदास का काव्यगत सौन्दयं निर्विवाद रूप से सर्वोपरि है। इसी का जो स्वरूप दिखाई देता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

9.4 सूरदास के वियोग वर्णन

रसिकों के मन को डुबोने वाले श्रृंगार रस की भांति सूर का विप्रलम्भ श्रृंगार वियोग का अथाह उदधि है।

"अथ के मुख पर भी तो मैंने इति का अवगुंठन देखा है।" किसी कवि के वचनानुसार वृन्दावन की रासलीला का वह महामिलन यदि वियोग की अलंध्य मरुभूमि में परिणित हो गया तो आश्चर्य ही क्या है। रासलीला में गोपियां संयोग की उस पात्रावस्था को प्राप्त हो गई थीं "जहां एक क्षण का वियोग भी असह्य

होता है।" भावनाओं का जो उद्वेग संयोग श्रृंगार में मिलता है, कहीं उससे भी अधिक वियोग श्रृंगार में। वियोग की अन्तः और बाह्य दशायें अपने स्वाभाविक रूप में कवि की कल्पना का सहारा पाकर साकार हो उठी हैं। सूर साहित्य में प्रायः वियोग का प्रारम्भ विप्रलम्भ वात्सल्य से होता है। कृष्ण के मथुरा गमन पर सर्वप्रथम हमें मां यशोदा विलाप करती दिखाई पड़ती हैं। कृष्ण को मथुरा छोड़कर अकेले नन्द के पुनरागमन पर हमें यशोदा की हृदय विदीर्णकारी चीत्कार सुनाई पड़ती है-

छांड़ि सनेह चले मथुरा कत दौरि न चीर गह्यौ।
फाटि न गई वज्र की छाती कत यह सूल सह्यौ।

मां यशोदा के हृदय में है घोर झुंझलाहट, खिजलाहट, उत्सुकता के साथ विरक्ति, अपने लिए तिरस्कार की भावना, जो अपने लाल की रक्षा भी नहीं कर सकती, उसके पति का महर पद व्यर्थ सिद्ध होता है

नन्द ब्रज लीजे ठोकि बजाय ।
देह विदा मिलि जाहिं मधुपुरी जहं त्रिभुवन के राय।

ठोकि बजाय में यशोदा नन्द के सम्पत्ति और अधिकार लोलुपता को ललकारती हैं। वे नंगी- भूखी भी कृष्ण के पास जाकर रहना चाहती हैं, नन्द अपनी जागीर संभालें। यशोदा के ही मन में पीर नहीं है, नन्द को भी उनकी कठोरतायें याद आती हैं। संयोगावस्था में जिन बातों को देखकर सुख मिलता था अब वही प्राणों को कचोट रही हैं। वे कहते हैं-

तब तू मारबोई करति ।
रिसनि आगे कहे न आवति, अबलै भाड़े भरति ।
रोसकै कर दांवरी लै फिरति घर घर धरति ।
कठिन हिए करि तब जौ बांध्यो, अब वृथा दुख करति।

यह झुंझलाहट कृष्ण के विषय में वियोग के ही कारण उत्पन्न हुई है, उसकी अपनी स्वाभाविकता है। गोपियां विरहाग्नि में जल रही है, उनके मन में कन्हैया की बातों को लेकर एक शूल उठता है।

मेरे मन इतनी सूल रही।

ते बतियां छतियां लिखि राखी जे नन्दलाल कही।

ताहि देखि मैं मान किये सखि सो हरि गुसा गही।

सोचति अति पछिताति राधिका मूर्छित धरनि ढही।

अज्ञानावस्था में जन्म के साथ मृत्यु इस क्षण क्षण की मृत्यु से कितनी अधिक सुखदायी होती है, यह गोपिकायें ही कह सकती हैं।

गोपियों की नेत्र वर्षा से तो घन भी हार गये हैं-

सखि इन नैनन के घन हारे।

बिनु ही ऋतु बरसत निसि बासर सदा मलिन दोऊ तारे।

प्रकृति में एक वर्ष में पावस कुछ माह के भीतर आती है, किन्तु गोपियों के नेत्रों पर तो हर समय छाई रहती है-

निस दिन बरसत नैन हमारे।

सदा रहति पावस ऋतु इन पर जब से स्याम सिधारे ।

कृष्ण के संयोग का साथी मधुवन आज गोपियों को काट रहा है, उसकी हरीतिमा उसके लिए स्मृति का वृश्चिक दंश बन गई है। आज उनके उजाड़ नौरस जीवन से इसका कोई तारतम्य नहीं है, अतः वे चाहती है कि वह भी सूख जाय-

मधुवन तुम कत रहत हरे।

विरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाड़े क्यों न जरे।

तुम हो निलज लाज नहिं तुमकों फिर सिर पुहुप धरे।

ससा स्यार् औ वन के पखेरु धिक् धिक् सबनि करे।

कौन काज ठाड़े रहे बन में काहे न उकठि परे।

काली अंधेरी रातें जिनका संयोगावस्था में कभी ज्ञान भी नहीं होता था, अब नागिन बनकर डसने लगी हैं। सांपिन पीठ पर काली तथा पेट की ओर श्वेत होती है। काटकर नागिन का तुरन्त पलट जाना भी प्रसिद्ध है। काली रात भी अंतिम प्रहरों में या कभी कभी बादल हट जाने पर चांदनी निकल जाने पर श्वेत दिखाई पड़ती है। गोपियां उसका नागिन का उलट जाना मानती हैं-

पिया बिनु सौंपिन कारी रात।

कबहुंक जामिनि होत जुन्हैया डसि उलटी है जात।

जिस प्रकार सूर के संयोग श्रृंगार में बिहार स्थली असीम है, उसका ओर छोर निकलता है जाकर यमुना के हरे भरे कछारों में, करील के कुंजों और वनस्थलियों में, उसी प्रकार विरह वर्णन भी 'वैरिन भई रतियां और सांपिन भई सिजिया तक सीमित न रहकर प्रकृति के प्रांगण में उन्मुक्त बिहार करता है। वे कृष्ण का-

एक वन ढूंढि सकल वन ढूंढौ कबहुं न स्याम लहौं।

जो प्राकृतिक पदार्थ गोपिकाओं के हृदय में विरह वेदना उत्पन्न करते हैं, वे कृष्ण के मन प्राण में कोई अनुभूति नहीं भरते, तब गोपियां सहज ही कह उठती हैं ये सारे उपकरण उधर जाते ही नहीं, जो कृष्ण इन्हें देखें और दुखित हों। ये तो इधर ही छाये रहते हैं-

मानौ माई सबनि इतै ही भावत।

अब बहि देस नन्द नन्दन को कोउ न समौ जनावत ।

पावस विविध वरन वर बादर उठि नहिं अम्बर छावस ।

चातक मोर चकोर शोर कर दामिन रूप दुरावत ।

पावस की घन घटाओं का वियोगिनी गोपिकायें भीषण रूप में अवलोकन करती हैं। वे ऐसा अनुभव करती हैं मानो कृष्ण के मथुरा चले जाने के कारण बादलों ने उनके ऊपर चढ़ाई कर दी है-

देखियत चहुं दिसि तै घनघोरे।

मानों मत्त मदन के हथियन बलकरि बन्धन तोरे।

कारे तन अति चुवत गण्ड मद बरसत थोरे थोरे।

रुकत न पवन महावत है पै मुरत न अंकुस मोरे।

गोपियां बादलों को कभी मत्त हाथियों के रूप में देखती हैं तो कभी अपने प्रियतम कृष्ण की अनुहारि देखती हैं -

आजु घनस्याम की अनुहारि ।

उनै आए सांवरे ते सजनि देखि रूप की आरि।

इन्द्र धनुष मनो नवल बसन छवि दामिन दसन विचारि।

जनु बग- पांति माल मोतिम को चितवहिं पाइ निहारि ।

भ्रमरगीत में विरह की परिणति होती है। वह तो सभी स्थितियों की रंगस्थली है। कहीं आत्म समाधान, कहीं 'ऊधो लहनो अपना ही पायो' में भाग्यवाद आदि सभी कुछ दिखाई पड़ता है।

शुक्ल जी ने गोपियों के वियोग पर अस्वाभाविकता का प्रश्न चिन्ह लगाया है, पर वह असमीचीन है, क्योंकि गोपियों की भी अपनी मर्यादा है। आर्यपध की वे पथिक है। राधा के बन्धन और धैरु की बात कही गई है। राधा को अपयश के भय से उनकी मां उसे कृष्ण के साथ जाने से रोकती हैं- उनका प्रणय व्यापार कलंक की वायु पर तैरने लगा है-

कहा कहौं सुन्दर घन तौसौं ।

धैरा यहै चलावत घर- घर श्रवण सुनत जिय सोसौं।

पर मन ही मन राधा प्रार्थिनी है कि-

राधा विनय करति मन ही मनं सुनहु स्याम अन्तर के जामी।

माता पिता कुल कानिहि मानत तुमहिं न जानत हैं जग स्वामी।

कृष्ण भी मर्यादाहीन जीवन के पक्षपाती नहीं थे। तभी तो गोपियों को प्रातः होने से पूर्व ही घर विदा कर देते थे। प्रीति के स्पष्टीकरण में गोपियों के आगे लोक लज्जा की दीवार आती है, वे उद्धव से अपने प्यार को गुप्त रखने की प्रार्थना करती है-

गुपुत मते की बात कहौ जनि कहुं काहू के आगे।
कैं हम जान कै तुम ऊधो इतनी पावैं मांगे।

गोपियां वियोगिनी है, सीता के समान ही उनके अन्तस में भी एक कसक है, एक टीस है, पर भेद इतना है कि वे परकीया है। परकीया नायिका होने के नाते गोपियां प्रत्यक्ष रूप से अपनी प्रीति का दावा नहीं कर सकतीं। प्रियतम का क्षणिक संयोग उनके लिए सौभाग्य की वस्तु के साथ अलभ्य है। यह बड़ी बाधाओं के बाद प्राप्त हुआ है, इसमें प्रियतम का क्षणिक वियोग उनके लिए जीवन का सबसे बड़ा संकट है। राक्षसों से घिरे घिरे हुए लंका- निवास की अवधि में सीता राम के प्रेम- कवच से आरक्षित तथा स्वकीयात्व की भावना से आश्वस्त थीं, पर गोपियों को यह विश्वास कभी मिला ही नहीं। संयोग में दर्शन लाभ संभाव्य था, वियोगावस्था में वह भी समूल नष्ट हो गया। गोपियों का वियोग स्वाभाविक होने के साथ ही साथ वह अथाह समुद्र है, जिसमें उद्धव जैसे ज्ञानी भी थाह नहीं पा सके ।

स्वप्रगति परीक्षण

1. सूरदास के वियोग वर्णन में कृष्ण के मथुरा गमन के बाद गोपियों की भावनाओं का तात्पर्य केवल विप्रलम्भ श्रृंगार से है। (सत्य/असत्य)
2. गोपियां कृष्ण के संयोग के दौरान प्रकृति से कोई दुख नहीं अनुभव करती थीं। (सत्य/असत्य)
3. सूरदास के वियोग वर्णन में गोपियों के दुख और पीड़ा का कारण मुख्य रूप से कृष्ण से दूर होने की अवस्था है। (सत्य/असत्य)

4. सूरदास के साहित्य में वियोग का प्रारम्भ कभी भी विप्रलम्भ वात्सल्य से नहीं होता। (सत्य/असत्य)

9.5 सूरदास के श्रृंगार वर्णन

आचार्यों ने श्रृंगार के दो पक्ष स्वीकार किये हैं- संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार। सूरदास ने अपने काव्य में श्रृंगार के दोनों पक्षों का उद्‌घाटन बड़ी कुशलता से किया है। उन्होंने श्रृंगार को भक्ति रस से परिपुष्ट बनाया है।

संयोग श्रृंगार

सूर के संयोग श्रृंगार के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं "सूर संयोग वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है, प्रेम संगीत में जीवन एक चलती गहरी धारा है, जिसमें अवगाहन करने वाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कुछ दिखलाई नहीं पड़ता है।"

सूर के संयोग श्रृंगार के आलम्बन राधा और कृष्ण हैं। राधा और कृष्ण का प्रथम मिलन कवि ने बड़े ही नाटकीय तरीके से कराया है। कृष्ण राधा को देखते हैं और राधा कृष्ण को और फिर दोनों के नेत्र मिल जाते हैं-

"खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
कटि कछनी पीताम्बर बांधे, हाथ लिए भौंरा चक डोरी ।।
औचक ही देखी तहं राधा, नैंन विशाल भाल दिये रोरी ॥
सूर स्याम देखते ही रीझै, नैन नैन मिल परी ठगौरी ।।"

कृष्ण बहुत चतुर और छलिया है, वह राधा के सहज और भोले सौन्दर्य को देखकर उसे फुसलाने का प्रयास करते हैं-

"बूझत स्याम कौन तूं गोरी।
कहां रहति काकी है बेटी, देखी नहीं कहूं ब्रज खोरि ॥

काहे को कम ब्रज तन आवत, खेलत रहत अपनी पौरी।
श्रवनन सुनत रहत नन्द ढोटा, करत रहत दचि माखन
चोरी ।।
तुम्हारो कहा चोरि हम लैहैं खेलन चलहु संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमणि, बातन भुरई राधिका भोरी ।।"

कृष्ण ने राधा को बातों में भुला दिया। राधा और कृष्ण का मिलन नित प्रति होने लगा। राधा को भी कृष्ण से मिले बिना चैन न पड़ता। दोनों के हृदयों में कसक बढ़ने लगी। राधा को कृष्ण से गाय दुहाना बहुत अच्छा लगता। कृष्ण को भी एक दिन अच्छा मजाक सूझा-

"हरि सौं धेनु दुहावती प्यारी।
करति मनोरथ पूरन मन, वृषाभानु महरि की बारी ।
दूध धार सुखै पर छवि लागति, सो उपमा अति भारी।
मानहु चन्द कलंकहि धोवति, जहं- तहं बूंद सुधारी ।।

कृष्ण द्वारा राधा के मुख पर छोड़ी दूध की धारा कितनी सुन्दर व्यतीत होती है? प्रेम का यह धागा कितना लम्बा हो गया कि कृष्ण उसके बाल भी पकड़ने लगे-

"छांड़ि देहु मेरी लट मोहन।"

ग्रीष्म लीला के अवसर पर अन्य सखियां राधा से कहती हैं कि 'तू धन्य है क्योंकि कृष्ण के निकट रहती है' पर राधा भेद नहीं देती-

"राधिका कहि अब सांची।"
सूरदास राधिका सयानी, रूप- रासि रस सांची।

चीर हरण प्रसंग में कृष्ण सभी गोपियों को परेशान करते हैं। कृष्ण स्नान करती हुई गोपियों की पीठ धोखे से आकर मलने लगते हैं-

"कैसे बने जमुना न्हात ।
नन्द को सुत तीर बैठों बड़ों चतुर सुआन ।

हार तोरे, चीर फारें, नैन चले चुराई।

काल्हि धौखें कान्ह मेरो, पौठ मौंजा आइ ॥"

इस वर्णन से एक बात स्पष्ट है कि सूर का संयोग श्रृंगार वासनात्मय नहीं है मूलतः वे भक्त कवि है और भक्ति के परिप्रेक्ष्य में ही उनके श्रृंगार का मूल्यांकन होना चाहिये ।

9.6 भ्रमरगीत की परंपरा में सूर कृति भ्रमर गीत का स्थान

भ्रमरगीत सूरदास का एक अत्यन्त सरस, मधुर एवं उपालम्भ पूर्ण अंश है। सूरकृत भ्रमर गीत श्रृंखला की पहली कड़ी है। भ्रमरगीत का मुख्य आधार श्रीमदभागवत् है। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए यह एक सौद्देश्य रचना है। इसका नाम भी बड़ा ही सार्थक एवं सहेतुक है। सर्वप्रथम भ्रमर गीत की परम्परा में सूरकृत भ्रमरगीत का क्या स्थान है का विवेचन प्रस्तुत है -

भ्रमरगीत की परम्परा में सूरकृत भ्रमरगीत का स्थान :

भ्रमरगीत का प्रसंग सर्वप्रथम श्रीमद्भागवत् में देखने को मिलता है। हिन्दी में इस प्रसंग को सर्वप्रथम चित्रित करने का श्रेय महाकवि सूरदास को है पर भागवत के इस प्रसंग को अपना आधार बनाते हुए भी सूर ने इस में कुछ मौलिक परिवर्तन कर दिये हैं। भागवत में भक्ति के अपेक्षा ज्ञान की श्रेष्ठता का चित्रण किया गया है जबकि सूर ने ज्ञान पर भक्ति की विजय का वर्णन किया है। भागवत् में राधा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता सूर ने अपने भ्रमरगीत में राधा को स्थान दिया है। इस प्रकार सूर ने भ्रमरगीत की रचना में अपनी मौलिक सूझबूझ का परिचय दिया है। उद्धव की ज्ञानयोग प्रियता और गोपियों के प्रेम की अनन्यता दोनों को समान्तर रखकर ज्ञान योग पर प्रेम योग की विजय का

चित्रण किया है और अपनी भक्ति भावना का भी। सूरदास ने तीन भ्रमर गीतों की रचना की है। प्रथम भ्रमरगीत तो भागवत् का ही अनुवाद सा प्रतीत होता है यह दोहे चौपाईयों में है। दूसरा भ्रमरगीत पदों में है। इसमें पदों की संख्या के नाम पर केवल एक ही पद है। तीसरे भ्रमरगीत में पदों की संख्या सूरसागर के 4078 वें पद से प्रारम्भ होकर 4710 वें पद पर समाप्त होती है। सूर का भ्रमरगीत प्रधानतः व्यंग्य काव्य है। भ्रमर के माध्यम से गोपियों ने उद्धव पर, उनके निर्गुण निराकार ईश्वर पर, इनके ज्ञान योग पर, कृष्ण पर खूब व्यंग्य कसे हैं। भ्रमर की उपमा भी सर्वथा संगत एवं समचीन है। कृष्ण और उद्धव भी काले तथा भ्रमर भी रस लोलुप्त और कृष्ण भी। वस्तुतः सूर के भ्रमरगीत में ज्ञान और भक्ति, निर्गुण और सगुण तथा हृदय और मस्तिष्क का संघर्ष है। उसमें तर्क वितर्क के लिए अधिक स्थान नहीं है। सूर भ्रमरगीत में तो हृदय पक्ष की प्रधानता है। गोपियां अपने आपको अबला और मूर्ख कहती है तथा निर्गुण पन्थ को बहुत ही दुरूह और दुष्कर बताती हैं। गोपियों के प्रेम की प्रगाढ़ता को देखकर उद्धव का ज्ञान गर्व मिट जाता है। गोपियों के प्रेम पथ के पथिक बन जाते हैं।

सभी भ्रमरगीतों के अवलोकन अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है कि सूरकृत भ्रमरगीत की सी भावना की तीव्रता, संवेदना की मार्मिकता, अनुभूति की तीक्ष्णता तथा कलात्मक सौष्ठव अन्यत्र दुर्लभ है। वास्तव में भ्रमरगीत की कल्पना का मूल रूप भागवत् में उपलब्ध होते हुए भी, हिन्दी में इसे मौलिक रूप में प्रणयन करने का एक मात्र श्रेय महाकवि सूरदास को ही है। परवर्ती कवि सूर से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित होते रहते हैं। उद्धव के ज्ञान गर्व का उन्मूलन करना महाप्रभु वल्लभ द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के अनुसार प्रेमभक्ति की प्रतिष्ठापना सूर की मौलिकता है। सूर ने भागवत् के संक्षिप्त प्रसंग को विस्तृत एवं व्यापक भी बना दिया। निःसंदेह सूर का भ्रमरगीत एक सर्वश्रेष्ठ उपालम्भ काव्य है तथा भ्रमरगीत परम्परा में सूर का स्थान असन्दिग्ध रूप से मूर्धन्य है।

सूरकृत भ्रमर गीत अपनी अनेक विशेषताओं के कारण भ्रमरगीत परम्परा में विशेष स्थान रखता है। यह वह प्रसंग है जिसमें कवि की सहृदयता और वाकविदग्धता दोनों को समान महत्व प्राप्त हुआ है। यह वह रत्न है जिसकी आभा के समक्ष सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य नतमस्तक है। इसकी रचना सूरदासजी ने प्रेम भावना की प्रतिष्ठा और ज्ञान के खण्डन के लिये की है। सूर के भ्रमरगीत का प्रमुख उद्धेश्य सगुण का मण्डन और निर्गुण का खंडन है। तत्कालीन पीड़ित और त्रस्त जनता के निराश हृदय को आश्वस्त करने में निर्गुण पंथी ज्ञानमार्गी सन्त कवि तथा प्रेममार्गी सूफी सन्त कवि दोनों ही सर्वथा असम एवं अक्षम सिद्ध हुए थे। जनसाधारण अदृश्य निराकार, निर्गुण, ईश्वर की कल्पना से न सन्तुष्ट हुआ न आश्वस्त। फलतः निर्गुण का स्थान सगुण भक्ति ने ले लिया है। निर्गुण की पराजय का और सगुण की विजय उद्धव और गोपियों के माध्यम से भ्रमरगीत में सूर ने भली भांति चित्रित की है। उस युग में उत्पन्न 'ज्ञान बड़ा अथवा भक्ति' विवाद को सूर ने भ्रमरगीत में सुलझाने का प्रयास किया है। सूर ने अपना संपूर्ण कौशल, ज्ञान से बड़ी भक्ति सिद्ध करने में प्रकट किया है।

वस्तुतः भ्रमरगीत के प्रसंगानुसार उद्धव को बज में भेजने का श्रीकृष्ण का उद्देश्य भी यही था। उद्धव ज्ञानोपासक थे। उनको अपने ज्ञान का अत्यधिक गर्व था। वे भगवद भक्ति और भगवद प्रेम को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। उद्धव के नीरस निर्गुणवाद के अहंकार को गोपियों के सरस सगुणवाद द्वारा उन्मूलन करने तथा ज्ञान की उपेक्षा भक्ति की गौरव महिमा को स्वीकार करने के उद्देश्य से ही कृष्ण ने उद्धव को ब्रज में गोपियों को समझाने के लिए भेजा था। सूर ने लिखा है-

जदुपति आनि उद्धव रीति ।
प्रेम भजन न नेकु जाके जाय क्यों समुझाय ।
सूर प्रभु मन यह आनी ब्रजहि देहु पठाय।

सूर ने इस तथ्य का अनुभव किया था कि निर्गुण के नीरस उपदेशों से जगत का कल्याण सम्भव नहीं। जनता पर उनका प्रभाव कुछ नहीं पड़ता। जनता को तो सगुण साकार ही सहारा दे सकता है। वहीं उनको अपनत्व प्रदान कर सकता है। रूप, रंग, हाथ, पांव से विहीन केवल भावना प्रधान निर्गुण और निराकार जनता के लिए किस काम का। फलतः सगुण साकार बहम की स्वीकृति और निर्गुण ब्रहम के निषेध हेतु ही भ्रमरगीत की रचना सूर ने की है। वे इसमें पर्याप्त सफल भी हुये हैं। भाषा स्वरूप भ्रमरगीत का अन्तिम अंश इसका उदाहरण है जिसमें उद्धव अपनी पराजय स्वीकार कर लेते हैं और कृष्ण से बज लौट चलने का आग्रह करते हैं।

9.7 सूर काव्य की भाषागत विशेषताएं

सूर और भाषा- सूर काव्य के भाषापक्षीय अध्ययन से जो बात एकदम स्पष्ट हुई मिलती है वह है-भाषा की एक निष्ठा। सूर एकदम एक भाषानिष्ठ थे और यह भाषा थी 'बज' जिसको स्वयं कवि ने, तत्कालीन मुसलमानों और जनसमाज में प्रचलित नाम 'भाषा या भासा' कहकर पुकारा है। 'सूरदास सोई हे पद भाषा करि गाई।' निःसंदेह सूर न तो कबीर की भांति घुमक्कड़ थे और न तुलसी की भांति दो भाषाओं के प्रयोगकर्ता, न उनमें केशव वाला, संस्कृतीय पांडित्य-मोह था और न विद्यापति वाला भाषा-विवाद। दूसरी ओर, 'सूर की जन्म भूमि' (साही), साधना क्षेत्र (गोघाट) तथा उपासना-क्षेत्र (पारसौली) तीनों ही केन्द्रीय बज प्रदेश में थे। दूसरे, स्वामी वल्लभाचार्य और अष्टछापीय प्रभाव, श्रीनाथ मंदिर में कीर्तनकार के रूप में रोज नए-नए पदों का सृजन एवं समकालीन काव्य साहित्य क्षेत्र में बजभाषा का दिन-प्रतिदिन बढ़ता हुआ प्रयोग भी सूर को ब्रजभाषोन्मुखी बनाने में सहायक रहे होंगे। तीसरे, सूर काव्य का प्रधान-वर्ण्य विषय-कृष्ण-कथा और लीला-गायन भी एकदम बज से संबंधित था। निःसंदेह इन्हीं कारणों से सूर ने ब्रजभाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था।

सूरकाव्य की भाषा के 3 रूप- सूर मूलतः भक्ति कवि हैं और उनके काव्य में भक्ति का अजस्त्र स्रोत आद्योपांत प्रवाहित हुआ मिलता है। इस प्रवाह की 3 धाराएं एकदम स्पष्ट हैं जिनके आधार पर इनकी भाषा के भी 3 स्पष्ट रूप देखे जा सकते हैं-1. भावात्मक भाषा, 2. विवरणात्मक भाषा तथा 3. कूटात्मक भाषा। भावात्मक भाषा को ही इसको मूल भाषा कहना चाहिए। यह अधिकांशतः उन स्थलों पर है जो एकदम भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी है। कवि की भावुकता, भाषा की प्रवाहशीलता, स्वाभाविकता, संगीतमयता और काव्यात्मकता आदि इन्हीं अवसरों पर प्रस्फुटित हुई है। विवरणात्मक भाषा मुख्यतः कथा प्रधान और दार्शनिक स्थलों पर मिलती है। 'सूरसागर' में आयी शुक्र, परीक्षित, जय-विजय, ध्रुव जड़भरत, नारद, इन्द्र अहिल्या, अम्बरीष तथा च्यवन आदि की विविध कथाएं विनय-पद और दार्शनिक स्थापनाओं के परिवादक स्थलों पर मुख्यतः यही भाषा-रूप प्रयुक्त हुआ मिलता है। स्थूलता, नाम गणना, इतिवृत्तात्मकता आदि इस भाषा की सामान्य विशेषताएं हैं। कूटात्मक भाषा निःसंदेह कूट पदों विशेषतः 'साहित्य लहरी' में मिलती है। दुर्बोधता, क्लिष्पटता, चमत्कार वर्ण्य प्रधानता, लाक्षणिकता आदि इस भाषा की अपनी विशेषताएं हैं।

भाषा सौष्ठव

शब्द भंडार- भाषा की इकाई है-शब्द। सूर का शब्द-भंडार विपुल भी है और विविध भी। प्रमाण ? सूर ने एक ओर तो संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी और सर्वाधिक बज भाषा के शब्दों को ग्रहण किया है तो दूसरी ओर तत्सम, तद्भव और देशज सभी प्रकार के शब्दों को मुक्त मन से अपनाया है। "सूर के द्वारा प्रयुक्त हिन्दी शब्द कुछ तो समस्त हिन्दी-प्रदेश में प्रयुक्त हो चले हैं और कुछ ऐसे हैं जो केवल बज में ही प्रयुक्त होते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो सूरदासजी के समय में प्रचलित थे किन्तु कालांतर में उनका प्रयोग ब्रज प्रांत में तथा ब्रज भाषा-काव्य की परंपरा में न चल सका। इतना अवश्य है कि इन शब्दों का प्रयोग अपने स्थल पर बड़ा ही उपयुक्त है।" संस्कृत के (तत्सम) शब्द प्रायः सिद्धांत-निरूपण,

अप्रस्तुत योजना, विनय पदों और स्तुतियों में ही अधिक आए हैं। अन्य भाषाओं के शब्द यत्र-तत्र आए है। जहां तक प्रश्न है विदेशी शब्दों (अरबी, फारसी) का, "इन शब्दों का प्रयोग करते हुए उन्होंने इन पर ब्रजभाषा की कलई कर रखी है। यही कारण है कि शब्दों का स्वरूप हिन्दी के इतने अनुरूप हो गया है कि उनका विदेशीपन लक्षित ही नहीं होता। अर्थ की दृष्टि में इन शब्दों का सौन्दर्य अनुपम है।" इतना ही नहीं, कवि ने स्वयं भी अनेक शब्दों का निर्माण किया है। निम्न कुछ प्रमाण देखिए-

तत्सम शब्द- अम्बुज, निरालम्ब, वसुधा, अधोमुख, नृत्य, अजिर, अवज्ञा, खगपति इंदीवर, करम, गृह, दंपत्ति, पिनाक, पन्नग, रसना, राका, रजनीचर, संघात, हाटक आदि ।

तद्भव शब्द- अंकवारि, अंचरा, अधियारो, अनत, अमराई, औसर, कान्हा, दही, निठुराई, नेम, पखी, सुरति, रोग, हियरौ, अटारी, कुरुखेत, तमचूर, बछल, बिज्जु आदि।

देशज शब्द- करतूती, करनी, मूंड, औचट, खरिक, खोही, मोसों, छाक, डहकायो, देर, धारी, नैसी, बाई, बागरि, लठबांसी आदि ।

अनुकरणात्मक शब्द- अरबराइ, किलकित, खुनखुना, गहगहात, चचोरत, झकझोर, झकोरा, झंकार, झलमलात, झुनुक, डगमगाइ, भभकत, भहरात, हलबली आदि ।

अरबी शब्द- गुमान, दगा, असल, आदमी, उमरान, कुरबानी, गुलाम, फौज, मसखरा, हकीम, आब कंगूरा, गुनहगार, गुलामी, दर, परवाना, खाजार, मुजरा, यारी, सही, सहर, सिकार, सेहरो, हरामी, हजुर आदि ।

पंजाबी- महंगी, प्यारी, पा, बरिया।

पूर्वी- हमार, गोड, आपने।

कवि निर्मित- ज्योतिक, मसानी, उतजोग, उसाधा, बिचवाना, पुस्वली, निस्वै, भिनुसार, विसकर्मा, अनमारगी, तिपीसी आदि।

"कवि के शब्द प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता है-उसकी व्यापक संग्राहक शक्ति। पात्र और परिस्थिति के विचार से जिन शब्दों को उसने उपयुक्त समझा, उसका प्रयोग करने में उसे इस बात का संकोच नहीं हुआ कि वे किस श्रेणी अथवा किस उद्‌गम के हैं। विभिन्न उद्‌गमों के शब्दों का प्रयोग नवीन शब्दों की रचना तथा शब्दार्थ की व्यापकता में वृद्‌धि करके उसने भाषा की संपत्ति में जो योगदान दिया है, कदाचित उसके समक्ष उसका स्वतंत्र कवि के विशेषाधिकार से अधिक चिन्त्य नही रह जाता।" व्यापक धरातल, अर्थ-अधीनता, भावानुकूलता और अभिव्यक्ति सबलता प्रवाहमयता, समन्वयवादिता तथा सब मिलकर अद्‌भुत प्रभावोत्पादकता आदि सूर की इस भाषा में प्राप्त अन्य विशिष्ट गुण है।

मुहावरे लोकोक्तियां- अर्थ-व्यंजना को बढ़ाने, रोचकता और प्रभाव को उत्पन्न करने, कथन में चमत्कार और वाग्बैदग्ध्ता लाने एवं समाज-संचित अनुभव तथा मनोवैज्ञानिकता आदि का समावेश करने में मुहावरे लोकोक्ति सर्वाधिक सशक्त साधन होते हैं। सूर द्‌वारा प्रयुक्त मुहावरे अपनी बहुलता में नहीं केन्द्रीकरण में महत्वपूर्ण हैं। कवि ने अधिकांशतः बज-प्रदेश में प्रचलित मुहावरों का प्रयोग किया है और वह भी सबसे अधिक 'भ्रमरगीत' प्रसंग में। लगभग 90 प्रतिशत मुहावरे यहीं पर प्रयुक्त हुए मिलते हैं। डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया के मतानुसार तो केवल आंख से संबंधित ही 150-200 मुहावरे इस प्रसंग में प्रयुक्त हुए मिलते हैं।

सूर ने मुहावरों का प्रयोग मुख्यतः दो रूपों में किया है पीड़ित हृदय (गोपियो) के सहजोद्‌धार रूप में तथा उक्ति-वैचित्र्य के साधन रूप में। प्रथम प्रकार के मुहावरों में गोपियों का आक्रोश, खीझ, झुंझलाहट, डाह, प्रतिशोध, व्यंग्य, उपालंभ, पीड़ा, विवशता, व्याकुलता आदि मनःस्थितियां एकदम मर्म-स्पर्शी स्वाभाविकता के साथ मुखर हुई हैं तथा "सिर पर सौति हमारे कुब्जा, चाम के दाम चलावै,' 'काटे ऊपर लोन लगावत,' लिखि लिखि पठवत चीठी, 'जोइ जोइ आवत वा मथुरा तै' 'एक डार के तोरे'। हियरो सुलगावत, पालागौ, धूम के हाथी फिरति धतूरा खाए पढवे

पाठ, हाथ बिकानी, कन मिलयो, बोहित के काग, भौंहे तानत, लेन न देन तथा प्रेम की फांसी आदि भी इसी वर्ग के कुछ अन्य मुहावरे हैं।

उक्ति वैचित्र्य रूप से मुहावरों का सर्वाधिक प्रयोग उपहार-विनोद-विषयक पदों में हुआ है अथवा मुरली-प्रसंग में। खारे कूप को वारि, पवन को भुस भयौ, खोटो खायो, पोच कियो अंगुरी गहत गहयो पहुंचो, गूंगे गुर की दसा, दैनाब चढ़ावत तथा गांठि को लागत आदि इसी वर्ग के कुछ प्रमाण हैं।

लोकोक्तियां साधारणतः किसी सारगर्भित विचार, पूर्ण वाक्य अथवा परंपरागत कथा या सूक्ति के रूप में कथन-पुष्टि हेतु प्रयुक्त की जाती हैं। सूर ने बज प्रचलित लोकोक्तियों का प्रयोग तो किया ही है, नाना लोकोक्तियों का सृजन भी किया है जो आज भी 'सूक्ति-रूप' में मान्य हैं। साधारणतः ये तीन प्रकार की है-

1. प्रचलित लोकोक्तियां- एक पथ द्वै काज, दूध का दूध पानी का पानी, धान की गांव पयार ते जाने, एक म्यान दो खांडे, दाई आगे पेट दुरावति, बीस विरिया चोर, अपनो बोयो आप लोनिए आदि ।

2 * परिष्कृत लोकोक्तियां - स्वान पूंछ कोटिक लागै, सूधी कहुं न करि, अपनो दूध छाड़ि को फीवे खाने कूप को पानी, जोबन रूप दिवस दस ही को, कंचन खोइ कांच लै आए आदि।

3. स्व-निर्मित लोकोक्तियां- सूरी के पातन के बदले को मुकताहल दैहे, लौंडी की डौंडी, जगबाजी, प्रेमकथा सोई पै जानै, बीतो होइ, तुलसी को कोटि, नीम प्रगट भयो, नहीं उपजत धनिया, धान, कुम्हाडै, दिगम्बरपुर तै रजक कहा ब्यौ साइ, सुमेरू तृण और दुरावत, परेखो काको कीजै पाप कियो जिन दूजो आदि ।

एकदम सच तो यह है कि, "सूर के मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग भाषा की रूढ़ता के सहज माध्यम मात्र न होकर सशक्त अभिव्यंजना के प्रसाधन हैं। इनके द्वारा जहां सूर की भाषा-समृद्धि का परिचय मिलता है, वहीं उनके

सामाजिक अनुभव और सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिज्ञान होता है, इसलिए सूर की लोकोक्तियां और मुहावरे साहित्य में प्राप्त मुहावरों और लोकोक्तियों के सामान्य प्रयोग से सर्वथा भिन्न हैं।"

शब्द-शक्ति- काव्य में शब्द के 3 अर्थ होते हैं-वाच्य, लक्ष्य तथा व्यंग्यार्थ। इन्हीं के आधार पर शब्द की तीन शक्तियां मानी जाती है अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना। सूर ने यद्यपि प्रयोग तो तीनों का किया है किन्तु प्रधानता अंतिम दो की है। अमिधा का प्रयोग प्रायः विवरणात्मक पदों, स्फुट आख्यानों तथा स्तोत्रादि में ही किया गया है । सूर का । सर्वाधिक कौशल मुखरित हुआ। है-व्यंजना-प्रयोग में जिसका सर्वोत्तम स्थल है भ्रमरगीत। इसके साथ ही साथ बाल-लीला, मुरली, राधा-प्रेम, मानादि लीलाएं तथा कूट पदादि इसी प्रकार के कुछ प्रसंग हैं। एक उदाहरण देखिए-

"प्रकृति जोई जाके अंग परी।

स्वान-पूंछ कोटिक जा लागै सूधि न काहु करी।"

काव्य-गुण- काव्य-गुण 3 हैं, माधुर्य, ओज और प्रसाद। सूर काव्य में तीनों का ही समुचित प्रयोग मिलता है। माधुर्य का प्रयोग मुख्यतः रूप-वर्णन, श्रृंगारिक प्रसंगों, मुरली आदि में, ओज का वीरत्व सूचक प्रसंगों (यथा कालिया मर्दन, पूतना वध, गोवर्धन-धारणादि) तथा प्रसाद गुण विनय पदों, लीला तथा दार्शनिक स्थलों पर किया गया है।

अलंकार- सूर ने सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है, वह भी बहुतायत से । सायात-रहित होना, भाव-शबल्य में सहायक-रूप तथा स्वाभाविकता आदि इनके अलंकार प्रयोग की अपनी विशेषताएं हैं। कहीं-कहीं विशेषतः कूट पदों में चमत्कार-उद्रेक भी मिलता है। प्रमुखता है अर्थालंकारों की जिनमें सर्वाधिक मात्रा में तो साम्यमूलक अलंकार है। "उनके प्रियतम अलंकार उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा हैं जिनके सुन्दर और अतिशय कलात्मक प्रयोग में संभवतः कोई हिन्दी कवि इनके समकक्ष नहीं ठहर सकता ।.. सांगरूपक पर तो.. सूरदास का असाधारण

अधिकार है।" इसी भांति अनुप्रास प्रयोग से कवि ने यदि ध्वन्यात्मक सौन्दर्य और वातावरण का निर्माण किया है तो वीप्सा-प्रयोग से सच्ची भक्ति भावना और वक्रोक्ति से वाग्वैग्ध्य और व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति का परिचय दिया है। एकदम सच तो यह है कि, सूर काव्य में अलंकारों का अनंत वैभव विकीर्ण है। स्वाभावोक्ति में तो उनसे आगे विश्व का संभवतः कोई ही कवि बढ़ सका हो ।... अलंकार उनके काव्य में सहज समाविष्ट होकर उसकी चारुता को अतिशय प्रदान कर रहे हैं।" समग्रतः श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कह सकते हैं कि "सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है।"

कुछ दोष- कहीं-कहीं, प्रायः भावावेश या कविसुलभ उपेक्षा भाव के कारण सूर की भाषा में कुछ काव्य-दोष भी आए मिलते हैं। कई स्थानों पर कवि तुकप्रियता या मैत्री मोहवश लिग, कारक-चिन्ह या क्रिया-रूपों में नियमोल्लंघन कर गया है जिससे भाषा में च्युत संस्कृति दोष आ गया है यथा "विस्मय मिटि" में पुल्लिग विस्मय के साथ 'मिटि' स्त्रीलिग क्रिया का प्रयोग, सूल दिखावत, परसावत आदि का स्त्रीलिंग में प्रयोग आदि। कहीं-कहीं विभक्ति का असंगत प्रयोग है। (यथा, 'अखियानि स्याम अपनी करी) तो कहीं ग्राम्यत्व का समावेश (यथा बांधन, गेरत, डहरि, भैनि, बूतै आदि के प्रयोग)। दृष्टिकूट पदों में क्लिष्टत्व और अप्रतीत्व दोष भी हैं। पुनरुक्ति इनका प्रधान दोष है। सूरसागर में न केवल प्रसंगों की अनेक आवृत्तियां हैं वरन उक्तियों, उपमाओं और पंक्तियों की भी पुनरावृत्तियां होती गई हैं।" इसी भांति कहीं कहीं अधिक पदत्व (यथा 'हृदय हरषित प्रेम गद्गद् मुख न आंवत बैन) यथा न्यूनपदत्व (यथा मुख छवि कहौं कहां लगि गाई' पद) एवं अश्लीलत्व (यथा सुरति-बर्जन-प्रसंगों में) काम चेष्टाओं के अंतर्गत आदि भी देखे जा सकते हैं।

9.8 सार संक्षेप

सूरदास हिंदी साहित्य के भक्ति काल के महान कवि हैं, जिनकी रचनाएँ कृष्ण भक्ति और वात्सल्य रस का अद्‌वितीय उदाहरण हैं। उनका प्रमुख काव्य संग्रह 'सूरसागर' भगवान श्रीकृष्ण के बाल्य जीवन और उनकी लीलाओं का सुंदर चित्रण करता है। इसके अलावा, 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी' भी उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। सूरदास का काव्य सरल, सहज और हृदयस्पर्शी है, जो श्रोताओं को भक्ति और आत्मिक शांति का अहसास कराता है। उनका साहित्य भक्तिकाल की परंपरा से जुड़ा हुआ है, जिसमें भाव और भाषा का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है।

9.9 मुख्य शब्द

1. **भावुकता**:
    - अत्यधिक संवेदनशीलता या भावनात्मकता।
    - वह अवस्था जब व्यक्ति छोटी-छोटी बातों से भावुक हो जाए और उसमें भावनाओं का तीव्र संचार हो।
    - उदाहरण: कवि की रचनाओं में भावुकता स्पष्ट दिखाई देती है।
2. **संयोग**:
    - घटनाओं या परिस्थितियों का अचानक मेल होना।
    - ऐसा अवसर या परिस्थिति जो आकस्मिक हो।
    - उदाहरण: आज हमारा संयोग से पुराना मित्र मिल गया।
3. **वियोग**:
    - अलगाव या बिछड़ने की स्थिति।
    - प्रियजन या किसी महत्वपूर्ण चीज से दूरी या अलग हो जाना।
    - उदाहरण: प्रेमियों का वियोग सहना कठिन होता है।

4. **पावस**:
    - मानसून का समय या वर्षा ऋतु।
    - ऐसा समय जब प्रकृति बारिश के कारण हरी-भरी और प्रफुल्लित होती है।
    - उदाहरण: पावस ऋतु में धरती का सौंदर्य निखर जाता है।
5. **भाव**:
    - किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना के प्रति मन में उत्पन्न होने वाली भावना।
    - मूल्य, कीमत या स्थिति का भी संदर्भ।
    - उदाहरण:
        - "उसकी कविता में गहरे भाव थे।" (भावना के संदर्भ में)
        - "चावल का भाव आजकल बढ़ गया है।" (मूल्य के संदर्भ में)

9.10 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर:

1. असत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. हर सर्कल. (2024). *सूरदास की कठिन रही है साहित्यिक यात्रा.*
2. सीजी हब. (2024). *सूरदास जी के दार्शनिक विचार: बाल कृष्ण भक्ति.*
3. आरएसएसबी. (2023). *सूरदास: प्रेम और भक्ति का गान.*
4. एमडीयू रोहतक. (2020). *प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य.*

9.12 अभ्यास प्रश्न

1) सूर के काव्य में भाव पक्ष एवं कला पक्ष का सुंदर समन्वय हुआ है व्याख्या कीजिए।

2) सूरदास के श्रृंगार वर्णन पर एक निबंध लिखें।

3) भ्रमरगीत परंपरा में सूर के भ्रमर गीत का स्थान निर्धारित कीजिए।

इकाई - 10

तुलसीदास समीक्षात्मक

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 भाव पक्ष कला पक्ष

10.4 तुलसी के काव्य की महत्ता

10.5 तुलसी की भक्ति पद्धति

10.6 तुलसी की भाषा

10.7 तुलसी समन्वयवादी कवि

10.8 सार संक्षेप

10.9 मुख्य शब्द

10.10 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

10.11 संदर्भ ग्रन्थ

10.12 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

तुलसीदास भारतीय साहित्य और भक्ति आंदोलन के प्रमुख कवि हैं, जिन्हें रामचरितमानस के रचयिता के रूप में विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त है। उनकी रचनाएँ न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि समाजशास्त्रीय और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी गहन अध्ययन का विषय हैं। तुलसीदास ने अपनी कृतियों में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्श जीवन और चरित्र को प्रस्तुत करते हुए समाज को नैतिकता, कर्तव्य और प्रेम का संदेश दिया।

उनकी भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और जनसामान्य के लिए सुलभ थी, जिसने उनके काव्य को जन-जन तक पहुँचाया। रामचरितमानस जैसी रचना के माध्यम से उन्होंने न केवल संस्कृत के कठिन धार्मिक ग्रंथों को सरल अवधी में प्रस्तुत किया, बल्कि भारतीय समाज को एकता और धर्म के सूत्र में बाँधने का प्रयास भी किया।

इस इकाई में हम तुलसीदास की रचनाओं, उनकी काव्यगत विशेषताओं, उनके समय के समाज पर उनके प्रभाव और उनकी स्थायी प्रासंगिकता पर विचार करेंगे। उनकी लेखनी न केवल भक्ति और अध्यात्म का मार्ग प्रशस्त करती है, बल्कि समाज को नैतिकता और मानवता के पथ पर चलने की प्रेरणा भी देती है।

10.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझ सकेंगे:

- गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं 'विनय पत्रिका', 'कवितावली' और 'गीतावली' के प्रमुख पदों का अर्थ और भावार्थ।
- तुलसीदास के काव्य में भक्ति और धार्मिक दृष्टिकोण की प्रस्तुति।
- तुलसीदास की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा और अलंकारों का प्रभाव।
- तुलसीदास के काव्य के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों को समझना।
- तुलसीदास के काव्य के माध्यम से भारतीय समाज में धार्मिक और नैतिक मूल्यों की स्थापना को समझना।

10.3 भाव पक्ष कला पक्ष

भक्तिकाल की सगुण धारा की रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास को हिन्दी कविता का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है।

तुलसी का काव्य भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों से उत्तम है।

भाव- पक्ष

तुलसी के काव्य की भाव- पक्ष की विशेषताएं निम्न प्रकार हैं-

1. वस्तु विन्यास- तुलसीकृत रामचरित् मानस का कथानक 'आध्यात्म रामायण तथा वाल्मीकि रामायण' से लिया माना जाता है। जहां भी तुलसी ने इनमें परिवर्तन आवश्यक समझा है, वहां कलात्मकता का पूरा ध्यान रखा है। कथावस्तु के विकास और वर्णन विस्तार में भी तुलसी की असाधारण प्रतिभा और कला के दर्शन होते हैं।

2. भक्ति भावना- तुलसी की भक्ति भावना उनके काव्य के भाव पक्ष का प्राण है। तुलसी ने दास्यभाव की भक्ति को स्वीकारा है। वे कहते हैं -

"सेवक- सेव्य भाव बिनु,
भव न तरिय उर गारि।"

तुलसी की भक्ति का आदर्श चातक था। वे उसी प्रकार राम के भरोसे हैं जैसे 'चातक 'घन के भरोसे है-

"एक भरोसो, एक बल, एक आस विश्वास,
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास ।"

चातक का अनन्य प्रेम निष्ठा, पीड़ा, मान, प्यास, उत्कंठा, ध्यान, लगन, उनकी भक्ति का आदर्श था।

3. रस- व्यंजना- तुलसीदास के काव्य में सभी रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है। शान्त रस तो तुलसी काव्य में सर्वत्र ओत प्रोत है। विनयः पत्रिका का एक उदाहरण देखिये-

जन जुत विमल सिलनी झलकत नभ, प्रतिबिम्ब तरंग।
मानहु जग रचना विचित्र, विलासत, विराट अंग अंग।
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि, भरि भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानो राम भगति के पीछे।

कलापक्ष

तुलसी काव्य की कलागत विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. अलंका-र तुलसी के काव्य में अलंकार प्रियता देखी जा सकती है हालांकि वे अलंकारवादी नहीं हैं। तुलसी को अलंकार प्रदर्शन पसन्द नहीं है, बल्कि अलंकार उनके क्काव्य में सहज रूप से आये हैं। उपमा एवं व्यतिरेक का एक उदाहरण देखिये -

"पीपर पात सरिस मन डोला।" (उपमा)

"सन्त हृदय नवनीत समाना, कहा कविन पै कहै जाना।
निज परिपात द्रवै नवनीता, परिदुख सुसंत पुनीता।"
(व्यतिरेक)

2. चित्रात्मकता- तुलसी के शब्द चित्र अनुपम हैं। वे पाठक के अन्त पटल पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं। सीता की असहाय स्थिति का एक चित्र देखिये-

"रघुकुल तिलक वियोग तिहारे ।
मैं देखो जब नाई जानकी, मनहुं विरह मरति मन मारे।"

3. शब्द और अर्थ का सामंजस्य- तुलसी के काव्य में शब्दार्थ का सुन्दर समन्वय है। लक्षणा शब्द शक्ति का एक सुन्दर प्रयोग देखिये-

"सत्य सराहि कहेउ बरू देना,
जानेहु लेइहि मांगि चबैना ।"

4. भाषा- तुलसी ने अवधी और बजभाषा में अपने काव्य की रचना की है। रामलला, नेहछु, बरबै रामायण, जानकी मंगल, पार्वती मंगल और रामचरित् मानस आदि रचनायें अवधी में लिखी गई हैं जबकि कृष्ण गीतावली, कवितावली और विनय पत्रिका आदि ब्रजभाषा में लिखी गई रचनायें हैं जबकि तुलसी ने भाषा के साधु प्रयोग का

पूर्ण ध्यान रखा है। अवधी और बज दोनों के व्याकरण के नियमों का पूर्ण ध्यान रखा है।

5. छन्द योजना- तुलसी का छन्दों पर अवाध अधिकार था। इन्होंने प्रधान रूप में दोहा- चौपाई छन्दों का प्रयोग किया है। वैसे तुलसी साहित्य में कवित्त, सवैया, छप्पय आदि अनेक प्रकार के छन्द मिलते हैं। विनय पत्रिका में राग रागनियों पर आधारित पद हैं।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि तुलसी काव्य में कला पक्ष और भाव पक्ष अपने अत्यन्त प्रौढ़ रूप में हैं जो उन्हें एक अप्रतिम, प्रतिभाशाली, क्रान्तिदर्शी कवि सिद्ध करते हैं।

10.4 तुलसी के काव्य की महत्ता

रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास का जन्म जनश्रुति के अनुसार संवत् 1989 माना गया है। सर जार्ज ग्रियर्सन व आधुनिक शोधों के आधार पर भी यह स्पष्ट होता है। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। इनका विवाह दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ था। जनश्रुति के अनुसार तुलसी अभुक्त मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण माता- पिता द्वारा त्याग दिये गये थे। पांच वर्ष तक मुनिया नाम की दासी ने इनका लालन पालन किया।

दासी की मृत्यु के पश्चात् उसी अवस्था में इनके दीक्षा गुरु बाबा नरहरिदास की इन पर दया- दृष्टि हुई। इन्हों से तुलसी ने शूकर क्षेत्र या सोरों में रामकथा सुनी थी। शेष सनातन के पास काशी में 16-17 वर्ष रहकर वेद, पुराण, उपनिषद् रामायण तथा भागवत् आदि का गम्भीर अध्ययन किया और अन्त में काशी में रहने लगे। काशी में तुलसी का मान बढ़ता गया। राजा टोडरमल, रहीम और मानसिंह तुलसी के अन्यत्र मित्र थे।

तुलसी की कृतित्व (रचनाएं)

पं. रामगुलाम द्विवेदी व आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रन्थ में तुलसी के छोटे बड़े बारह ग्रन्थों को ही प्रमाणिकता दी है। नागरी प्रचरिणी सभा ने इन बारह ग्रन्थों को ही प्रामाणिक मानकर प्रकाशित किया है- दोहावली, कवित्त, रामायण, गीतावली, रामचरित् मानस, रामाज्ञा, प्रश्नावली, विनय पत्रिका, रामलला नहछु, पार्वती मंगल, जानकी वरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी और कृष्ण गीतावली । इन ग्रन्थों में प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से रामचरित् मानस और मुक्तक काव्य की दृष्टि से विनय पत्रिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाएं हैं।

"तुलसीदास लोक मंगल के नायक कवि थे।" अथवा

"तुलसी सच्चे अर्थों में लोकनायक थे।"

डॉ. हजारीप्रसाद ने तुलसीदास के विषय में विवेचन करते हुए एक स्थान पर लिखा है- "लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परम्परा, विरोधी संस्कृतियां, साधनायें, जातियां, आचार निष्ठा और विचार पद्धतियां प्रचलित थी। विद्यापति के गीतों में समन्वय की चेष्टा है और तुलसी भी समन्वयकारी थे।"

तुलसी भक्त, कवि पण्डित, सुधारक, लोकनायक, समन्वयवादी और भविष्य सृष्टा दृष्टा थे। उन्होंने अपने युग को परखा था। उस समय सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक अभावों को तुलसी ने भली भांति समझा था और उसी के अनुरूप उन अभावों को दूर करने के लिये उन्होंने उपाय भी सोचे थे। तुलसी ने यह माना कि युग के परिवर्तित होते ही युग धर्म बदल जाता है तो युग की मांग के अनुसार ही सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक गठन होना चाहिये। इसके लिये आवश्यकता इस बात की थी कि प्राचीन में जो श्रेयस्कर

और सुन्दर है, उसका समन्वय हो, इसलिये तुलसी एक श्रेष्ठ समन्वयकारी कवि थे। राम की शक्ति और सौन्दर्य से समन्वित रूप की स्थापना करके उन्होंने अत्याचारी शासकों से त्रसित हिन्दू जन मानस को ढांढस बंधाया। तुलसी के राम सर्वशक्तिमान, दीनबंधु और दुष्ट दमनकारी थे। उनके इस रूप को ग्रहण करके ही जनता में अत्याचार का विरोध करने की शक्ति उत्पन्न हुई, चाहे ये अत्याचार धार्मिक हो या सामाजिक अथवा राजनैतिक, भारतीय जनता को तुलसी के आश्वासन पर पूर्ण विश्वास हो गया कि प्रभु शीघ्र ही भारत में अवतरित होंगे और मानव रूप में हमारे सम्मुख आकर हमारे कष्टों को दूर करेंगे -

'जब जब होई धरम की हानी।
बाढ़हि असर अधम अभिमानी ।।
तब- तब प्रभु धरि विविध सरीरा ॥
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।"

तुलसी ने इन शब्दों द्वारा जनता के सम्मुख एक आदर्श स्थापित किया। मग्न हृदय से जनता को आश्वासन दिया। उन्होंने शोषण का, चाहे वह किसी प्रकार का हो सदैव विरोध किया।

तुलसी जगजीवन अहित, कबंहू कोउ हित जानि।
शोषक भानु कृपानु महि जलद एक धन दानि ।।

तुलसी का आदर्श केवल धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित न था, वह राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी आरूढ़ था। तुलसी ने राम राज्य की कल्पना की थी, उसमें शासक को भी अत्याचार करने का अधिक अवसर न था। तुलसी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है -

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।।

परन्तु उन्होंने दूसरी ओर ऐसे समाज की परिकल्पना की है जहां पर सुख शान्ति सर्वत्र है-

"दण्ड जवनि कर भेद, जहं नर्तक नृत्य समाज।
जीतहुं मनहि सुनिअस, रामचन्द्रन के राज ।।"

तुलसी ने ऐसे रामराज्य की कल्पना की है, जिसमें आदर्श राज्य की कल्पना की गई है। राम- राज्य साम्राज्यवादी (एकतन्त्रीय) शासक न था वरन् वह प्रजातन्त्रीय शासक ही था। तुलसी के अनुसार राजा का धर्म प्रजा पालन तथा प्रजा की सुख समृद्धि का ध्यान रखना था। तुलसी ने जिस राम राज्य की कल्पना की थी वह यह है-

(1)"दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज काहूं नहि व्यापा ।।
(2)"नहि दरिद्र कोउ दुःखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।"

इस प्रकार तुलसी ने जिस राम राज्य की कल्पना की है, वह अभावो से रहित है। उसमें ने तो कोई निर्धन है, न न दः दुःखी और न अज्ञानी है, सब प्रेम भाव से रहते हैं, कहीं कोई संघर्ष नहीं।

"सब नर करहि परस्पर प्रीति ।
चलहि स्वधर्म निरत श्रुती नीति।"

यह वह आदर्श है जिसके कारण तुलसी का सर्वाधिक प्रचार हुआ। तुलसी ऐसे कवि थे जिन्हें अशिक्षित और निम्नकोटि के व्यक्तियों से लेकर परम साधकों और काशी के प्रकाण्ड विद्वानों तक का सहवास प्राप्त हुआ था। उनका ब्रजभाषा, अवधी भाषा तथा संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार था। लोक और शास्त्र के इस सम्मिलित और यथार्थ ज्ञान ने ही उनके काव्य को इतना व्यापक और लोकप्रिय बनाया है। तुलसी सच्चे अर्थों में क्रान्तिकारी थे, उनके युग में जो अन्य कवि थे, वह केवल नर काव्यों का सृजन कर रहे थे। आश्रयदाताओं की प्रशंसा में ही वह अपनी सम्पूर्ण काव्य शक्ति का उपयोग कर रहे थे।

तुलसीदासजी इस प्रकार की झूठी प्रशंसाओं के विरोधी थे। उनकी विचारधारा थी -

"कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना।
सिर धुनि गिरा। लगि पछिताना ।।"

तुलसीदासजी व्यावहारिक आदर्शवादी थे। उनका आदर्शवाद उन्हें जनकल्याण की भावना से प्रेरित करता है। इसलिए उनका साहित्य जनता के हित में लिखा गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी लोकप्रियता निरन्तर बढ़ती चली गयी।

तुलसी की लोकप्रियता का दूसरा प्रबल कारण उनका उदारवादी दृष्टिकोण है। उस युग के समाज के अन्तर्गत जो ऊंच-नीच की भावना कार्य कर रही थी, तुलसी ने उनका विरोध किया। ब्राह्मणों ने उपासना, मुक्ति, वेदाध्ययन, भक्ति आदि का द्वार अछूतों और विधर्मियों के लिए बन्द कर रखा था। तुलसी ने उन सबके लिए द्वार खोल दिये। तुलसी की भक्ति वर्ग, जाति, धर्म आदि के कारण किसी का बहिष्कार नहीं करती। जो अति अधर्मी समझे जाते हैं उन व्याभीर, जमन, किरात, खस, स्वपच आदि के लिए भी उनका कहना है कि वे राम नाम लेकर मुक्त हो सकते हैं, यह उनके उदारवादी दृष्टिकोण का स्वरूप है।

तुलसीदासजी आदर्शवादी साहित्यकार है, परन्तु उनका आदर्श जनहित की कामनाओ प्रभावित था। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, "उत्तरकाण्ड में एक ओर राम राज्य की कल्पना, दूसरी ओर कलयुग की यथार्थता के द्वारा तुलसीदास ने अपने आदर्श के साथ वास्तविक परिस्थिति का चित्रण कर दिया है। किसी दूसरे कवि के चित्रों में इतनी तीव्र विषमता नहीं है।

तुलसी की दृष्टि बड़ी तीव्र थी, उन्हें लोकहित का बड़ा ध्यान था। उनका मत था, "जब तक लोक मर्यादा का पालन नहीं होगा, तब तक जन कल्याण असम्भव है।" इसी कारण तुलसी के काव्य में एक पंक्ति भी ऐसी नहीं मिलेगी,

जिससे मर्यादा का उल्लंघन हो। तुलसी व्यक्तिगत एवं समष्टिगत कल्याण की भावना से ओत प्रोत हैं।

तुलसी की लोकप्रियता के विषय में डॉ. प्रकाशचन्द गुप्त का कथन है- "तुलसी की दृष्टि व्यापक और सार्वभौमिक थी। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण स्वस्थ और जनवादी था। दृष्टि का यह व्यापक प्रसार हमें विश्व के दो चार ही लेखकों या कवियों से मिलता है। जीवन के रंग बिरंगे, विचित्र रूप को उन्होंने उनकी समग्र व्यापकता में देखा। हर्ष, शोक, उल्लास, विषाद्, जय पराजय के क्षण उनके काव्य में हम चिरकाल तक सुरक्षित पायेंगे। मनुष्य का, प्रकृति का, समाज का व्यापक दर्शन साहित्य में पूर्णरूप से प्रस्फुटित हुआ है।

स्वप्रगति परीक्षण

तुलसी के काव्य की महत्ता पर आधारित चार स्वप्रगति प्रश्न (खाली स्थान भरिये) इस प्रकार हो सकते हैं:

1. गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत् _____ माना गया है।
2. तुलसीदास की प्रमुख रचनाओं में से एक _____ है, जो रामकथा का विस्तार करती है।
3. तुलसीदास ने _____ में रामराज्य की कल्पना की, जिसमें समाज में कोई निर्धन या दुःखी नहीं होता।
4. तुलसीदास के काव्य में _____ का प्रमुख स्थान है, जो सामाजिक और धार्मिक समन्वय की आवश्यकता को उजागर करता है।

10.5 तुलसी की भक्ति पद्धति

(1) तुलसी की भक्ति का स्वरूप- भक्ति के प्राचीन स्वरूप को लेकर चलने वाले भक्त वेदशास्त्रज्ञ- तत्वदर्शी आचार्यों द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाओं के अनुयायी थे। उनकी भक्ति का मूलाधार भगवान का लोक धर्म रक्षक और लोकरंजक स्वरूप था। भक्ति का यह स्वरूप

नैराश्यमय नहीं वरन् इसमें शक्ति का बीज निहित है, जो किसी भी जाति को उठाकर खड़ा कर सकता है। तुलसी ने इसी भक्ति के सुधा रस से सींच कर मुरझाते हुए हिन्दू जीवन को फिर से हरा किया। इतना ही नहीं, तुलसी ने भगवान के लोक व्यापार मंगलमय रूप को दिखाकर आशा और शक्ति का अपूर्व संचार किया।

(2) तुलसी की भक्ति का प्रभाव- भक्ति की इसी धारा ने हिन्दू जनता को शक्ति दी और इसी भक्ति के सच्चे उद्‌गारों ने हमारी भाषा को प्रौढ़ता प्रदान की। लोक मानस के समक्ष राम स्वरूप को उपस्थित कर तुलसी ने उनकी अखिल जीवन- वृत्ति व्यापिनी कला को अभिव्यक्त करने वाली वाणी का स्फुरण किया और यह बतला दिया कि भगवान दूर नहीं। वह तुम्हारे जीवन में मिले हुए हैं। इस प्रकार तुलसी ने अपने 'मानस' द्‌वारा राम के चरित्र की जो शील शक्ति सौन्दर्यमयी धारा प्रवाहित की उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति में पहुंचकर भगवान के स्वरूप को प्रतिबिम्बित कर दिया। रामचरित्र की व्यापकता ने तुलसी की वाणी को घर- घर पहुंचा दिया। इतना ही नहीं उत्तरापथ के समस्त हिन्दू जीवन को राममय ही बना दिया।

(3) भारतीय भक्ति पद्‌धति- भारत में ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग अलग अलग हैं। फिर भी भारतीय परम्परा वाला भक्त न तो पारमार्थिक ज्ञान का दावा करता है और न अलौकिक सिद्‌धि या रहस्य का ही।

(4) ज्ञान- मार्ग से भक्ति मार्ग सरल- तुलसी के समय यद्‌यपि ज्ञान मार्ग का बोल-बाला था किन्तु तुलसी ने भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा सरल बताकर भक्ति मार्ग का प्रसार किया। उनके अनुसार भक्ति मार्ग सर्वसुलभ है। यह स्वाभाविक भी है-

निगम अगम साहब सुगम, राम सौंचिली चाह।

अबु असन अवलोकियत, सुलभ सबै जग माह ।।

किन्तु जो मन, वाणी एवं कर्म के सरल हैं वही इस पर चल सकते हैं-

सूधे मन सूधे बचन, सूधी सब करतूति।

तुलसी सूधी सकन विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति ।।

भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ बताते हुए वे लिखते हैं -

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्वान।

ग्यानवंत अपि सो नर, पशु बिनु पूंछ विधान ।।

एक अन्य स्थल पर भी वे लिखते हैं -

जो अस भगति जानि परहरहीं। केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं।

ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी ।।

इस प्रकार मानसकार ने सर्वत्र ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

(5) तुलसी की भक्ति- पद्धति- तुलसी भक्त हैं अतएव वे लोक में भगवान का दर्शन करते हैं। शुक्ल जी के मतानुसार भक्ति हृदय का एक भाव है। इसलिए जगत में भासित होने वाला स्वरूप ही हमारे प्रेम या भक्ति का आलम्बन हो सकता है। तुलसी राम के भक्त थे, इसलिये सम्पूर्ण विश्व को उन्होंने 'राममय' ही देखा है -

सिया राम मय सब जानी।

करहुं प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

सम्पूर्ण संसार को राममय बनाकर तुलसीदास जी निर्गुण एवं सगुण में भी अभेद उपस्थित कर देते हैं। उनके अनुसार निर्गुण ही भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर सगुण रूप में अवतरित होता है।

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा ।।

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुनहिं होई ।।

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जन हिम उपल विलग नहिं जैसे ।।

तुलसी के अनुसार अयोध्यावासी दशरथनन्दन राम ही ब्रह्म हैं। वे निर्गुण भी हैं, सगुण भी हैं और गुणों के धाम भी हैं-

व्यापक ब्रह्म अलखु अविनासी।

चिदानन्द निरगुन गुनरासी ।।

इतना ही नहीं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश उन्हीं की आज्ञानुसार सृष्टि की रचना करते हैं, उसका पालन करते हैं और उसका संहार भी करते हैं।

जाके बल विरंचि हरि ईसा।

पालत रहत सृजत दससीसा ।।

यद्यपि ब्रह्म के अनेक नाम हैं किन्तु तुलसी को राम का नाम ही अधिक प्रिय है। इसीलिये नारद के माध्यम से तुलसी राम से वरदान मांगते हुए लिखते हैं कि -

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका।

राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अद्य खग मन बधिका ।।

इतना ही नहीं, कुम्भज ऋषि के माध्यम से तुलसीदास राम से उनके सगुण रूप की ही भक्ति की याचना करते हैं-

यद्यपि ब्रह्म अखण्ड अनन्ता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता।

अस तब रूप बखनऊं जानउं। फिरि फिरि सुगन ब्रह्म रति मानउं ।।

(6) दास्यभाव की भक्ति- तुलसीदास इन्हीं सगुण साकार राम की भक्ति करते हैं। भक्ति मार्ग में ज्ञान की चरम उपलब्धि दैन्यभाव के आविर्भाव में है। एक भक्त के लिये सबसे बड़ा ज्ञान यही है कि वह अपने आराध्य को बड़े से बड़ा समझे और अपने को अधम से अधम। यही कारण कि तुलसी की भक्ति दास्यभाव की है। वे भगवान को अपना मालिक और अपने को उनका दास

समझते हैं। उनकी मान्यता है, बिना सेव्य सेवक भाव की भक्ति के मानव का उद्धार नहीं हो सकता-

सेवक- सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त विचारि ॥
जो चेतन कहं जड़ करइ्ग, जड़हिं करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनाथ कहि भजहिं जीव ते धन्य ।।

(7) प्रेम की अनन्यता- राम के प्रति तुलसी का प्रेम अनन्य है। राम के अतिरिक्त उनकी आस्था अन्य किसी पर भी नहीं। तुलसी का राम के प्रति यह प्रेम चातक और स्वाति का है। इसीलिए तुलसीदास जी लिखते हैं -

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास ।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ।।

भक्ति की अनन्यता में वे इतने तन्मय हैं कि सांसारिक नाते एवं रिश्तों को वे तिलांजलि देने में भी नहीं झिझकते। उनका स्पष्ट कथन है कि रामभक्ति में जो बाधक हैं उन्हें छोड़ देने में जीव को हिचकिचाना नहीं चाहिए -

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ।।

तुलसी सभी सांसारिक सम्बन्धों को तिलांजलि देकर स्वार्थरहित प्रेम करने का जीवमात्र को उपदेश देते हैं -

स्वारथ परमारथ रहित, सीता राम सनेहु।
तुलसी सो फल चारि कौ, फल हमार मत एहु ।।

(8) दैन्य की पराकाष्ठा- तुलसी ने दास्यभाव की जिस पद्धति का निरूपण किया है उसमें दैन्य भाव अर्थात् अपनी दीनता एवं हीनता के बोध की अनिवार्य आवश्यकता पर बल दिया है, क्योंकि

इस प्रकार जब भक्त को अपनी हीनता का बोध हो जाता है तो उसका अहं मिट जाता है। अहं मिटने से बहा को प्राप्त करने का मार्ग सुगम हो जाता है। इसलिए तुलसीदास अपनी ही हीनता का बखान करते हुए लिखते हैं-

मो सम कौन कुटिल खल कामी।

जेहिं तन दिये ताहि बिसरायो ऐसो नमकहरामी ।।

इसी प्रकार तुलसीदास पग पग पर अपने को नीच, पतित एवं पातकी कहते चलते हैं। अधम एवं कुटिल कहते भी वे नहीं हिचकते। उनके राम ही एकमात्र पूर्ण ब्रह्म हैं। इसलिये वे उन्हीं से सभी प्रकार के सम्बन्धों को जोड़ने का प्रयौस करते हैं-

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।

हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंजहारी ।।

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों।

मो समान पातकि नहिं पातकहर तोसों ।।

(9) समर्पण की भावना- इस प्रकार तुलसीदास अपने को नीच एवं अधम कहते कहते नहीं अघाते और मन को अकारण ही फटकारते रहते हैं -

विषया परनारि निसा तरुनाई, सुपाई पर यो अनुरागहिं रे।

जमके पहरू दुःख रोग वियोग, विलोकत हूं न विरागहिं रे।

ममता बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर महाभय भागहिं रे।

तुलसी विभिन्न माध्यमों से अपनी निन्दा करते जाते हैं और अपने मन को भयभीत भी करते जाते हैं ताकि वह सांसारिक प्रलोभनों से दूर रहे -

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चहु भाई रे।

नाहिं तो भव बेगारि महं परिहै, छूटत अति कठिनाई रे ।।

इस प्रकार अपनी निन्दा करते हुए तथा मन को लौकिक बन्धनों का भय दिखाकर भक्त को पूर्णरूप से अपने को समर्पित कर देना चाहिये -

पाहि राम ! राम पाहि !

रामभद्र रामचन्द्र, सुजस सुवन सुनि आयौ हों सरन।

10.6 तुलसी की भाषा

भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। यह वह माध्यम है जिसके द्वारा कवि अपने मनोगत भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। तुलसीदासजी का काव्य भाषा तथा शैली की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। काव्य भाषा में उचित शब्द प्रयोग, कथ्य के अनुकूल वाक्य-विन्यास, शब्दों का उपयुक्त चयन, अर्थ को ज्यादा प्रेषणीय बनाने के लिए लोकोक्तियों तथा मुहावरों का समुचित प्रयोग, नाद सौंदर्य और चित्रात्मकता तुलसी की भाषा की प्रमुख विशेषताएं हैं। मध्य युग का अन्य कोई कवि भाषा की इतनी बड़ी शक्ति लेकर काव्य के क्षेत्र में अवतीर्ण नहीं हुआ जितने कि तुलसीदासजी । वस्तुतः भाषा पर तुलसीदासजी का अद्भुत अधिकार था। उन्होंने अवधी, ब्रज जैसी भाषाओं में रचना की है। उनकी संपूर्ण रचनाओं में से श्रीकृष्ण गीतावली, कवितावली, विनय पत्रिका, दोहावली, गीतावली तथा वैराग्य संदीपनी ग्रंथ ब्रज भाषा में लिखे गये हैं एवं रामचरितमानस, राम लला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकीमंगल और रामाज्ञा प्रश्न अवधी भाषा के श्रृंगार है। तुलसी की इन दोनों भाषाओं के शब्द भंडार का अध्ययन करने के लिए उन्हें सुविधा की दृष्टि से पांच भागों में विभाजित किया जा सकता है-संस्कृत शब्दावली, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश शब्दावली, विदेशी शब्दावली, तत्कालीन प्रांतीय शब्दावली और हिन्दी की अन्य बोलियों की शब्दावली ।

संस्कृत शब्दावली - यद्यपि तुलसीदासजी ने अवधी और ब्रज भाषा में काव्य रचना की है

पर उनकी रचनाओं में संस्कृत की तत्सम शब्दावली भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। इस शब्दावली के दो रूप हैं। एक रूप तो वह है जहां कवि ने बज और अवधी के शब्दों का प्रयोग करते हुए संस्कृत के शब्दों का प्रयोग किया है और दूसरा वह रूप है जहां पूरे पद संस्कृत में लिखे गये हैं। जहां तुलसीदासजी ने पूरे के पूरे पदों को संस्कृत में लिखा है वहां ऐसा लगता है जैसे वे संस्कृत के आचार्य हों। हर कांड के प्रारंभ में तुलसी ने ऐसी संस्कृत शब्दावली का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ-

"वर्णनामर्थ संघानां रसनां छंदसामपि" अथवा "नमानीशमीशन निवाण रूपं ।" इतना ही नहीं कहीं-कहीं संस्कृत की यह पदावली अत्यंत सरल है, तथा कहीं-कहीं अपेक्षाकृत कठिन हो गयी है।

कहने का अभिप्राय यह है कि तुलसीदासजी ने संस्कृत पदावली का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया है। इसके अतिरिक्त तुलसीदासजी ने कुछ पदों का निर्माण हिन्दी संस्कृत की मिश्रित पदावली द्वारा किया है तथा उसमें भी संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता है जैसे- 'विनयपत्रिका' में 'श्री रामचंद्र कृपालु भज मन हरन भवभय दारुनं' या "जयति भरुदंजनामोद मंदिर नतग्रीवसुग्रीव दुखैक बंधो" आदि । तीसरे तुलसी की अन्य बज तथा अवधी की रचनाओं में भी पर्याप्त संस्कृत के तत्सम शब्द मिल जाते हैं, जैसे "भद्रदाता समा", "नौमि श्रीराम सौमित्रि साक", "सुमिरामि नर भूपं रूप", "वल्लभं", "दुर्लभं", "करुनाकरं", "भुवनैकभत्ता, जयति वैराग्य विग्यान-वारांनिधे नौमिजनक सुतावरं, भक्ति वैराग्य विग्यान समादान-दम नाम आधीन साधन अनेक आदि। इस तरह तुलसी के काव्यों में संस्कृत पदावली का व्यवहार स्रोत स्तुतियों में तो मिलता ही है, उनके अलावा भी तुलसी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों को सबसे अधिक मात्रा में अपनाया है।

पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि की शब्दावली- तुलसीदासजी के काव्यों में पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि की शब्दावली को भी पर्याप्त महत्व प्राप्त

है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि "प्रायः वीर, रौद्र या भयानक रस का निरूपण करते समय तुलसी ने उक्त भाषाओं के शब्दों का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में किया है क्योंकि इन भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों के अंतर्गत द्वित्व वर्णों का प्राधान्य होने से उक्त रसों के लिए ये शब्द बड़े सहायक होते हैं। इसलिए तुलसी ने भट्टा, घट्टा, चमकहि, दमंकहि, कटककट्ट, दपट्टहि खग्ग, अलुज्झि, जुज्फ, उर्वि, पब्बै, बिद्दरनि, उच्छलित, मर्दि, लक्ख, पक्खर, तिक्खन, अच्छ, कच्छ, विपच्छ, कुंभकरन्न, बोल्लहि, डोल्लहि, रघुप्पति, दसरथ्य, लक्खन, परब्बत आदि का प्रयोग किया है। इन शब्दों के कारण नाद-सौंदर्य के साथ-साथ ओज गुण एवं रौद्र तथा वीर रस की व्यंजना में बड़ी मदद मिलती है।"

विदेशी भाषाओं के शब्द- तुलसीदासजी ने जिस शब्दावली को अपनाया है उसमें विदेशी

शब्दों को भी पर्याप्त अनुराग प्रदान किया गया है। विदेशी शब्दों के अंतर्गत उर्दू तथा फारसी के शब्दों को भी लिया जा सकता है। ऐसे शब्दों के प्रयोग का कारण न सिर्फ तत्कालीन शासन व्यवस्था थी, वरन् यह भी था कि उस समय ये शब्द दैनिक जीवन में पर्याप्त काम में आते थे। ऐसी स्थिति में तुलसीदासजी ने यदि विदेशी शब्दों को अपना लिया और उन्हें अपनी अभिव्यक्ति की सुविधा के लिए उचित समझा तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द प्रयोग

देखिए-गरुर, गुमान, गनी, गरीब, साहेब, रहम, गरीब निवाज, गरीबी खसम, कलई, सीपर, सवील, जहान, कागज, बख्शीश, रुख, गरदन, ख्वार, शोर, हवाले, खलक, हल्क, कहरी, बहरी, दिरमानी, हबूब, फहम, हलाकी, मिसकीन आदि अनेक अरबी, फारसी एवं तुर्की शब्दों

का प्रयोग किया है। इनमें से कुछ शब्दों में देशी प्रत्यय लगाकर भी इन विदेशी शब्दों का व्यवहार किया गया है। जैसे दग-गाई मिसकीनता, अलायक, सरीकता, हलाकी आदि ।

प्रांतीय भाषाओं के शब्द- डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि तुलसी की रचनाओं में प्रांतीय भाषा की शब्दावली भी देखने को मिलती है। उनके शब्द है कि "तुलसी की रचनाओं में उत्तरी भारत में विभिन्न प्रांतों की भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जैसे-दारु। नारि (गर्दन), म्हाको, मेला, सारयो, पूजि, ठोकि-ठोकि खये राजस्थानी के शब्द मिलते हैं और जून, लाघे (प्राप्त किया) मूकिये (छोड़िये), मोंगी (मीन) आदि शब्द गुजराती के मिलते हैं। ऐसे ही वैसा (बैठा), पारा (सका), खटाई (निभती) आदि शब्द यदि बंगला के मिलते हैं, तो पंवारो, अवकलत आदि शब्द मराठी के भी मिल जाते हैं।"

हिन्दी की अन्य बोलियों के शब्द- तुलसी की भाषा में ब्रज तथा अवधी बोली की शब्दावली का व्यवहार तो पर्याप्त मात्रा में हुआ ही है और पर्याप्त सुंदरता के साथ हुआ है। किन्तु इनके अतिरिक्त हिन्दी की अन्य बोलियों के शब्द भी मिल जाते हैं। ऐसे शब्दों में सरल (सड़ा हुआ), दिहल (दिया) और घायल (दौड़ा), सूतल (सोया) राउर, रावरी, तहवां, लोइ, लोई (लोग) आदि भोजपुरी बोली के शब्द आते हैं, तेरी, मेरी तुम्हारा, हमारा, देखो, तपु किया, शरण आया, सोर मचा, लीजिये, कीजिए, गई, देना आदि खड़ी बोली के शब्द प्रयुक्त हुए हैं तथा सुआर, बागत (घूमत हुए) आदि बघेली तथा छत्तीसगढ़ी के शब्द भी मिलते हैं।

पूरबी हिन्दी बोली तथा छत्तीसगढ़ी आदि बोलियों के कुछ शब्द भी गोस्वामी जी ने प्रयुक्त किये हैं। बघेली के 'सुआर' का संकेत पहले ही आ गया है। एक दूसरा शब्द "बागत" लीजिए। बघेल में इसका अर्थ होता है-"घूमते हुए"। गोस्वामीजी ने इसी अर्थ का प्रयोग कई प्रसंगों में किया है। "मानस" में प्रयुक्त 'कुराई' (गढ्ढा) इस समय भी मध्यप्रदेश में प्रचलित है।

भोजपुरी के प्रति भी गोस्वामीजी तटस्थ नहीं थे। फलतः उन्होंने इसे भी सम्मानित किया। 'मानस' हृदय में डुबकी लगाकर यह भी कृतकृत्य हो गयी है। देखिए-'सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल । अस कहि कपि गगन पथ घायल।' 'रौरे और राउर' (आप, आपका) का प्रयोग तो बराबर हुआ है। राम के दरबार में जाने वाली 'पत्रिका' में भी भोजपुरी के 'सरल' (सड़ा हुआ) एवं 'दिहल' के प्रयोग हुए हैं। इसके साथ ही बंगला के कुछ शब्द भी देखिए 'सकाल' (सबेरा), और 'थांको' (ठहराना) का प्रयोग भी बाबाजी ने किया है। देखिए 'अवधेस के द्वारे सकारे गई' रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन विधि होई ।

देशज शब्दावली- गोस्वामीजी की भाषा के विशाल कोश में कुछ देशज शब्दों की उपनिधि भी सम्मानपूर्वक रक्षित है। इसी से उनकी रचनाओं में "डोंगरे", "डांग", "गोड़", "पेट", "खोरी", "टाटे", "हिसिषा", "डहकि", "बिसूरना", "लवाई", "ढहोरों", "ढारई", "मीट", "अवढर", "डावर", "कांकर", "जोइनि", "गुडी", "डसाई", "हेरी", "लुकाई", "झारि", "ठट्टा", "ठग", "टहल", "धमोई", "झोपड़ी" आदि अनेक देशज शब्द प्रयुक्त हुए हैं। ये शब्द भी बोलचाल में बराबर चलते हैं।

गोस्वामीजी ने ठेठ और तद्भव शब्दों को प्रचलनशीलता के अतिरिक्त इस कारण से भी प्रयुक्त किया है कि उनके द्वारा कहीं-कहीं किसी वस्तु स्थिति, अवसर या व्यक्ति की बड़ी ही नैसर्गिक अभिव्यक्ति होती है। कथन की सत्यता निम्न रेखांकित शब्दों से हो जाएगी-

पानि कठौता मरि लेड़ आवा।

X X X

कंद मूल फलः भरि भरि दोना।

X X X

आजु दीन्हि विधि बनि भलि मूरी।

X X X

शब्द शक्तियां- तुलसीदासजी ने अपनी भाषा को अधिक से अधिक आकर्षक तथा प्रेषणीयता से युक्त बनाने के लिए शब्द शक्तियों का प्रयोग भी किया है। लक्षणा और व्यंजना के प्रयोग में भी तुलसीदासजी को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। उदाहरण के लिए-लक्षणा के ये प्रयोग देखिए-'करत गगन को गेंडुआ जारिकै होयो, 'जाहिगें चाटि दिवारी को दीयो बयो लुनियतु" जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को' आदि पदों में लक्षणा का प्रयोग हुआ है। इसके साथ ही तुलसी में व्यंजना शक्ति का प्रयोग भी अत्यधिक मात्रा मे मिलता है। जैसे-'जेई वाटिका बसति तहं खग मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन' अथवा 'स्वांस समीर भेंट भई भौरेहु, तेहि मग पग न धरयो तिहुं पौन' कहकर सीता की विरह विदग्ध दशा की सुंदर व्यंजना की गयी है। ऐसे ही ससि ते सीतल मोको लागै माई री तरनि कहकर तुलसी ने गोपियों की विरहावस्था की मार्मिक व्यंजना की है।

लोकोक्तियां और मुहावरे- लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग भी तुलसी की भाषा की सफलता का द्योतक है। कहीं-कहीं तो इन्होंने इनका प्रयोग बहुतायत से किया है। ध्यान देने की बात यह है कि तुलसी ने इनके प्रयोग के लिए ज्यादा प्रयत्न नहीं किया है। जहां भी ऐसे प्रयोग आये हैं वहां वे भाषा की प्रेषणीय शक्ति को बढ़ाते हैं। स्पष्टीकरण के लिए 'धोबी कैसो कूकर, न घर को न घाट को घान को गांव पयार ते जानिय, खाती दीप मालिका ठठाइत सूप हैं" आपने चना चबाह हाथ चाटियत है" त्यों-त्यों होइगी गरुई ज्यों-ज्यों कामिरि भीजै" दूध को जरयो पियत फूंकि-फूंकि महयो हौ, जस काछिय तस चाहिय नांचा" तसि पूजा चाहिए जस देवता "सूझ जुआरिहि आपन दाऊ, बाजु सुराग कि गांडर तांती रहत न आरत के चित-चेतु, आदि लोकोक्तियों का प्रयोग मिलता है तथा 'जैहें बारह बाट" कहब जीभ करि दूजि" ठग के से लाडू खाये" पानी भरी खाल है" मुंह लाइ मूंडहि चढ़ी" मीजौ गुरु पीठ, हमहू कहब अब ठकुरसुहाती गालु

बड़ तौरे " खेत के से धोखे "छोटे बदन कहहुं बड़ी बातां" जीवन पाउंन पाछे धारही पुतरो बांधि है, पिपीलिकनि पंख लागो" तज्यौ दूध माखी ज्यों" कोढ़ में की खाज भौतबा भौर को हौ, बूझयो राग बाजी नीति" पाके छत जनु लाग अंगारू डासत ही गई बीत निसा' आदि अनेक मुहावरों का सुंदर एवं सजीव प्रयोग हुआ है।

अन्य विशेषताएं- तुलसी की भाषा का अध्ययन करने के बाद अब कुछ ऐसी विशेषताओं का उल्लेख भी जरूरी प्रतीत होता है, जिनके कारण उनकी भाषा अधिक मार्मिक, अधिक प्रभावशाली और ज्यादा अर्थयुक्त हो गयी है। ऐसी विशेषताओं में भावानुकूल शब्दों, वर्ण-मैत्री के आधार पर अर्थ चमत्कार की सृष्टि, सहज वाक्य-विन्यास, शब्द चयन की सटीकता, नाद-सौंदर्य और चित्रमयता को लिया जा सकता है। तुलसीदासजी ने जहां विषय की अनुकूल भाषा को समृद्ध किया है वहीं भावानुकूल शब्द सौष्ठव पर भी पर्याप्त ध्यान दिया है। गीतावली में कोमल भावों को ही प्रधानता दी गई है। अतः वहां माधुर्य गुणयुक्त पदावली का प्रयोग अधिक हुआ है। ओज गुणयुक्त पदावली, वीर, रौद्र और वीभत्स रसों के अनुकूल पड़ती है। कवितावली ओज गुण से युक्त रचना है। प्रसाद गुण प्रायः सभी रसों का उपकारक है। मानस में प्रसाद गुण पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। यद्यपि यह सही है कि रामचरित मानस में सभी भाषाओं के गुण मिलते हैं। इसका कारण यही है कि इस काव्य में सभी रसों की निष्पत्ति हुई है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने तुलसी की पद रचना विषयक एक अन्य विशेषता की ओर भी ध्यान दिलाया है। वे वर्ण-मैत्री के आधार पर अर्थ चमत्कार उत्पन्न करने की बात कहते हैं। उदाहरणार्थ ये पंक्तियां देखिए-

जौ पटतरिए तीय महु सीया। जग अस जुबति कहां कमनीया ।।

गिरा मुखर तुन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी ।।
सहज वाक्य विन्यास- अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद के भूपति लै निकरो।

- कवितावली

शब्द चयन- फटिक सिला मृदु विसाल, संकुल सुरतरु तमाल
ललित लता जाल हरति छबि बितान की।

- गीतावली

नाद सौंदर्य- कंकन किकिन नूपुर धुनि सुनि।

-मानस

चित्रमयता- सुभग सरासन नायक जीरे।

10.7 तुलसी समन्वयवादी कवि

गोस्वामी तुलसीदास की समन्वयवादी दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- गोस्वामी जी की भक्ति- पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है- उनकी सर्वागपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका समन्वय है। न उनका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से, धर्म तो उनका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं। योग का भी उसमें समन्वय है, पर उतने ही का जितना ध्यान के लिए चित्त को एकाग्र करने के लिए।"

तुलसी की समन्वयवादी विशिष्टताओं को हम निम्न प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं

1. भाव- क्षेत्र में समन्वय- तुलसी ने अपने समय के विभिन्न मत वादों और भावों को समन्यवादी स्वरूप प्रदान किया। वे भावनाएँ तुलसी साहित्य में आकर एकरूप और समान हो गई।

2. राम काव्य धारा और कृष्ण काव्य धारा में समन्वय- तुलसी ने अपनी प्रतिभा से रामकाव्य धारा तथा कृष्ण काव्यधारा में समन्वय स्थापित किया है। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि तुलसी स्वयं राम काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि थे, परन्तु फिर भी कृष्ण जी के चरित्र को लेकर 'कृष्ण गीतावली' की रचना की।

3. अलंकार योजना में समन्वय- तुलसी ने अलंकार योजना में समन्वय स्थापित करने के लिए अपने समय में प्रचलित अधिकांश अलंकारों का प्रयोग किया है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने अलंकारों को साधन रूप में अपनाया है, साध्यरूप में नहीं।

4. भावपक्ष और कलापक्ष- भावपक्ष और कलापक्ष का समन्वय ही उनकी सफलता का मूलमन्त्र है। तुलसी के काव्य में भावपक्ष जितना सबल है कला पक्ष भी उतना ही सशक्त है वे दोनों का समन्वय करके चलते हैं।

5. लोक भाषा और संस्कृत का समन्वय- तुलसी ने अपने समय में प्रचलित ब्रज और अवधी लोकभाषाओं में अपने काव्य की रचना की लेकिन संस्कृत पदावली का व्यवहार कर समन्वय करने का प्रयास किया।

6. निर्गुण और सगुण का समन्वय- तुलसी के युग में निर्गुण और सगुण का विवाद जोरों पर था। उन्होंने इस विवाद को यह कह मिटाने का प्रयास किया-

'सगुनहिं अगुनहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ।।'

उनकी मान्यता है कि राम सभी रूपों में प्रकट होते हैं। वे ही निर्गुण और सगुण, निराकार और सत्कार रूपों में प्रकट हो जाते हैं।

7. ब्राह्मण और शूद्र- तुलसीदास अभूतपूर्व समन्वयकारी थे। उन्होंने सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए वर्ण भेदों को स्वीकार किया लेकिन भक्ति क्षेत्र में सभी को समान स्वीकार किया। कैसा जबरदस्त समन्वय है वर्ण साम्य का कि वशिष्ठ और भरत भी निषादराज को अपने गले में लगा लेते हैं।

"भेटते भरत ताहि अति प्रीती। लोग सराहि प्रेम के रीती ।।"

8. कर्म, भक्ति और ज्ञान- इन तीनों का समन्वय ही जीवन में पूर्णता लाता है। तुलसी ने इसी कारण इन तीनों के समन्वय पर बल दिया है।

"प्रीति राम सौं नीति पथ, चलिए राग रिस जीति ।
तुलसी सतन के मते, इहैं भगति की रीति ।।"

9. वैष्णव और शैव शक्ति- तुलसी ने इन सम्प्रदायों के पारस्परिक संघर्ष को देखा और यही कारण है कि इनका समन्वय करने का प्रयास किया है। वे कहते हैं-

"संकार प्रिय मम द्रोही, मिव द्रोही मम दास ।
तो नर करहि कसप भर, घोर नरक महु बास।"

10. भाग्य और पुरुषार्थ- तुलसी के युग में कोई भाग्यवाद को प्रधानता देता था कोई पुरुषार्थ को। दोनों को स्वीकार करते हुए उनके समन्वय का प्रयास करते हुए वे लिखते हैं-

"शुद्ध अरु अशुभ करम अनुहारी। ईनु देइ फल हृदय विचारी। करड़
जो करम पाइ फल सोई। निगम नीति असि कह सब कोई ।।"

11. राजा और प्रजा का समन्वय- तुलसीदास ने रामचरित मानस में राजा और प्रजा के संबंधों का समन्वय करने का प्रयास किया है। उस समय राजभक्त प्रजा धर्म पालन में लगी थी और राम भी अपनी प्रजा को गौरव प्रदान करते थे-

सुनहु सकल पुरजन मत बानी। कहौ न कछु ममता डर आनी।
नहिं अनीति नहिं छु प्रभुताई। सुनहु करहु नो तुम्हें सुहाई।

जो अनीति कछु भारवौ भाई। तौ मौहे बरजहु भय बिरसाई।"

12. व्यक्ति और परिवार का समन्वय- तुलसीदास ने पारिवारिक कलहों को दूर करने के लिए व्यक्ति और परिवार का समन्वय किया है। उन्होंने दशरथ, राम, भरत, कौशल्या, सुमित्रा आदि के माध्यम से पारिवारिक जीवन का महत्व आदर्श प्रस्तुत किया है।

13. नर और नारायण का समन्वय- तुलसी ने अपने आराध्य को नर और नारायण अर्थात् मानव और ब्रह्म के रूप में चित्रित किया है। इस तरह तुलसी ने नर और नारायण का सम्बन्ध स्थापित किया है। उदाहरण

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै विधि नाना ।।

14. काव्य रूपों में समन्वय- तुलसी ने अपने काव्य में रस, ध्वनि, अलंकार रीति और वक्रोक्ति का समन्वय सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक दोनों ही रूपों में किया है।

10.8 *सार संक्षेप*

तुलसीदास हिंदी साहित्य के महान कवि और संत थे, जिनकी रचनाएँ भारतीय साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। उनका जीवन संघर्षों से भरा था, लेकिन उनका विश्वास राम के प्रति अडिग था। उनका जन्म 1532 ईस्वी में उत्तर प्रदेश के बांदा जिले के राजापुर गांव में हुआ था, और वे एक ब्राह्मण परिवार से थे। तुलसीदास की प्रमुख रचनाओं में "रामचरितमानस," "हनुमान चालीसा," "गीतावली," और "विनय पत्रिका" शामिल हैं। "रामचरितमानस," जो संस्कृत के रामायण का हिंदी रूपांतरण है, न केवल धार्मिक दृष्टि से, बल्कि साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यधिक मूल्यवान है। इस रचना में भगवान राम के

जीवन के विभिन्न प्रसंगों का वर्णन किया गया है, जिसमें उनके आदर्श और जीवन के सिद्धांतों को प्रस्तुत किया गया है। तुलसीदास का काव्य भक्ति आंदोलन से गहरे जुड़ा हुआ था, और उन्होंने रामकथा के माध्यम से लोगों में धार्मिक और नैतिक जागरूकता फैलाने का प्रयास किया। उनका काव्य समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने की दिशा में महत्वपूर्ण था, जिसमें भक्ति, नैतिकता, और आदर्शों की महिमा को प्रमुखता दी गई। तुलसीदास की काव्यशक्ति अद्वितीय थी; उन्होंने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी और सरल, सहज, तथा प्रभावी भाषा में गहन धार्मिक एवं दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत किया, जो लोकभक्ति के साथ-साथ उच्च साहित्यिक मानकों को भी छूते हैं।

10.9 मुख्य शब्द

1. **सेवक**:

   सेवक वह व्यक्ति होता है जो सेवा करता है, यानी किसी के कार्य को करने या उनकी सहायता करने के लिए समर्पित होता है। यह स्वामी के प्रति समर्पण और आज्ञाकारिता का प्रतीक है।

2. **प्रेम**:

   प्रेम का अर्थ है सच्चा और निःस्वार्थ भावनात्मक जुड़ाव। यह एक ऐसा शुद्ध भाव है जो बिना किसी स्वार्थ के दूसरे के प्रति अपनापन और स्नेह दिखाता है।

3. **चातक**:

   चातक एक पक्षी है जिसे प्रतीकात्मक रूप से अतृप्त प्रेम और समर्पण का प्रतीक माना जाता है। चातक केवल स्वाति नक्षत्र में गिरने वाली वर्षा की बूंदों को पीने की प्रतीक्षा करता है। इसे प्रतीकात्मक रूप से व्यक्ति की उच्च आकांक्षाओं और धैर्य का प्रतीक भी माना जाता है।

4. दास्यभाव:

दास्यभाव भक्त और भगवान के बीच का एक संबंध है, जिसमें भक्त खुद को भगवान का सेवक मानकर उनकी सेवा करता है। यह भक्ति का वह रूप है जिसमें आज्ञाकारिता, श्रद्धा, और निःस्वार्थता प्रमुख होती है। उदाहरण के लिए, हनुमान जी का श्री राम के प्रति दास्यभाव।

10.10 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. 1989
2. रामचरित मानस
3. रामराज्य
4. समन्वय

10.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. कुमार, श. (2022). *तुलसीदास के काव्य में भक्ति का दर्शन*. नई दिल्ली: साहित्य निकेतन.
2. सिंह, र. (2021). *तुलसीदास की रचनाओं का साहित्यिक मूल्य*. इलाहाबाद: साहित्य साधना.
3. शर्मा, प. (2023). *विनय पत्रिका और कवितावली: तुलसीदास की भक्ति काव्य की समीक्षा*. कानपुर: हिंदी पुस्तकालय.
4. यादव, र. (2020). *गीतावली में समाहित भक्ति का संदेश*. लखनऊ: काव्य प्रकाशन.

10.12 अभ्यास प्रश्न

1) तुलसी के काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2) तुलसी के काव्य की महत्व पर एक लेख लिखिए।

3) तुलसी की भाषा का निरूपण कीजिए।

4) तुलसी समन्वयवादी कवि थे इस कथन की विवेचना कीजिए।

इकाई - 11

विद्यापति

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 विद्यापति के काव्य में गुण एवं शक्तियां

11.4 विद्यापति अलंकार योजना प्रतीक एवं बिंब

11.5 विद्यापति गीति काव्य की विशेषताएं

11.6 विद्यापति के श्रृंगार तत्व का वर्णन

11.7 सार संक्षेप

11.8 मुख्य शब्द

11.9 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

11.10 संदर्भ ग्रन्थ

11.11 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

"विद्यापति" मैथिली साहित्य के महान कवि और संस्कृत के विद्वान थे, जिनकी रचनाएँ न केवल उनकी अद्वितीय काव्यशक्ति का परिचायक हैं, बल्कि उन्होंने प्रेम, भक्ति, और संस्कृति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। विद्यापति की काव्य रचनाएँ विशेष रूप से श्रृंगारी प्रेम और भगवान शिव, देवी पार्वती तथा राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति को केंद्रित करती हैं। उनकी रचनाओं में प्रेम की गहरी अभिव्यक्ति मिलती है, जिसमें भक्तिपंथ और शुद्ध प्रेम का संदेश दिया गया है। विद्यापति का साहित्य मैथिली और संस्कृत दोनों भाषाओं में रचा गया है, और उनकी काव्यशैली की सरलता तथा भावों की गहराई आज भी पाठकों को आकर्षित करती है। "विद्यापति" नामक इस इकाई में हम उनके काव्य की

विशेषताओं, उनके समय के सामाजिक और धार्मिक परिपेक्ष्य को समझेंगे और उनके द्वारा रचित प्रमुख काव्य रचनाओं का विश्लेषण करेंगे। विद्यापति का साहित्य न केवल मिथिला क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहर का हिस्सा है, बल्कि यह भारतीय साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जो जीवन के हर पहलू को सुंदरता और भावनात्मक गहराई के साथ प्रस्तुत करता है।

11.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- विद्यापति के काव्य की विशेषताओं और उनकी रचनाओं के प्रमुख विषयों को।
- विद्यापति की शृंगारी प्रेम, भक्ति, और दर्शन के तत्वों को उनके काव्य में कैसे प्रस्तुत किया गया है।
- विद्यापति के काव्य का मिथिला क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहर में योगदान।
- उनके काव्य में प्रेम, भक्ति, और सौंदर्य के भावों का गहराई से विश्लेषण।
- विद्यापति के समय के सामाजिक और धार्मिक परिपेक्ष्य को उनके काव्य में किस प्रकार उजागर किया गया है।

11.3 विद्यापति के काव्य में गुण एवं शक्तियां

ओज गुण- शब्द योजना भाव लोक के निकट है तथा बिम्ब भी सारगर्भित अर्थ लिए है। उनकी भाषा ओज गुण से परिपूर्ण है तथा राजसी भावों का सजीव चित्रण करती है।

प्रसाद गुण- साधारण प्रसंगों, कथा वर्णनों आदि में प्रसादयुक्त शब्दावली का प्रयोग किया गया है जिसमें न समाप्त है और न ही कर्ण कटु शब्द व संयुक्ताक्षर-

नन्दक नंदन कदम्ब क तरू पर,

धिरे धिरे मुरलि बजाव।

समय संकेत-निकेतन बइसल,

बेरि-बेरि बोल पठाव ।।

माधुर्य गुण- माधुर्य व प्रसाद लाने के लिए कवि शब्दों को सघोष से अघोष और महाप्राण से अल्पप्राण कर लेते हैं- धिरे धिरे, अनुखन, उद्वेगल, मुरछाइल आदि शब्द इसी के उदाहरण हैं। शब्दों की द्विरुक्ति, सानुप्रासिकता, सानुनासिकता से माधुर्य की सृष्टि की गयी है।

व्यंजना शक्ति- कवि की भाषा ध्वनि व व्यंग को आप्लावित करती है। इन विशेषताओं से चमत्कार पैदा होता है तथा नायिका नायक की आपसी नोंकझोंक को सजीवता प्राप्त होती है-

कर धरू करू मोहे पारे,

देव मैं अपुरव हारे कन्हैया ।

सखि सब तजि चलि गेली, न जानू कौन पथ मेली

कन्हैया।

हत न जाएब तुअ पासे, जाएब औघट घाटे, कन्हैया ।

इन पंक्तियों में नायिका नायक को व्यंग्य के माध्यम से कामासक्त कर रही है, वह कहती है कि मैं निपट अकेली हूँ और विलम्ब होने पर पथ अज्ञात होने का बहाना भी चल जायेगा, अतः मेरे हाथ निःसंकोच थाम लो। मैं आज तुम्हें गलबहियों का अनुपम हार प्रदान करूंगी।

लक्षणा शक्ति- उपरोक्त उदाहरण में 'अपुरव हारे' में लक्षणा शक्ति से उपलब्ध लक्ष्यार्थ हमें व्यंग्य के अर्थ के पूर्ण लक्ष्य के समीप ले जाता है। अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शक्तियों का इस प्रकार

परस्परावलम्बी प्रयोग समूचे हिन्दी साहित्य में यदा-कदा ही मिलता है। उनके पदों में वाक्यों के अर्थ बाधित हों अथवा नहीं, लक्ष्यार्थ व व्यंग्यार्थ ही उनके प्रमुख लक्षण हैं। यहाँ दो अर्थ हैं प्रथम आसक्ति पक्ष द्वितीय भक्ति पक्ष। दोनों ही पक्षों में व्यंग्य समाहित है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. विद्यापति के काव्य में ओज गुण का प्रयोग शब्द योजना और भाव लोक के निकट चित्रण के लिए किया जाता है। (सत्य/असत्य)
2. विद्यापति के काव्य में प्रसाद गुण में कर्ण कटु शब्दों का प्रयोग किया जाता है। (सत्य/असत्य)
3. विद्यापति के काव्य में माधुर्य गुण के लिए शब्दों को सघोष से अघोष और महाप्राण से अल्पप्राण में बदला जाता है। (सत्य/असत्य)
4. विद्यापति की काव्य रचनाओं में लक्षणा शक्ति का प्रयोग केवल भक्ति पक्ष के लिए किया गया है। (सत्य/असत्य)

11.4 विद्यापति अलंकार योजना प्रतीक एवं बिंब

अलंकार-योजना- विद्यापति मूलतः श्रृंगारिक कवि है। श्रृंगार कविता में अलंकार प्रचुरता से समाविष्ट रहता है। उन्होंने अलंकार योजना के द्वारा अपनी रचनाओं को शिल्प विधान की दृष्टि से उल्लेखनीय बनाया है। सभी अलंकार उनकी पदावली में सहज ही दृष्टिगोचर होते है। यथा-

अनुप्रास- **कमल मिलल दल मधुप चलत घर,**
बिहग गहल निज ठामे।

यमक - **सारंग नयन, वमन पुनि सारंग सारंग तसु समधाने,**
सारंग उपर उगल दस पारंग, केलि करिथ मधु पाने।

उपरोक्त विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि भाषा, शब्द शक्ति, गुण, प्रतीक, बिम्ब, अलंकार योजना, नाद-सौन्दर्य व छन्द विधान में पारंगत

होने पर भी उन्होंने किसी भी तत्व को काव्य की आत्मा 'रस' पर कृत्रिम रूप से आरोपण कर दुराग्रहपूर्ण अति का उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया। काव्य उनके लिए अन्य कृतियों में साधन भले ही रहा हो किन्तु पदावली में साध्य ही था। लोकानुरंजन ही उनके कृतित्व में विशेष रूप से सजीव हो उठता है। उनकी रचनाएं न तो गम्भीरता के अथाह सागर की भाँति दुरुह व अगम्य हैं न ही भावना लोक में मुक्त विचरती हैं। उनके सम्पूर्ण सृजन पर दृष्टिपात किया जाये तो स्पष्ट होगा कि उनका काव्य मानवीय संवेदनायुक्त व संगीत-सौन्दर्य व लोक नृत्यों का अनूठा संगम है।

बिम्बात्मकता व प्रतीकात्मकता उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। इसी शिल्प गुण का निर्वाह करते हुए वह विभिन्न भावों को उद्घाटित करने हेतु प्रतीक-प्रद्धति का प्रयोग करते हैं।

कंचन ज्योति कुसुम परकास,
रतन फलव बेलि बढ़ाओल आस ।
तकर भूले देल दूधक धार,
फले किछुन हेरिए झनझनिसार ।।

उपरोक्त उद्धरण में कंचन-कुसुम, पानि दूधेक, रतन आदि शब्द प्रेम, अभिलाषा व भोग-विलास के प्रतीक बन गये हैं। वह अपनी सूक्ष्म कल्पना से विशेष पदार्थों को इस प्रकार अभिलष करते हैं कि बिम्ब सशक्त बनकर उभरता है। रूप चित्रण में वातावरण व देह सम्बन्धी सौन्दर्य का अवलम्बन करते है। शब्द योजना से अनुभूति साकार हो जाती है। वह भाव-आयोजन व रूप चित्रण दोनों के द्वारा बिम्ब की सृष्टि करते हैं।

11.5 विद्यापति गीति काव्य की विशेषताएं

विद्यापति के गीतिकाव्य की विशेषतायें- (1) डॉ. जगन्नाथ नलिन ने कहा है कि विद्यापति

पदावली मूर्छना भरे संगीत की रंगस्थली है एवं आत्मविस्मृत कर देने वाली अनूभूतियों का साधना मंदिर है। (2) विद्यापति के गीतों की परख के लिए निम्नांकित तत्वों पर ध्यान जरूरी है- (i) गेयता (ii) भाव प्रसार, (iii) प्रभाव सीमा ।

(i) गेयता- विद्यापति के गीत पूर्णतया गीतात्मक हैं। उनमें अपेक्षाकृत लय एवं स्वरताल है। उन्होंने कोमल कांत पदावली को मुख्यता प्रदान की है। जैसे-

अपूरब के बीहि आनि मालाजोल, लावनिसार ।

नाद सौन्दर्य के लिए उन्होंने सानुप्रास पदावली, शब्दों की पुनरुचि एवं गुण या क्रिया से सम्बन्धित शब्दों का प्रयोग किया है यथा- जयजय, भैरवी, असुर, भयाउनि, पशुपति, भामिनी, माया

(ii) भाव-प्रसार- विद्यापति की पदावली अपरिमित है। एक ओर उनके गीत भक्तिभाव की सात्विकता लिये हुए हैं दूसरी ओर श्रृंगार की माधुरी से मंडित है। एक ओर वीर भाव की ओजस्विता है, तो दूसरी ओर चमत्कारपूर्ण कौतूहल। दीनतापूर्वक आराध्य के चरणों में आत्म समर्पण सर्वत्र विद्यमान है। वे चाहे शिव की या दुर्गा मैया की शक्ति में तल्लीन हो आत्मसमर्पण सर्वत्र विद्यमान रहता है।

(iii) प्रभाव-सीमा (1) विद्यापति के गीतों की प्रभाव-सीमा विस्तृत है। विद्यापति के गीतों ने भक्त कीर्तनीय साधु, जीवन में लिप्त भोगी, विरक्त वैरागी, क्या नर क्या नारी सभी को प्रभावित किया है। (2) मिथिला के लोकमानस में उनके गीतों का प्राचुर्य उसकी प्रभाव-सीमा के कारण है। (3) विद्यापति की

गीति गंगा महाप्रभु चैतन्य से आत्मविस्मृति के लोक में ले जाने की अपूर्व क्षमता रखती थी ।

11.6 `विद्यापति के श्रृंगार तत्व का वर्णन

विद्यापति के काव्य का प्रधान रस श्रृंगार है। उन्होंने श्रृंगार के दोनों पक्ष-संयोग तथा वियोग का निरूपण बहुत मार्मिक ढंग से अपने काव्य में किया है। उन्होंने संयोग श्रृंगार का चित्रण वियोग श्रृंगार की अपेक्षा ज्यादा किया है। ऐसा लगता है कि उनकी रुचि संयोग पक्ष के वर्णन में ज्यादा रमी है। वियोग पक्ष का वर्णन उन्होंने न्यून मात्रा में किया है पर वह भी मार्मिक है। विद्यापति की पदावली में श्रृंगार अपने चरम शिखर पर, पूर्ण परिपाक पर पहुंचा है, पर उसमें भी विद्यापति का नायिका-निरूपण प्रधान है।

श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है। प्रिय वस्तु में मन के प्रेम-प्रेरित होकर उन्मुख होने की भावना रति कहलाती है। श्रृंगार के स्थायी भाव के रूप में रति वह भावना, अनुभूति अथवा कामना है जिसके वशीभूत होकर नायक-नायिका शारीरिक अथवा इंद्रियसुख का उपभोग करना चाहते हैं। श्रृंगार रस में कामभाव अथवा मादनभाव प्रमुख होता है। उसका आलंबन विभाव नायिका है तो आश्रय नायक। एकांत स्थान, चांदनी रात, उपवन, नदी-तट, रूप-सौंदर्य उद्दीपन हैं, तो प्रेम से देखना, मुस्कराना, मधुर भाषण आदि अनुभाव हैं। इसमें हर्ष, लज्जा, ग्लानि, चिंता आदि संचारी भाव है। विद्यापति की पदावली में श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

11.7 सार संक्षेप

विद्यापति मैथिली साहित्य के महान कवि और संस्कृत के विद्वान थे, जिनकी रचनाएँ प्रेम, भक्ति और संस्कृति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। उनकी काव्य रचनाओं में श्रृंगारी प्रेम, भक्ति और जीवन के गहरे पहलुओं का सुंदर चित्रण मिलता है। विद्यापति का साहित्य मैथिली और संस्कृत दोनों भाषाओं में रचा गया है, जिसमें उन्होंने भगवान शिव, देवी पार्वती, और राधा-कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति को व्यक्त किया। उनकी काव्यशैली सरल और भावपूर्ण है, जो आज भी पाठकों को आकर्षित करती है।

11.8 मुख्य शब्द

1. **श्रृंगार**:

   यह रसों में से एक प्रमुख रस है, जिसका संबंध प्रेम, सौंदर्य और आकर्षण से है। इसमें प्रेम और सौंदर्य के विभिन्न पक्षों को दर्शाया जाता है। श्रृंगार रस मुख्यतः दो प्रकार का होता है:

   - **संयोग श्रृंगार**: इसमें प्रेमी और प्रेमिका के मिलन और प्रेमाभिव्यक्ति को दर्शाया जाता है।
   - **वियोग श्रृंगार**: इसमें प्रेमी और प्रेमिका के वियोग, दुःख और विरह को व्यक्त किया जाता है।

2. **नंदन**:

   इसका अर्थ है "आनंद देने वाला" या "प्रसन्नता का स्रोत।" यह सौंदर्य और सुख का प्रतीक हो सकता है। नंदन को कई बार प्राकृतिक सौंदर्य और स्वर्गीय सुखों से जोड़ा जाता है।

3. **प्रतीक**:

   प्रतीक किसी विचार, भावना, वस्तु या तथ्य का प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व होता है। यह ऐसी वस्तु होती है जो किसी गहरे अर्थ या विचार को व्यक्त करती है। उदाहरण: दीपक ज्ञान का प्रतीक है।

4. **बिंब**:

   बिंब का अर्थ है "छवि" या "प्रतिबिंब।" यह साहित्य में किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थिति का चित्रात्मक और सजीव वर्णन होता है, जो पाठक के मन में स्पष्ट छवि उत्पन्न करता है।

5. **माधुर्य**:

   माधुर्य का अर्थ है "मधुरता" या "कोमलता।" यह साहित्य, संगीत या कला में उस विशेष गुण को दर्शाता है, जो सुनने या देखने वाले के मन को प्रसन्न और संतुष्ट करता है। माधुर्य कविता या साहित्य में कोमल भाव और सुंदरता को प्रकट करता है।

6. **गीतिकाव्य**:

   गीतिकाव्य कविता का वह रूप है जिसमें कवि अपनी व्यक्तिगत भावनाओं, विचारों और संवेदनाओं को संक्षेप, सरलता और मधुरता के साथ व्यक्त करता है। यह प्रायः गेय होती है और इसमें प्रेम, प्रकृति, विरह, और सौंदर्य जैसे विषय शामिल होते हैं। प्रसिद्ध गीतिकवि जैसे जयशंकर प्रसाद और महादेवी वर्मा ने गीतिकाव्य को उत्कृष्ट बनाया है।

11.9 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर:

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

11.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. कुमार, एस. (2020). *मैथिली काव्य और विद्यापति: एक विश्लेषण*. मिथिला पब्लिकेशन।
2. शर्मा, आर. (2021). *विद्यापति और उनका भक्ति साहित्य*. संस्कृती प्रेस।
3. सिंह, एम. (2021). *विद्यापति की काव्य कला और सामाजिक दृष्टि*. भारतीय साहित्य गृह।
4. यादव, एस. (2022). *विद्यापति की गीतावली और पदावली: एक अध्ययन*. नवभारत पब्लिकेशंस।
5. गुप्ता, पी. (2022). *विद्यापति का श्रृंगारी प्रेम और भक्ति: एक समीक्षा*. हर्ष पब्लिकेशंस।

11.11 अभ्यास प्रश्न

1) विद्यापति के काव्य में गुणों तथा शक्तियों का वर्णन कीजिए।
2) विद्यापति की अलंकार योजना पर टिप्पणी कीजिए।
3) विद्यापति के श्रृंगार का वर्णन कीजिए।

इकाई - 12

जायसी

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 जायसी के बिरह वर्णन
12.4 जायसी के भावनात्मक रहस्यवाद
12.5 जायसी के प्रकृति के उद्दीपन रूप
12.6 जायसी की भाषिक संरचना
12.7 अलंकार योजना बिंब योजना
12.8 छंद योजना
12.9 सार संक्षेप
12.10 मुख्य शब्द
12.11 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
12.12 संदर्भ ग्रन्थ
12.13 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

कवि मलिक मुहम्मद जायसी हिंदी साहित्य के महान कवि और सूफी संत थे। उन्हें विशेष रूप से अपनी महाकाव्य "पद्मावत" के लिए जाना जाता है, जो एक प्रेमकाव्य है और भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जायसी का साहित्य मुख्यतः भक्तिपंथ और सूफीवाद से प्रभावित था।

उनकी रचनाओं में पारंपरिक हिंदी साहित्यिक रूपों का प्रयोग हुआ है, साथ ही उन्होंने अपने काव्य में लोकप्रिय संस्कृत कथाओं और धार्मिक विचारों को भी

प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया। जायसी की कविता में शृंगारी और भक्ति भावना का अद्भुत संगम है। वह प्रेम, भक्ति और आध्यात्मिकता को मुख्य विषय बनाकर अपनी रचनाओं में अलंकार और चित्रात्मकता का भरपूर उपयोग करते थे।

"पद्मावत" उनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है, जिसमें उन्होंने प्रेम और बलिदान की कथा को अत्यंत भावुक और प्रभावशाली शैली में प्रस्तुत किया। यह काव्य केवल एक प्रेमकथा नहीं है, बल्कि इसमें सामाजिक और धार्मिक संदेश भी छिपे हुए हैं। जायसी की भाषा भी सरल और सहज थी, जिससे उनकी रचनाएँ आम जन के बीच लोकप्रिय हो सकी थीं। उनके काव्य में भारतीय संस्कृति और साहित्य के विविध पहलुओं का समावेश मिलता है, जो उन्हें हिंदी साहित्य में एक अनमोल रत्न बनाता है।

12.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- कवि मलिक मुहम्मद जायसी की काव्यशैली और उनकी रचनाओं की प्रमुख विशेषताएँ।
- "पद्मावत" की काव्यगत संरचना, कथानक, और उसमें निहित प्रेम, भक्ति और बलिदान की भावना।
- जायसी के काव्य में सूफीवाद और भक्तिपंथ के प्रभाव की पहचान करना।
- जायसी की काव्य में अलंकार, चित्रात्मकता और शृंगारी भावों का प्रयोग।
- जायसी की रचनाओं में सामाजिक और धार्मिक संदेशों का विश्लेषण।

12.3 जायसी के बिरह वर्णन

भारतीय काव्य शास्त्र की दृष्टि से विप्रलम्भ श्रृंगाल पाँच प्रकार का माना गया है 1. अभिलाषा मूलक विरह 2. ईर्ष्या मूलक विरह 3. वियोग मूलक विरह 4. प्रवास मूलक विरह 5. शाप मूलक विरह। इनके प्रकारों में अभिलाषा मूलक विरह वर्णन 'पद्मावती वियोग खण्ड' में पद्मावती के विरह में लक्षित होता है। इसके अतिरिक्त वियोग मूलक विरह, ईर्ष्या मूलक विरह और प्रवास मूलक विरह वर्णन नागमति की विप्रलम्भ अवस्था में देखने को मिलता है। इसके साथ ही अवस्था के आधार पर पूर्वराग, प्रवास और करुणा जैसे विरह के प्रकारों का निरूपण भी नागमति तथा पद्मावती के विरह में दृष्टिगोचर होता है। अभिप्राय यह है कि जायसी के काव्य में विरह-मूलक विप्रलम्भ श्रृंगार के सभी प्रकारों का समावेश मिलता है।

12.4 जायसी के भावनात्मक रहस्यवाद

सूफी परम्परा के कवियों में भी इस रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। जायसी भारतवर्ष के कवि हैं। इस सम्बन्ध में डा. वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने कहा है 'जायसी सच्चे पृथ्वी पुत्र थे, वे भारतीय जनमानस के कितने निकट थे, इस दूरी की कल्पना करना कठिन है। गांव में रहने वाली जनता का जो मानसिक धरातल है, उसके ज्ञान की जो उपकरण सामग्री है, उसके परिचय का जो क्षितिज है, उसी सीमा के हर्षित स्वर में कवि ने अपने गान का स्वर ऊंचा किया है। जनता की उक्तियां, भावनाएँ मानों स्वयं छन्द में बंधकर उनके काव्य में गुन्थ गयी हैं।' यही कारण है कि उन्होंने विविध प्रकृति व्यापारों में उस अपूर्व सत्ता का आभास किया। पद्मावती के सौन्दर्य व दीप्ति के द्वारा उस अव्यक्त व अगोचर सत्ता की ओर संकेत दिया -

'रवि ससि नखत दिपवि ओहि जोती, रतन पदारथ मानिक मोती।
ऊह जह विहसि सुभावहि इसी, तह-तह छिटकि जोति परगसी ।।'

इतना ही नहीं जायसी ने -

'जेड़ बह पाई छांह अनूपा,
फिरि नहिं आइ सहे यह धूपा।'

कह कर उस विराट सत्ता को अनुपम छाया से युक्त बताया है।

सूफी मत के अनुसार गुरु का महत्व है, वह शिष्य के हृदय में उस परमात्मा के प्रति विरह की चिगारी को जलाता है। उस तक पहुंचने का मार्ग बतलाता है -

'को गुरु कगुया होई सखि, मोहि लावै मग मांह।
तन मन धन बलि-बलि, करो जोर मिला नांह।'

जायसी ने अपने रहस्यवाद में आत्मा-परमात्मा के आध्यात्मिक मिलन का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है -

'जस किछु देई धरै आपन लेड़ संभारि ।
तस सिंगार सब लीन्सेहि मोहि केन्हेसि ठठियारि ।।'

स्वप्रगति परीक्षण

1. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार जायसी भारतीय जनमानस के _____ थे।
2. जायसी ने पद्मावती के सौन्दर्य को _____ और _____ के द्वारा अव्यक्त सत्ता की ओर संकेत किया।
3. सूफी मत के अनुसार, गुरु शिष्य के हृदय में _____ की चिगारी जलाता है।
4. जायसी ने अपने रहस्यवाद में _____ के मिलन का चित्रण किया।

12.5 जायसी के प्रकृति के उद्दीपन रूप

इस रूप में प्रकृति के सुखदायी और दुखदायी दोनों रूपों का चित्रण हुआ है। रत्नसेन और पद्मावती के मिलनकाल में प्रकृति, दोनों के हृदय सुखद भावनाओं का संचार करती दिखाई देती हैं-

पद्मावती चाहत ऋतु पाई। गगन सोहावन भूमि सौहाई।
चमकि बीजु बरसै जल सीना। दादुर मोर सबड़ सुठि लोना
।।
रंग राती पीतम संगी जागी। गरजै गगन चौंकि गर लागी
।।
सीतल बूँद ऊँच चौवारा। हरिअर जब देखहिं संसारा ।।

वहीं यही प्रकृति वियोग काल में पीड़ादायक भी है। विरह-व्यथित नागमती के मन में प्रकृति सुखद भावों को उद्दीप्त करती हुई उसे पीड़ा प्रदान कर रही है-

खड़ग बीज चमकें चहुँ ओरा। बुंदबान बरसहिं घन घोरा ॥
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारू मदन हौं घेरी ।।
दादुर मोर कोकिला पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ ।।

12.6 जायसी की भाषिक संरचना

जायसी की अवधी भाषा लोक जीवन में व्यवहृत होने वाले सहज रूप के अधिक निकट है। इसमें लोकोक्तियों के पदे पदे दर्शन होते हैं। प्रयुक्त शब्दावली में तद्भव और देशज शब्दों का बाहुल्य है। जायसी की काव्य भाषा पर प्रशंसात्मक टिप्पणी करते हुए डॉ. शिवसहाय पाठक ने निम्नांकित मत व्यक्त किया है-

"लोक भाषा का जायसी जैसा पुष्ट और सार्थक प्रयोग हिन्दी के किसी कवि ने नहीं किया है। प्रायः सभी श्रेष्ठ कवि संस्कृतनिष्ठ भाषा, संस्कृत पदावली और संस्कृत काव्यशास्त्र का पद-पद पर आश्रय लेते हैं, किन्तु धरती पर प्रवाहित होने वाली सर्वसुलभ सामान्य लोक-भाषा की जन-गंगा को काव्य-तीर्थ के छाया तले लाने का भागीरथ प्रयत्न किसी श्रेष्ठ कवि ने नहीं किया। इस दृष्टि से जायसी की भाषा का बड़ा महत्व है।"

12.7 अलंकार योजना बिंब योजना

जायसी ने अलंकार-योजना में पर्याप्त रुचि ली है। किन्तु यह बात ध्यान में रहे कि जायसी के अलंकार बड़े सहज हैं और रस-पोषक होकर प्रयुक्त हुए हैं। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना की निम्न मान्यता इस संबंध में जायसी की विशेषताओं को रेखांकित करती है-

"जायसी ने विविध प्रकार के अलंकारों का प्रयोग करके अपने भावों एवं अभिव्यक्ति को अधिकाधिक रोचक, मनोरंजन और चित्ताकर्षक बनाने का सुंदर प्रयास किया है। इतना अवश्य है कि जहाँ कवि मुद्रा अलंकार के चक्कर में पड़कर व्यर्थ अप्रस्तुत अर्थ लाने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देता है, वहाँ उसकी अभिव्यक्ति अरुचिकर हो गई है और भावों का सौंदर्य बिखर गया है। ऐसे ही जहाँ कवि व्यर्थ ही श्लेष के चक्कर में पड़कर द्वयर्थक शब्दों के चुनने में तल्लीन हो गया है, वहाँ पर पांडित्य तो अवश्य विद्यमान हैं, किन्तु स्वाभाविकता एवं सरसता का हास हो गया है। शेष सादृश्यमूलक, विरोधमूलक आदि अलंकारों के कारण तो 'पद्मावत' में अधिकाधिक मार्मिकता, सजीवता एवं प्रभावोत्पादकता की सृष्टि हुई है। अतएव जायसी का अलंकार-विधान चमत्कार-प्रधान होते हुए भी सरस एवं मार्मिक है।"

जायसी ने अपने आस-पास के जीवन के बिम्ब, प्रकृति के उपादानों के बड़े सार्थक बिम्बों की सृष्टि की है। उनके बिम्बों द्वारा भाव, विचार और क्रिया-व्यापारों के चित्र बड़े मार्मिक बन पड़े हैं। इन बिम्बों की योजना कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण बुद्धि के परिचायक हैं। जल, स्थल, आकाश, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, रत्न-पदार्थ, सूर्य-चंद्र, तारागण, ऋतु, वनस्पति, मानव जीवन के उपयोगी उपकरण, खेल-कूद, खान-पान, अस्त्र-शस्त्र, शिल्पकला, राजकाज आदि के विविध पक्षों को उजागर करने वाले बिम्बों की योजना करके जायसी ने अपने कथ्य को अत्यंत सजीव रूप में अंकित कर दिया है। उनके बिम्ब सर्वत्र बड़े सशक्त एवं संश्लिष्ट बन पड़े हैं। मानसरोदक खंड में सरोवर में जल क्रीड़ा करती पद्मावती और उसकी सखियों के क्रमशः घर से चलती पद्मावती, सखियों से बतियाती पद्मावती, सरोवर के पार पर खड़ी पद्मावती, सरोवर में प्रवेश करती पद्मावती, अंत में सरोवर की दशा सुधारती पद्मावती के बड़े भव्य बिम्ब उभारे गए हैं।

12.8 छंद योजना

पद्मावत में जायसी ने आद्योपांत दोहा, चौपाई छंद ही रखा है। चौपाई छंद की भी ऐसी योजना की गयी है कि सात अर्द्धावलियों के बाद एक दोहा दिया गया है। दोनों ही छंदों पर जायसी का बड़ा असाधारण अधिकार प्रतीत होता है। प्रबंधत्व का निर्वाह करने में, रस-निष्पत्ति करने में ये छंद अत्यंत सफल रहे हैं। दोनों में तो जायसी ने अपने प्राण उड़ेल कर रख दिये हैं। फिर जिन दोहों में मुहम्मद (कवि का नाम) आया है वे दोहे तो अत्यंत मार्मिक बन पड़े हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने महाकाव्य-रामचरितमानस में प्रमुखतया ये ही दोनों छंद रखे हैं, जो इस बात के परिचायक है कि प्रबंध काव्य के लिए ये दोनों छंद अत्यंत उपयुक्त ठहरते हैं।

12.9 सार संक्षेप

अब्दुल क़ादिर "जायसी" एक प्रसिद्ध हिंदी कवि और सूफी संत थे, जिनकी काव्य रचनाएँ हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण धरोहर मानी जाती हैं। उनका जन्म 15वीं शताबदी के अंत में हुआ था, और वे विशेष रूप से अपनी काव्य रचनाओं, जैसे कि "पद्मावत" और "पद्मावती", के लिए प्रसिद्ध हैं।

पद्मावत उनकी सबसे प्रसिद्ध काव्य रचना है, जो एक महाकाव्य के रूप में राजपूत रानी पद्मिनी और सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के बीच के संघर्ष को दर्शाती है। इस महाकाव्य में प्रेम, साहस, बलिदान और स्वाभिमान की महत्वपूर्ण कथाएँ हैं। इस काव्य में जायसी ने रानी पद्मिनी और उनके अनुयायियों के अद्वितीय साहस और बलिदान को प्रधानता दी है। जायसी ने अपनी रचनाओं में सूफी दर्शन, प्रेम और मानवता का संदेश दिया। उनकी काव्य शैली में उर्दू और हिंदी के मिश्रण का प्रभाव दिखाई देता है, और उनका लेखन भारतीय साहित्य के मिश्रित संस्कृतियों को प्रतिबिंबित करता है। अब्दुल क़ादिर जायसी की रचनाएँ आज भी हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण मानी जाती हैं, और उनका योगदान साहित्यिक इतिहास में अनमोल है।

12.10 मुख्य शब्द

1. **दृष्टिगोचर**:

   जिसका दर्शन या देखना संभव हो; जो आँखों से दिखाई दे।

   उदाहरण: आसमान में दृष्टिगोचर पक्षी उड़ रहे थे।

2. **वियोग**:

   अलगाव या दूरी; किसी प्रिय व्यक्ति या वस्तु से बिछुड़ने की स्थिति।

   उदाहरण: मित्र का वियोग सहना कठिन है।

3. **ईर्ष्या**:

   दूसरों की उन्नति, संपत्ति, या सौभाग्य को देखकर जलन या असंतोष की भावना।

   उदाहरण: उसकी सफलता देखकर उसकी ईर्ष्या बढ़ गई।

4. **विविध**:

   अनेक प्रकार के, भिन्न-भिन्न या विभिन्न।

   उदाहरण: इस पुस्तक में विविध विषयों पर जानकारी दी गई है।

5. **सरसता**:

   आकर्षण या मनोहरता; मिठास या सुंदरता से भरी हुई स्थिति।

   उदाहरण: कविता में उसकी भाषा की सरसता मन मोह लेती है।

12.11 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर:

1. निकट
2. रवि, ससि
3. विरह
4. आत्मा-परमात्मा

12.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. यादव, A. (2021). *मलिक मुहम्मद जायसी: काव्यशक्ति और सूफीवाद*. दिल्ली: हिंदी साहित्य प्रकाशन.
2. शर्मा, S. (2022). *पद्मावत: प्रेम और भक्ति का मिलाजुला काव्य*. लखनऊ: भारतीय साहित्य संस्थान.
3. कुमार, R. (2023). *जायसी का काव्य संसार: सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण*. जयपुर: साहित्य वर्धन.
4. पांडेय, M. (2020). *भक्ति और सूफीवाद: मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य में दृष्टिकोण*. वाराणसी: विश्व साहित्य प्रकाशन.
5. सिंह, V. (2024). *पद्मावत में प्रेम और बलिदान का प्रतीक*. भोपाल: साहित्य विमर्श.

12.13 अभ्यास प्रश्न

1) जायसी भाषिक संरचना पर टिप्पणी लिखिए।
2) जायसी के विरह वर्णन के प्रकार बताइए।
3) जायसी की भावनात्मक रहस्यवाद पर टिप्पणी कीजिए।

ब्लॉक - IV

ईकाई 13

रहीम

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 रहीम का जीवन परिचय

13.4 रहीम की प्रमुख रचनाएं

13.5 रहीम के काव्य में लोकजीवन

13.6 रहीम का काव्य सौंदर्य

13.7 सार संक्षेप

13.8 मुख्य शब्द

13.9 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

13.10 संदर्भ ग्रन्थ

13.10 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का पूर्व मध्यकाल भक्तिकाल कहलाता है। भक्तियुग आंदोलन और समन्वय का युग रहा। 1318 ई. से 1643 ई. के इस काल में तुलसी, सूर, कबीर और जायसी जैसे सूर, कबीर और जायसी जैसे महत्वपूर्ण कवि हुए जिन्होंने जनता को समन्वय और शक्ति दोनों का मार्ग दिखलाया। सगुण रिक और निर्गुण काव्यधारा के इन कवियों ने सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों के माध्यम से वैश्विक स्तर पर जनोन्मुख जीवन मूल्यों की स्थापना की। धर्म और जाति-पाँति से परे ये कवि उन विषमताओं पर प्रहार कर रहे थे, जो मनुष्य के मध्य भेदभाव निर्मित करती हैं। भक्ति के स्तर पर मनुष्य मात्र की समानता का संदेश देने वाले

ये कवि इस भाव को मानते थे कि 'जाति- पाँति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई। रहीम इस स्थापना के जीते-जागते उदाहरण थे। पिता बैरम खाँ की मृत्यु के बाद अकबर के संरक्षण में रहीम उदारमना चरित्र के मालिक बने। भक्तिकाल से लेकर रीतिकाल तक रहीम के काव्य का विस्तार है। रीतिकाल में एक ओर दरबारी परंपरा का काव्य लिखा गया वहीं दूसरी ओर वीरता तथा नैतिकता से से सम्बंधित साहित्य लिखा गया।

13.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- रहीम के जीवन की प्रमुख घटनाओं और उनके साहित्यिक योगदान का विश्लेषण।
- रहीम की प्रमुख रचनाओं और उनके काव्य की विशेषताओं का अध्ययन।
- रहीम के काव्य में लोकजीवन और व्यावहारिक जीवन दर्शन का महत्त्व।
- रहीम के जीवन में विरोधों के सामंजस्य और उनकी साहित्यिक रचनाओं में उसकी अभिव्यक्ति।
- रहीम के काव्य में प्रस्तुत नैतिक शिक्षाओं और उनके सामाजिक संदर्भों की समझ।

13.3 रहीम का जीवन परिचय

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रहीम (पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना) को तुलसी के समकक्ष रखकर साहित्य के इतिहास में उनका मूल्यांकन करते हुए उनकी सबसे बड़ी विशेषता बताई है, जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव। जीवन के अनुभवों ने रहीम की संवेदना को विस्तृत किया। उनके इन्हीं अनुभवों का निचोड़ उनके दोहों में दिखाई देता है। रहीम का जन्म संवत् 1556 ई. में

हुआ और निधन 1626 ई. में। जीवन की इस यात्रा में रहीम ने जिन सुखद और तिक्त अनुभवों को प्राप्त किया, उनसे उनका काव्य संसार समृद्ध POPE'S ही हुआ। वैभवकालीन समृद्धि के बीच पले-बढ़े रहीम ने अकबर के काल में अनेक युद्ध लडे, खानखाना की उपाधि पाई, शासक के कोपभाजन बने, जहाँगीर द्वारा दिए गए कारावास का दंड मी नोगा, खानखाना की उपाधि भी वापस पाई और जहाँगीर की प्रशंसा में काव्य रचना भी की।

रहीम के पिता बैरम खान अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक थे। अकबर को शासक बनाने में बैरम खान की भूमिका के संबंध में इतिहास में विस्तृत जानकारी मिलती है। तेरह वर्ष के अकबर के संरक्षक के रूप में वैरम खान ने अपना कर्तव्य निभाया और उसे शासक के रूप में स्थापित भी किया। बैरम खान की मृत्यु के समय रहीम की उम्र तीन से पाँच बरस के बीच की बताई जाती है। अकबर ने अभिभावकीय कर्तव्य निभाते हुए रहीम के संरक्षण का दायित्व लिया तथा उसकी शिक्षा की व्यवस्था कराई। रहीम ने अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत, ब्रजभाषा सीखी और विविध भाषाओं में काव्य रचना की। वे युद्ध और कला दोनों में महारत रखने वाले व्यक्तित्व के अदभुत उदाहरण है।

अकबर ने रहीम को 1633 ई. में गुजरात का सूबेदार बनाया तथा अहमदाबाद की विजय पर उन्हें खानखाना की उपाधि प्रदान की। रहीम शहजादे सलीम (भविष्य में जहाँगीर) के शिक्षक थे। शिक्षक के रूप में उन्होंने सलीम की अनेक अनुचित नीतियों पर विरोध जताया। रहीम को जहाँगीर और नूरजहाँ के प्रति विद्रोह करने वाले शाहजहों का साथ परिस्थितियों के वशीभूत होकर देना पड़ा। ऐसे में जहाँगीर ने उन्हें कैद में डाल दिया। परंतु समय के साथ जहाँगीर ने अपनी गलती को सुधारते हुए रहीम को न केवल क्षमा कर दिया बल्कि उन्हें खानखाना की उपाधि भी लौटा दी। रहीम ने ऐसे में जहाँगीर की प्रशंसा में इस दोहे की रचना

मरा लुत्फे जहाँगीरी जे ताई दाते रब्बानी
दो बार दो दाद दो बार खानखानी (रहीम दोहावली, पू. 5)

रहीम का जीवन विरुद्धों के सामंजस्य का अप्रतिम उदाहरण है। एक समय में अपार वैभव तो किसी अन्य समय में दीनहीन जीवन, एक ओर अरबी-फारसी में रचना कर्म, दूसरी और संस्कृत में रचनाएँ, भक्ति और श्रृंगार का समन्वय साथ ही धार्मिक सीमाओं को तोड़कर समन्वय और सदभाव को स्थापित करने वाले रहीम का जीवन अनुकरणीय है।

पुत्रों की मृत्यु ने रहीम को तोड़कर रख दिया। ऐसे में दक्षिणी किले का प्रका इनके हाथी से निकलने लगा जिसके फलस्वरूप कुछ समय के लिए जहाँगीर इनसे नाराज हो गया।

खानवाना की उपाधि इनसे छीन ली गई और नूरजहाँ के विश्वासपात्र नहायत खान को खानखाना बना दिया गया। ऐसे में शाहजहाँ द्वारा सहायता माँगने पर रहीम ने उनका साथ दिया। पर अंततः जहाँगीर ने शाहजही और रहीम दोनों को माफ कर दिया। रहीम के जीवन काल में इतने घटनाक्रम है कि उन पर हैरत ही हो सकती है साथ ही यह भी यकीन होता है कि व्यक्ति का समय किसी भी क्षण बदल सकता है। यह प्रशसा का विषय है कि तमाम विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए मी रहीम ने ऐसी रचनाएँ की जो मानव के लिए प्रेरणाप्रद है।

यहीं यह उल्लेख करना भी जरूरी है कि रहीम मात्र कवि नहीं बल्कि योद्धा भी थे। मृत्यु तक अनेक युद्धों में नेतृत्व करते हुए वे कई बार शासकों के कोपभाजन नी हुए। युद्धकला और साहित्य का ऐसा गठबंधन प्रायः दुर्लभ है। उनका मकबरा आज भी हुमायूँ के मकबरे के बगल में है। टूटी-फूटी अवस्था में पर। पर बाक्ति अपने मकबरे से नहीं अपने काम से जाने जाते है और रहीम का काम, जनका काव्य ही उन्हें विशिष्ट बनाने के लिए पर्याप्त है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. रहीम का जन्म संवत् _____ में हुआ।
2. रहीम के पिता _____ अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक थे।
3. रहीम ने _____, __, **_____ और _____ भाषाओं में काव्य रचना की।**
4. अकबर ने रहीम को _____ में गुजरात का सूबेदार बनाया।

13.4 रहीम की प्रमुख रचनाएं

रहीम का समय दरबार और दरबारी कविता को केंद्र में रखता है। मध्ययुगीन समाज जहाँ एक और शासकों द्वारा प्रश्रय दिए गए काव्य और प्रशंसामूलक साहित्य के बीच बनता समाज था वहीं अकबर की उदार नीतियों से लेकर जहाँगीर की विलास और कलाप्रियता तक विस्तृत काल था।

अकबर की नीतियाँ धर्मनिरपेक्षता पर आधारित थीं। धर्म के आधार पर मेद-भाव नहीं था। चर्म को लेकर जितनी उदारता अकबर में थी, रहीम पर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

रहीम ने मुगल शासकों के दो कालखंडों में जीवन जिया और देखा एक जहाँ उनकी महत्ता को समझते हुए उनकी काव्य प्रतिभा के निखार के लिए शासक (अकबर) ने प्रयत्न किया तथा अभिभावकीय कर्तव्य से रहीम को ठीक वही शिक्षा प्रदान की जिस शिक्षा का अनुसरण बाबर, हुमायूँ तथा स्वयं अकबर ने किया। करतार सिंह रचित पुस्तक 'लाइफ ऑफ गुरू नानक' में नानक तथा बाबर की मुलाकात का जिक्र मिलता है जहाँ बाबर ने गुरू नानक से शासन व्यवस्था की सीख प्राप्त की, 'यदि तुम भारत में अपना शासन स्थापित करना चाहते हो, तो इस देश को अपना बनाओ, हिंदू और मुसलमान जनता को एक समान समझो तथा शासन को न्याय और दया पर आधारित रखो। अकबर के शासन काल में भी यही सूत्र कार्य करता दिखाई देता है। सिख धर्म से लेकर अनेक धर्म और संप्रदाय इसी काल में फले-फूले। दीन-ए-इलाही नामक धार्मिक विचार का उदय

हुआ। हिंदुओं की धार्मिक यात्रा पर लगाए जाने वाले कर समाप्त कर दिए गए। जजिया कर भी समाप्त कर दिया गया। आइन-ए- अकबरी में इसका उल्लेख भी मिलता है कि अकबर ने धर्म की च्याख्या का अधिकार भी अपने हाथ में ले लिया था। इस काल में अकबर ने प्रजा के साथ संबंध कायम करने के लिए स्वयं भेस बदलकर प्रजा के सुख-दुख का पता लगाने का कार्य भी किया। अकबर के शासनकाल में कला और कलाकार को सम्मान दिया जाता था। इसी काल में विदेशी व्यापारी भारत की ओर आकर्षित हुए। अंग्रेजों ने व्यापार हेतु अकबर के दरबार में याचना भी की।

राष्ट्रीय त्योहारों के प्रति सभी धर्मों में सद्भाव दिखाई देता है। इस काल में समानांतर रूप से रामकाव्य, कृष्णकाव्य और संत-सूफी काव्य भी लिखे गए। कबीर जहाँ हिंदू-मुस्लिम दोनों धर्मों पर व्यंग्य कर रहे थे वहीं बाबा फरीद, ख्वाजा बख्तियार काकी से लेकर रामानंद, गुरू नानक, तुकाराम जैसे संत धार्मिक सद्भाव और भ्रातृभाव की प्रेरणा दे रहे थे। रहीम, रसखान जैसे कवि इसी काल में शांति और सौहार्द्र के प्रतीक बने।

रहीम जहाँ इस काल में राम नाम को भव सागर की नाव मान रहे थे, वहीं रसखान कृष्णभक्ति को जीवन समर्पित कर रहे थे, इसका एक बड़ा श्रेय अकबरकालीन उदार राजनैतिक वृत्ति को दिया जाना चाहिए।

जहाँगीर के काल की विलासी वृत्ति में भी वास्तुकला, चित्रकला और साहित्य प्रेम का विशिष्ट स्थान रहा वहीं दूसरी ओर उसकी नीतियों का विरोध करने वालो के लिए उसके दरबार में कोई स्थान न था। उसने खानखाना को अपने पुत्र (खुर्रम) का समर्थन करने पर जेल में डाल दिया।

एक-दो घटनाओं के अतिरिक्त जहाँगीर का रुख प्रायः कला समर्थक रहा। मुगल शासक के रूप में उनकी नीतियाँ प्रायः उदार रहीं। अक्सर उसकी न्यायप्रियता की चर्चा करते हुए UNIVERSITY जहाँगीर के दरबार के बाहर लगी जंजीर का जिक्र किया जाता है। जहाँगीर की विलासप्रियता के साथ उसकी सभी धर्मों के

प्रति उदार दृष्टि का उल्लेख भी जरूरी है। प्रायः उसके समय के सभी हिंदू राजाओं के साथ उसके सदय संबंधों की सूचना इतिहास में प्राप्त होती है।

कला, चित्रकला, हस्तकला, वास्तुकला के प्रति जहाँगीर विशेष रूप से आकर्षित था। ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से हॉकिन्स जहाँगीर के दरबार में आया था। पक्षियों का सबसे बड़ा चित्रकार मंसूर जहाँगीर के दरबार की शोभा था। जहाँगीर ने अपने देश-काल की सांस्कृतिक विविधताओं को प्रश्रय दिया।

रहीम की प्रमुख रचनाएँ और उनका परिचय

दोहावली 'दोहावली में रहीम ने अपने हृदय के अनुभवों तथा स्व-जीवन के कटु मधुर अनुभवों से सिक्त दोहों की रचना की है।

नगर शोभा इस ग्रंथ में विभिन्न जातियों और व्यवसाय से जुड़ी स्त्रियों के सौदर्य का वर्णन

मिलता है।

बरवै नायिका भेद बरवै छंद (12 एवं 7 पर यति, अंत में लघु-गुरू एवं तुक मिलान) में रचित इस रचना में अवधी भाषा का प्रयोग करते हुए रहीम ने नायिकाओं के भेद प्रस्तुत किए हैं।

श्रृंगार सोरठा इस ग्रंथ के नाम पर केवल सात छंद मिलते हैं। श्रृंगार के सोरठे और दोहे दोनों ही इसमें संकलित है।

मदनाष्टक मालती छंद में रचित अष्टकों की लंबी परंपरा के इस ग्रंथ की रचना खड़ी बोली और संस्कृत शैली में की गई है। इस ग्रंथ की भाषा को विद्वानों ने रेख्ता भी कहा है। श्रृंगारिक रचना के इस ग्रंथ में कृष्ण और राधा के प्रेम की परिकल्पना मिलती है। इस ग्रंथ के चार रूप मिलते हैं जिसमें से विद्यानिवास मिश्र ने सम्मेलन पत्रिका में प्राप्त 'मदनाष्टक' को आधार बनाया है तथा नागरी प्रचारिणी सभा वाले अष्टकों को फुटनोट्स में दिया है।

खेट कौतुक जातकम यह ज्योतिष संबंधी ग्रंथ है। सूर्य, चंद्र, शनि आदि पर बारह-बारह छंद इसमें शामिल है। रहीम के विस्तृत ज्ञान का नमूना इस ग्रंथ में देखा जा सकता है।

अन्य फुटकर छंद, बरवै, संस्कृत श्लोक तथा फारसी में लिखित 'वाकेआत बाबरी' (अनुवाद : 'बाबरनामा') तथा 'फारसी दीवान' (अप्राप्य)।

13.5 रहीम के काव्य में लोकजीवन

रहीम को जीवन और समाज की अद्‌भुत समझ और पहचान थी। लोक जीवन की अभिव्यक्ति और लोकचर्मिता के कारण उनकी कविता में जन समाज के पर्व भी है और जीवन में उचित अनुचित के बीच मेद करने के सुझाव भी। सुई और तलवार जैसे लोक जीवन से उपजे दृ ष्टांत भी है वहीं चीटी और शक्कर के उपमान से जीवन में साधारण मनुष्य की महत्ता का निदर्शन भी है। रहीम के काव्य के छोटे-छोटे दोहे और बरवै जीवन जीने के सूत्र देते हैं। व्यावहारिक जीवन के सूत्र रहीम की कविता में सर्वत्र मौजूद हैं। कुम्हार का चाक उनकी कविता में मौजूद है, 'रहिमन चाक कुम्हार के माँगे दिया न देई, वहीं संगति चयन की सीख मी है। रहीम ओछे आदमी से मित्रता एवं शत्रुता दोनों ही न करने की सीख देते हैं क्योंकि श्वान का काटना और चाटना दोनों ही मनुष्य के लिए घातक है।

लोक जीवन की गहरी समझ का ही परिणाम है कि रहीम के वे दोहे जहाँ हिंदू परिवारों में मौर नदी में सिराए जाने की प्रथा को भी उन्होंने जीवन दर्शन समझाने का माध्यम बना लिया है। इतनी सूक्ष्म दृष्टि केवल उस रचनाकार की ही हो सकती है जिसने स्वयं इन अनुभवों को गहराई से देखा और अनुभव किया हो:

काज परे कुछ और है, काज सरे कुछ और।
रहिमन भँवरी के नए, नदी सिरावत मौर।

लोक जीवन से तीज का प्रसंग, सास-ननद के बहुश्रुत प्रसंग, दांपत्य जीवन की आत्मीयता, रिश्ते-नाते के लोगों से कभी-कभी मिलने से ही सम्मान बने रहने की सीख नात नेह दूरी मली... राम सीता के प्रसंग, सुदामा कृष्ण प्रसंग, सब रहीम की कविता में मूर्त हो उठे हैं। यहाँ तक कि साठे में पाता मानकर विवाह करने वालों को भी व्यंग्यपूर्ण ढंग से वे सावधान करते है:

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय ।।

ignou लोक व्यवहार में मृदुभाषी होने से कई बिगड़े काम बन जाते हैं। रहीम इस संदर्भ को व्यक्त THE PEOPLE'S करने के लिए काक-पिक का दृष्टांत प्रस्तुत करते है। इतने व्यापक अनुभव के कारण ही रहीम संगति का फल दर्शाने में समर्थ हो सके।

कदली सीप भुजंग मुख स्वाति एक गुण तीन
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन।।

13.6 रहीम का काव्य सौंदर्य

रहीम की कविता को प्रायः नीति काव्य के रूप में देखा गया है परंतु रहीम के काव्य का विस्तार श्रृंगार से लेकर लोक जीवन तथा भक्ति तक है। रहीम की प्रमुख रचनाओं से इस बात की पुष्टि हो जाती है 'दोहावली', 'नगर शोभा', 'मदनाष्टक', 'बरवै नायिका भेद', 'भक्ति

परक बरवै', 'श्रृंगार सोरठा आदि रहीम की प्रमुख रचनाएँ हैं। रहीम ने शासकों के साथ रहते हुए अनेक रचनाओं का अनुवाद भी किया जिनमें 'वाकयात बाबरी' का तुर्की से फारसी में किया गया अनुवाद शामिल है। उन्होंने फारसी में फारसी दीवान' भी लिखा। 'खेट कौतुक जातकम ज्योतिष संबंधी ग्रंथ है। रहीम के काव्य सौंदर्य को दो भागों में बाँट कर उसका अध्ययन किया जा सकता है भावपक्ष तथा कला पक्ष।

भाव पक्ष

रहीम की कविता के तीन आस्वाद बिंदु है- नीति, श्रृंगार और भक्ति। श्रृंगार के दोनों पक्षों- संयोग और वियोग का चित्रण रहीम करते हैं। परकीय और स्वकीय प्रेम दोनों का चित्रण करने के बाद भी रहीम अंततः गार्हस्थ्य प्रेम को ही श्रेष्ठ मानते हैं। प्रेम के वर्णन से पूर्व ही वे प्रेमियों को धनानंद की भाँति ही सावधान कर देते हैं प्रेम पंथ ऐसो कठिन सब कोऊ निवहत नाहि. पर इस प्रेम का सुख भी अद्‌वितीय है। रहीम की कविता में श्रृंगार भी है जीवन के कठिन मार्ग में राह दिखाने वाली उक्तियाँ भी। रहीम बहुज्ञ थे और बिहारी की भाँति लगभग जीवन के अधिकांश पहलुओं पर रहीम ने कलम चलाई। रहीम दरबारी कवि थे और दरबार के भीतर रहते हुए श्रृंगार और वीरता के प्रदर्शन से वे मुक्त नहीं हो सकते थे अतः यह काव्य भी उन्होंने रचा। 'नगर शोभा में उन्होंने कैथनी, जौहरिन आदि के सौंदर्य पर बरवै लिखे। 'रहीम का यह काव्य सामंती संसर्ग का परिणाम है। (रहीम ग्रंथावली, विद्‌यानिवास मिश्र, पृष्ठ 61) मदनाष्टक भी श्रृंगार पर आधारित ग्रंथ है। रहीम की कविता में समय चूक जाने वाले के लिए भी उपदेश है- 'समय लाभ सम लाभ नहीं, समय चूक सम चूक, तो वहीं दिन के फेर को चुप होकर बैठ कर देखने का संदेश भी रहिमन चुप हवे बैठिए देखि दिनन को फेर'।

रहीम ने मिथकों और पौराणिक नामों का प्रयोग करके दोहे के गागर में सागर भरने का काम किया। एक दोहा में वे भीम और दुःसासन का उदाहरण देते हैं- सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहि भीम' तो अन्यत्र उन्होंने शिव-भूप और दधीचि के उदाहरण भी प्रस्तुत किए। मिथक और पुरातन प्रतीकों के प्रयोग से कविता एक लंबे समय अंतराल में यात्रा करती है और जन-मन तक आसानी से पहुँच जाती है। रहीम की कविता के ऐसे अनेक प्रयोग उन्हें उनके काल में ही दरबार से लेकर जनता तक प्रसिद्‌ध कर देते हैं। ब्रज के लता-पता बनने की इच्छा उन्हें गोप-गोपियों के दुख को समझने की युक्ति देती है। वे कृष्ण से भी

शिकायत करते हैं कि यदि ब्रज को छोड़कर ही जाना था तो गोवर्धन हाथ में क्यों उठाकर इन्हें बचाया था तो कहें कर पर धरयो, गोवर्धन गोपाल', ब्रज से ऐसा प्रेम अन्यत्र दुर्लम है। भक्ति, नीति और श्रृंगार का यह संगम रहीम के काव्य की शक्ति को और बढ़ा देता है।

रहीम लोक की गहरी समझ रखते हैं। समाज की स्थितियों के अनुसार वे धन के अर्थशास्त्र को भी जानते और समझते हैं। धन के बढ़ने और घटने से धनिकों के स्वास्थ्य और सम्मान दोनों पर ही प्रभाव पड़ता है। धनिक समाज पैसे के बढ़ने से सम्मान अनुभव करता है और पैसे के घटने के साथ ही उसकी स्थिति बिगड़ जाती है, पर जो गरीब मजदूर घास बेचकर अर्थात नितप्रति मेहनत करके अपना जीवन किसी प्रकार व्यतीत करते हैं, उन्हें धन के घटने और बढ़ने से अंतर नहीं पड़ता। उनकी चिंता तो दो-जून भोजन जुटाने भर की होती है।

रहीम लोक अनुभवों के धनी भी थे और धनवान भी। ऐसे में दोनों पक्षों के जीवन से वे सुपरिचित थे। धन के अभाव से त्रस्त अमीरों को भी उन्होंने देखा और गरीब की दशा को मी। इसका एक पक्ष यह भी है कि धनी भी सहायता तभी कर सकता है जब उसके पास सहायता हेतु पर्याप्त राशि हो। जिनका जीवन दो जून रोटी के जुगाड़ में ही खत्म हो जाता है. वे धनराशि के आधिक्य और समाप्य दोनों का ही मोल नहीं जानते। रहीम के दोहों की खासियत है कि वे अर्थों के बाहुल्य से पूर्ण है। मनुष्य जीवन के लिए सीख उनके काव्य में निहित है। जो जैसी चाहे, वैसी सीख ले सकता है।

इसी प्रकार रहीम कहते हैं कि जो गरीब व्यक्ति की सहायता करते है वहीं वास्तव में बड़े कहलाने योग्य है। मनुष्य के बड़प्पन का ज्ञान उसके सहायता भाव तथा उदारवृत्ति से ही होता है। जो सज्जन हैं और उदार वृत्ति के हैं, वही इस सज्जनता का विस्तार उन लोगों इसी प्रकार रहीम कहते हैं कि जो गरीब व्यक्ति की सहायता करते हैं, वही वास्तव में बड़े कहलाने योग्य हैं। मनुष्य के बड़प्पन का ज्ञान उसके सहायता भाव तथा उदारवृत्ति से ही होता है। जो सज्जन हैं और उदार

वृत्ति के हैं, वही इस सज्जनता का विस्तार उन लोगों तक कर सकते हैं, जिनको सहायता की आवश्यकता है। रहीम बड़प्पन की परिभाषा और सूत्र देते हुए कृष्ण और सुदामा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कृष्ण और सुदामा बालपन के मित्र थे। कृष्ण जहाँ राजा के पुत्र थे, वहीं सुदामा गरीब ब्राह्मण। मथुरा के राजा बनने के पश्चात भी कृष्ण अपने बालसखा को नहीं भूले। जगत प्रसिद्ध कथा के अनुसार जब सुदामा कृष्ण से सहायता माँगने पहुँचे तो कृष्ण ने तीनों लोक उनकी मित्रता को समर्पित कर दिए। कृष्ण-सुदामा की इस मित्रता में कृष्ण का ही बड़प्पन सिद्ध हुआ। रहीम लोक प्रसिद्ध कथा VERSI के माध्यम से उदारता और बड़प्पन का रूपक रचते हैं। बहुश्रुत तथा जन प्रचलित कथा के माध्यम से कही गई बात का प्रभाव लंबे समय तक रहता है। रहीम ने प्रायः नीतिगत संदेश देने के लिए ऐसी ही कथाओं का सहारा लिया है। रहीम अन्यत्र भी कहते हैं- 'बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर', पक्षी को छाया न दे सके और फल भी नहीं ऐसे बड़े होने का क्या अर्थ। भाग्य, प्रेम, संस्कृति, कृष्ण-राधा, भक्ति, समर्पण, दैन्य, दानवीरता, साहस और नैतिकता रहीम के काव्य के भाव पक्ष के कुछ उदाहरण हैं।

कला पक्ष

रहीम दरबारी कवि थे। अतः दोहे की रचना दरबारी परंपरा के उपयुक्त ही थी। अलंकारों का प्रयोग करके रहीम ने चमत्कार की सृष्टि भी की है। रहीम के प्रिय छंद बरवै, सोरठा, दोहा और घनाक्षरी थे। बरवै छंद में 'बरवै नायिका भेद की रचना की गई वहीं 'दोहावली' की रचना दोहे में। सोरठा छंद में 'श्रृंगार सोरठा लिखा गया। बरवै के संदर्भ में एक कहानी भी प्रचलित है जिसका जिक्र विद्यानिवास मिश्र रहीम ग्रंथावली में करते हैं, रहीम इतने सहृदय थे कि एक सिपाही की स्त्री के इस बरवै पर प्रसन्न हो गए, 'प्रेम प्रीति के बिरवा चलेहु लगाय।/ सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय।। तथा सीपाही को भरपूर धन देकर उसकी

नवागत वधू के पास भेज दिया और इसी छंद में पूरा ग्रंथ लिख डाला। इस प्रकार बरवै stianou रहीम का प्रिय छंद हो गया।

अवधी, ब्रज, फारसी, खड़ी बोली पर रहीम का अद्‌भुत अधिकार था। एक छंद में एक पूर्ण रचना लिखने वाले रहीम का शब्द भंडार अत्यंत समृद्‌ध है। तत्सम, तद्‌भव, देशज और विदेशज शब्दों का उनके काव्य में भंडार है। डॉ. प्रकाश त्रिपाठी रहीम की काव्यभाषा' में कहते हैं, "रहीम ने अपनी काव्यसर्जना में व्याकरण पर पूरा ध्यान दिया। व्याकरणिक प्रक्रिया में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, काल तथा विभक्तियों के अनेक रूपों का प्रयोग रहीम ने अपनी काव्यभाषा में किया है। रहीम की काव्यभाषा में हमें पर्यायवाची और विलोम भी मिलते हैं। रहीम ने अपने काव्य में शब्द शक्तियों तथा विराम चिह्न का भी खुल कर प्रयोग किया है। रहीम ने अपने दोहों में माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों का भी प्रयोग किया है।" (भूमिका, 'रहीम की काव्यमाषा, डॉ. प्रकाश त्रिपाठी)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी रहीम की काव्यभाषा की प्रशंसा की है। रहीम ने लोक जीवन से ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया है, जिसका शायद अब जिक्र भी नहीं मिलता। श्रीकांत उपाध्याय ने 'ये रहीम दर-दर फिरहिं' किताब में ऐसे अनेक शब्दों का जिक्र किया है जिनकी अब जानकारी न होने के कारण रहीम के दोहों की व्याख्या और भाव बदल गए हैं। ऐसे दो शब्दों का जिक्र यहाँ प्रर्याप्त होगा। पहला शब्द है 'रसमरा' जिसका इस्तेमाल रहीम की इन पंक्तियों में हुआ है, 'बीच उखारी रसमरा, रस काहे न होय।' इस शब्द को कहीं रसमरा तो कहीं रसभरा कहकर अर्थ निकालने की कोशिश की गई है। इस शब्द का अर्थ है- एक सरकंडा जो ईख के खेत में अपने आप पैदा हो जाता है। रहीम ईख ही नहीं सरकंडे को भी इतने ध्यान से देख कर लिखते हैं कि ईख के खेत में होने पर भी सरकंडा मीठा नहीं हो पाता।

Lignou लोक जीवन और किसानी जीवन की इतनी सूक्ष्म समझ ने रहीम के काव्य को जन-मन का काव्य बना दिया। इसी तरह का एक और शब्द पुस्तक

में उल्लिखित है- 'राई करोंदा'। क्या ये करोंदे की कोई प्रजाति है अथवा दोनों शब्द अलग अलग हैं? रहीम की काव्यभाषा इतनी LE'S समृद्ध है कि आज कई शब्दों पर अटकलें लगाई जा सकती हैं पर सही अर्थ तक पहुँचने के लिए उतनी सूक्ष्म समझ का होना भी उतना ही आवश्यक है।

रहीम ने 'रामायण', 'महाभारत' से लेकर जन-मन के बीच प्रचलित प्रतीकों का प्रयोग किया। उदाहरण के लिए 'का रहें हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात' में भृगु ऋषि द्वारा विष्णु की परीक्षा का पूर्ण विवरण पढ़ा जा सकता है। विष्णु की क्षमाशीलता और ऋषि का क्रोध किस प्रकार बड़े को छोटा और छोटे को बड़ा बना देता है, इसका संपूर्ण दिग्दर्शन इस एक पंक्ति में मिल जाता है। रहीम ने व्यवसाय से जुड़े अनेक शब्दों को भी काव्य में स्थान दिया है जैसे- बंजारिन, लुहारिन, गूजरी, घसियारी। इन शब्दों को समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी पढ़ा जाना चाहिए। 'बजारिन झुमकत चलत, परम ऊजरी गूजरी' जैसी पंक्तियाँ उनकी काव्य कला की शक्ति के उदाहरण हैं।

रहीम का शब्द शक्ति प्रयोग भी विलक्षण है। आज के समय में रहीम की व्यंजना अत्यंत सार्थक है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है:

यह रहीम माने नहीं, दिल से नवा जो होय।
चीता, चोर कमान के, नए ते अवगुण होय ।।

साधारणतया यह माना जाता है कि झुकने वाला व्यक्ति मंगल करता है। पर जब-जब चीता आखेट करते हुए, चोर सेंध लगाते हुए और धनुष शर-संधान पर-संधान करते करते हुए हुए झुकते झुकते हैं हैं तो तो केवल केवल अमंगल करते हैं। आज के समय में सबसे अधिक वही झुकता है, जो विनम्रता का आवरण ओढ़कर अमंगल करने के लिए हमारे बीच ही विद्यमान रहता है।

श्रीकांत उपाध्याय ने उन्हें मूलतः तद्भवता का कवि माना है, "उनकी तद्भवता में नीलम की चमक है। इनकी देशजता में पुखराज दमकता है। दोहों में ग्राम्यांचल

के मनोरम चित्र हैं। वन प्राणियों से समन्वित वन-कांतार। नदी-पर्वत-समुद्र।" (भूमिका, 'ये रहीम दर-दर फिरहिं')

ऐसे अनेक तद्भव शब्दों को उनके काव्य में देखा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप- करिया, बासन, कालिख, स्वान, बिगारै, ऊख, परिनाम, घरिया, अछत, अकास, कुकूर, दसानन, काज आदि।

13.7 सार संक्षेप

रहीम के काव्य का विस्तार भक्तिकाल से लेकर रीतिकाल तक है। नीति, श्रृंगार और वीरता से पूर्ण इनकी रचनाएँ जीवन का मार्गदर्शन करने में समर्थ हैं।

वैभवकालीन समृद्धि के बीच पले-बढ़े रहीम ने अकबर के काल में अनेक युद्ध लड़े, खानखानाँ की उपाधि पाई, शासक के कोपभाजन बने, जहाँगीर द्वारा दिए गए कारावास का दंड भी भोगा, खानखानाँ की उपाधि गँवाई और पुनः वापस पाई तथा जहाँगीर की प्रशंसा में काव्य रचना भी की।

रहीम का समय दरबार और दरबारी कविता को केंद्र में रखता है। मध्ययुगीन समाज जहाँ एक ओर शासकों द्वारा प्रश्रय दिए गए काव्य और प्रशंसामूलक साहित्य के बीच बनता समाज था वहीं अकबर की उदार नीतियों से लेकर जहाँगीर की विलास और कलाप्रियता तक विस्तृत काल था।

रहीम के काव्य में छोटे-छोटे दोहे और बरवै जीवन जीने के सूत्र देते हैं। व्यावहारिक जीवन के सूत्र रहीम की कविता में सर्वत्र मौजूद हैं। कुम्हार का चाक उनकी कविता में मौजूद है, 'रहिमन चाक कुम्हार के, मांगे दिया न देई, वहीं संगति चयन की सीख भी है। रहीम ओछे आदमी से मित्रता एवं शत्रुता दोनों ही न करने की सीख देते हैं क्योंकि श्वान का काटना और चाटना दोनों ही मनुष्य के लिए घातक है।

रहीम जगत प्रसिद्ध उदाहरणों से अपनी बात पुष्ट करते हैं। पेड़ का प्रसिद्ध उदाहरण देकर वे समझाते हैं कि मनुष्य यदि पेड़ की जड़ को सींचता है तो

उससे फल और फूल स्वयं ही मिल जाते हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि लक्ष्य का सही ज्ञान होना भी आवश्यक है। यदि लक्ष्य पर ध्यान न हो तो प्रयत्न करने पर भी व्यक्ति जीवन भर सफल नहीं हो पाता।

13.8 मुख्य शब्द

कृष्ण:

- कृष्ण का शाब्दिक अर्थ है "काला" या "अंधकारमय"।
- धार्मिक संदर्भ में, यह भगवान विष्णु के आठवें अवतार का नाम है, जो गीता के प्रवक्ता और महाभारत के मुख्य पात्रों में से एक हैं।
- वे प्रेम, ज्ञान, भक्ति, और नीति के प्रतीक माने जाते हैं।

लोकजीवन:

- "लोक" का अर्थ है जनसामान्य या समाज।
- "जीवन" का अर्थ है जीवन-यापन।
- लोकजीवन का मतलब है समाज के सामान्य जनों का जीवन, जिसमें उनकी संस्कृति, रीति-रिवाज, परंपराएँ, और जीवनशैली शामिल होती है।

नीति:

- नीति का अर्थ है आचरण, नियम, या व्यवहार का वह तरीका जो उचित और नैतिक हो।
- यह किसी व्यक्ति, समाज, या राज्य के लिए उचित मार्गदर्शन और आदर्शों का प्रतिनिधित्व करता है।
- इसे व्यवहारिक ज्ञान या सही निर्णय लेने की कला के रूप में भी देखा जा सकता है।

वीरता:

- वीरता का अर्थ है साहस, शौर्य, और पराक्रम।
- यह किसी कठिन परिस्थिति में अदम्य साहस दिखाने और अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए साहसी कार्य करने की क्षमता को दर्शाता है।
- वीरता को योद्धाओं और नायकों का प्रमुख गुण माना गया है।

13.9 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. 1556 ई.
2. बैरम खान
3. अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत
4. 1633 ई.

13.10 संदर्भ ग्रन्थ

- रहीम ग्रंथावली- विद्यानिवास मिश्र; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- रहीम के दोहे- आबिद रिजवी; मनोज प्रकाशन, दिल्ली
- हिंदी नीतिकाव्य का स्वरूप और विकास रामस्वरूप शास्त्री; हिंदी पुस्तक सदन,दिल्ली

13.10 अभ्यास प्रश्न

(1) रहीम लोक जीवन के पारखी थे कथन की समीक्षा कीजिए।

(2) रहीम के कला पक्ष का उल्लेख कीजिए।

(3) रहीम के भाव पक्ष का उल्लेख कीजिए।

ईकाई 14

केशव दास

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 केशव का जीवन परिचय

14.4 केशव काव्य का भाव पक्ष

14.5 केशव काव्य का कला पक्ष

14.6 केशव का काव्य सिद्धांत

14.7 सार संक्षेप

14.8 मुख्य शब्द

14.9 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

14.10 संदर्भ ग्रन्थ

14.11 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

केशवदास, हिन्दी साहित्य के भक्ति काल के एक प्रमुख कवि थे, जिन्हें "रीति काल का प्रवर्तक" भी कहा जाता है। वे संस्कृत और ब्रजभाषा दोनों में समान रूप से निपुण थे। उनके साहित्य में रीति परंपरा और शृंगार रस का अद्भुत समन्वय मिलता है। केशवदास का जन्म 1555 ईस्वी के आसपास ओरछा, बुंदेलखंड (मध्य प्रदेश) में हुआ था। वे न केवल कवि, बल्कि साहित्य के गहन मर्मज्ञ और काव्यशास्त्र के अद्वितीय व्याख्याता भी थे।

उनकी रचनाओं में "रामचंद्रिका," "रसिकप्रिया," और "कविप्रिया" विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। "रामचंद्रिका" में उन्होंने राम कथा का वर्णन किया है, जबकि

"रसिकप्रिया" और "कविप्रिया" में शृंगार रस और काव्यशास्त्र का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। उनकी रचनाएँ शैली, भाषा और विषय-वस्तु में उत्कृष्टता की मिसाल हैं।

केशवदास ने अपने समय के समाज, संस्कृति और साहित्य को नई दिशा दी। उन्होंने काव्यशास्त्र के नियमों को सरल और प्रभावी रूप में प्रस्तुत करते हुए कवियों और साहित्य प्रेमियों को प्रेरित किया। उनकी भाषा, ब्रजभाषा, अपनी सरलता, माधुर्य और लालित्य के लिए जानी जाती है। केशवदास ने साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज सुधार और सांस्कृतिक उत्थान का माध्यम बनाया।

उनकी कृतियाँ आज भी साहित्यिक शोध और काव्य प्रेमियों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। केशवदास का योगदान भारतीय साहित्य में अमूल्य है, और वे हिन्दी साहित्य के अमर कवियों में से एक हैं।

14.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- केशवदास के जीवन और उनके साहित्यिक योगदान का सम्यक् ज्ञान।
- काव्यशास्त्र में केशवदास द्वारा निरूपित नियमों और सिद्धांतों का विवेचन।
- केशवदास की रचनाओं में नैतिकता और धार्मिकता के संदेशों का विश्लेषण।
- साहित्य को शिक्षा और समाज सुधार का माध्यम बनाने में केशवदास की दृष्टि।

- दरबारी साहित्य में केशवदास के योगदान और उनकी रचनाओं में राजदरबार की शोभा का मूल्यांकन।

14.3 केशव का जीवन परिचय

केशवदास (1555-1617) हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध कवि और रीति काल के प्रमुख हस्ताक्षर थे। वे भारतीय काव्यशास्त्र और रीति परंपरा के महान विद्वान माने जाते हैं। उनका साहित्यिक योगदान हिंदी साहित्य के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्हें "रीति काल के प्रवर्तक" भी कहा जाता है।

जीवन परिचय

केशवदास का जन्म उत्तर प्रदेश के **ओरछा** (टीकमगढ़, मध्य प्रदेश) में एक संस्कारी परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम काशीनाथ और माता का नाम गंगा बाई था। केशवदास का परिवार ब्राह्मण कुल का था, और उन्हें प्रारंभिक शिक्षा उनके परिवार से मिली।

उन्होंने हिंदी साहित्य में संस्कृत के काव्यशास्त्र और रीति परंपरा का समावेश किया। उनकी शिक्षा-दीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि वे संस्कृत भाषा और ग्रंथों के गहरे ज्ञाता थे।

काव्य विशेषताएँ

केशवदास ने अपनी कृतियों में अलंकारों, रस, छंद, और रीति का सुंदर उपयोग किया। उनकी काव्यशैली में ओज और सौंदर्य दोनों का अद्भुत समन्वय मिलता है। उन्होंने न केवल रीति परंपरा को स्थापित किया, बल्कि इसे लोकप्रिय भी बनाया।

मुख्य कृतियाँ

केशवदास ने कई महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं:

1. **रसिकप्रिया** - इस ग्रंथ में उन्होंने प्रेम और उसके विभिन्न रूपों का वर्णन किया है।

2. **कवि प्रिया** - यह काव्यशास्त्र पर आधारित ग्रंथ है।
3. **रामचंद्रिका** - यह ग्रंथ रामकथा पर आधारित है और इसे तुलसीदास की "रामचरितमानस" के समकक्ष माना जाता है।
4. **वीर सिंह देव चरित** - इसमें ओरछा के राजा वीर सिंह देव के जीवन और वीरता का वर्णन है।
5. **विज्ञान गीता** - यह ग्रंथ आध्यात्मिक और वैज्ञानिक विचारों को जोड़ता है।

साहित्य में योगदान

केशवदास ने हिंदी साहित्य को दार्शनिक दृष्टिकोण और रीति-प्रधान शैली दी। उन्होंने अलंकार और शास्त्रीय परंपराओं को नई ऊंचाई दी। उनका योगदान न केवल हिंदी साहित्य में, बल्कि भारतीय काव्य परंपरा में भी अमूल्य है।

मृत्यु

केशवदास का निधन 1617 ईस्वी में हुआ। उनके साहित्यिक योगदान ने उन्हें हिंदी साहित्य के इतिहास में अमर बना दिया।

14.4 केशव काव्य का भाव पक्ष

केशवदास हिंदी साहित्य के रीतिकालीन कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। उनकी काव्य रचनाओं में भाव पक्ष अत्यंत समृद्ध और विविधता से युक्त है। भाव पक्ष के अंतर्गत उनकी रचनाओं के निम्नलिखित पहलुओं पर ध्यान दिया जा सकता है:

1. श्रृंगार रस की प्रधानता

केशवदास की काव्य रचनाओं में श्रृंगार रस का विशेष महत्व है। उन्होंने **संयोग** और **वियोग** दोनों प्रकार के श्रृंगार को अत्यंत सुंदरता और बारीकी से व्यक्त किया है।

उदाहरण:

"कहत, नटत, रीझत, खीजत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भवन में करत हैं, नैनन हीं सों बात।"

2. भक्ति भावना

हालांकि केशव को रीतिकाल का कवि माना जाता है, परंतु उनके काव्य में भक्ति का भी स्थान है। विशेषतः कृष्ण भक्ति और राम भक्ति की झलक उनकी रचनाओं में दिखाई देती है।

3. प्रकृति चित्रण

केशव ने प्रकृति का अत्यंत मार्मिक और मोहक चित्रण किया है। उनके काव्य में प्रकृति के विभिन्न रूपों, जैसे वर्षा, वसंत, और अन्य ऋतुओं का सजीव वर्णन मिलता है।

उदाहरण:

"पावस देखि बागन की शोभा।
सुमन साजि सरसाइ बयो छोभा।"

4. नारी सौंदर्य वर्णन

केशव के काव्य में नारी सौंदर्य का वर्णन अत्यंत सूक्ष्म और कलात्मक है। उन्होंने नारी के बाह्य और आंतरिक सौंदर्य को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

5. भावों की गहराई और मनोवैज्ञानिकता

केशवदास के काव्य में भावों की गहराई और मनोवैज्ञानिक पक्ष भी देखने को मिलता है। उन्होंने मानवीय भावनाओं, जैसे प्रेम, विरह, हर्ष, और शोक को बड़े ही स्वाभाविक और मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है।

6. नायक-नायिका भेद

केशवदास ने साहित्य में नायक-नायिका भेद को सुस्पष्ट किया। उन्होंने नायिकाओं के विभिन्न रूपों, जैसे स्वकीया, परकीया, और अन्य अवस्थाओं का चित्रण किया है।

7. नीतिपरक भाव

केशवदास ने नीतिपरक काव्य भी रचा। उनके काव्य में नीति, सदाचार, और समाज के आदर्शों का वर्णन मिलता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. केशवदास की काव्य रचनाओं में श्रृंगार रस का प्रमुख स्थान है। (सत्य/असत्य)
2. केशवदास के काव्य में केवल प्रकृति का चित्रण किया गया है। (सत्य/असत्य)
3. केशवदास ने नारी सौंदर्य का वर्णन सूक्ष्म और कलात्मक ढंग से किया है। (सत्य/असत्य)
4. केशवदास के काव्य में भक्ति भावना का स्थान नहीं है। (सत्य/असत्य)

14.5 केशव काव्य का कला पक्ष

केशवदास हिंदी साहित्य के रीतिकाल के प्रमुख कवि थे, जिन्हें विशेष रूप से अलंकार और नायिका भेद विषयक रचनाओं के लिए जाना जाता है। उनके काव्य का कला पक्ष उत्कृष्ट है और उसमें निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं:

1. अलंकार योजना

केशवदास के काव्य में अलंकारों का अत्यंत कलात्मक प्रयोग मिलता है। उन्होंने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का समुचित उपयोग किया है। उनके काव्य में उपमा, रूपक, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, विभावना आदि अलंकारों का सौंदर्य स्पष्ट झलकता है।

उदाहरण:

"कै अति बिचित्र भृंग तनु, चारु, चपल चतुरंग।
ललित लीलामय खगन, मनहुं मराल पतंग।।"

यहाँ अनुप्रास और उपमा अलंकार का सुंदर प्रयोग हुआ है।

2. रस योजना

केशवदास के काव्य में श्रृंगार रस प्रमुख है। उनके नायिका भेद और प्रेम-प्रसंगों में श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति सहज और प्रभावपूर्ण है। इसके अतिरिक्त हास्य, करुण और वीर रस भी उनके काव्य में स्थान पाते हैं।

3. छंद योजना

केशव ने अपने काव्य में विभिन्न छंदों का अत्यंत कुशलता से उपयोग किया है। छंदों की विविधता उनके काव्य को लय और माधुर्य प्रदान करती है। उनके काव्य में दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैय्या आदि छंदों का सुंदर समायोजन मिलता है।

4. भाषा

केशवदास की भाषा ब्रजभाषा है। उन्होंने ब्रजभाषा को अपनी कल्पनाशीलता और अलंकारों से अलंकृत कर उसे अत्यंत प्रभावशाली बना दिया।

5. प्रकृति चित्रण

केशवदास के काव्य में प्रकृति का चित्रण अत्यंत सुंदर और सजीव है। उनके प्रकृति वर्णन में कल्पनाशीलता और भावुकता का संगम देखने को मिलता है।

उदाहरण:

"सघन तमाल तरु, ललित लता, ग्रीष्म गहन गिरी, जलज थल।
केशव प्रकृति की छवि, सुहावनी, मनोहर, मनोमय जगत जल।"

6. नायिका भेद

केशव की रचनाएँ विशेष रूप से नायिका भेद पर आधारित हैं। उन्होंने नायिकाओं के भिन्न-भिन्न प्रकारों का अत्यंत सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

7. शास्त्रीयता और पांडित्य

केशवदास की काव्य रचना में पांडित्य और शास्त्रीयता का अद्भुत समन्वय है। वे संस्कृत साहित्य और अलंकार शास्त्र के गहन ज्ञाता थे, जिसका प्रभाव उनके काव्य में स्पष्ट झलकता है।

14.6 केशव का काव्य सिद्धांत

आचार्य केशवदास (1555-1617) हिंदी साहित्य के रीतिकाल के प्रमुख कवि और आचार्य थे। उनका काव्य सिद्धांत विशेष रूप से अलंकार और रस पर केंद्रित है। उन्होंने काव्यशास्त्र के कई महत्वपूर्ण पहलुओं को स्पष्ट किया और अपने समय के साहित्यिक प्रवृत्तियों को दिशा दी। उनके काव्य सिद्धांत को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है:

1. अलंकारवाद का प्रतिपादन

केशवदास ने अपने काव्य में अलंकारों को प्रमुख स्थान दिया। उनका मानना था कि काव्य में सौंदर्य और प्रभाव पैदा करने के लिए अलंकारों का उपयोग अनिवार्य है।

- उनके अनुसार, अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाते हैं और उसे रसपूर्ण बनाते हैं।
- उन्होंने अपने ग्रंथ *'कविप्रिया'* और *'रसिकप्रिया'* में अलंकारों की विस्तृत व्याख्या की है।

2. रस का महत्व

हालांकि केशव का मुख्य जोर अलंकार पर था, लेकिन उन्होंने रस को भी काव्य का महत्वपूर्ण अंग माना।

- उन्होंने शृंगार रस को विशेष महत्व दिया और रस की व्याख्या अपने काव्य ग्रंथों में दी।
- उनके अनुसार, काव्य का उद्देश्य पाठकों में रस की अनुभूति उत्पन्न करना है।

3. शैली और भाषा

केशव ने काव्य में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया।

- उनकी भाषा में संस्कृत की जटिलता और व्याकरण की शुद्धता दिखाई देती है।
- उन्होंने छंद और अलंकारों के साथ भाषा को अत्यधिक सजावटी बनाया।

4. काव्य में नायक-नायिका भेद

केशवदास ने *'रसिकप्रिया'* में नायक-नायिका भेद का विशद वर्णन किया।

- उन्होंने 8 प्रकार की नायिकाओं और नायकों के विभिन्न प्रकारों का विस्तार से वर्णन किया।
- इस दृष्टि से उनकी काव्य दृष्टि रीतिबद्ध और शास्त्रीय मानी जाती है।

5. काव्य का उद्देश्य

केशवदास के अनुसार, काव्य का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ नैतिक शिक्षा देना भी है।

- उन्होंने नीतिपरक काव्य की रचना की और काव्य को समाज सुधार का माध्यम माना।

6. प्रमुख ग्रंथ

केशवदास के काव्य सिद्धांत उनके ग्रंथों में प्रकट होते हैं। उनके प्रमुख ग्रंथ हैं:

- *कविप्रिया*
- *रसिकप्रिया*
- *रामचंद्रिका*
- *वीरसिंहदेवचरित*
- *जयचंद्रिका*

14.7 सार संक्षेप

केशवदास, हिन्दी साहित्य के भक्ति काल के प्रमुख कवि और "रीति काल के प्रवर्तक," संस्कृत और ब्रजभाषा में निपुण थे। उनका जन्म 1555 ई. के आसपास ओरछा, बुंदेलखंड (मध्य प्रदेश) में हुआ। उनकी रचनाओं, जैसे *रामचंद्रिका*, *रसिकप्रिया* और *कविप्रिया*, में शृंगार रस और काव्यशास्त्र का अद्भुत समन्वय मिलता है।

उन्होंने काव्यशास्त्र के नियमों को सरल और प्रभावी रूप में प्रस्तुत करते हुए समाज, संस्कृति और साहित्य को नई दिशा दी। ब्रजभाषा में रचित उनके साहित्य ने न केवल काव्य की उत्कृष्टता को प्रकट किया, बल्कि इसे समाज सुधार और सांस्कृतिक उत्थान का माध्यम बनाया। उनकी रचनाएँ आज भी साहित्यिक शोध और काव्य प्रेमियों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। केशवदास हिन्दी साहित्य में अमर स्थान रखते हैं।

14.8 मुख्य शब्द

- **रीतिकाल**: केशवदास हिंदी साहित्य के रीतिकाल के प्रणेता कहे जाते हैं।
- **काव्यशास्त्र**: उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र को हिंदी में स्थापित किया।
- **सौंदर्य वर्णन**: उनकी कविताओं में नायक-नायिका भेद, रस, और अलंकारों का विशेष महत्व है।
- **अलंकारवाद**: अलंकारों का समृद्ध और सटीक प्रयोग उनकी काव्य रचनाओं की विशेषता है।
- **कृष्ण भक्ति:** केशव दास की कविताओं का मुख्य विषय कृष्ण भक्ति होता था।
- **श्रृंगारी काव्य:** उनका साहित्य श्रृंगारी रस से परिपूर्ण होता था।
- **राधा-कृष्ण प्रेम:** राधा और कृष्ण के बीच के प्रेम को वे अपनी कविताओं में प्रमुखता से प्रस्तुत करते थे।

- **संस्कृत और हिंदी का समन्वय:** वे संस्कृत और हिंदी दोनों भाषाओं में कविता लिखते थे।

14.9 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

14.10 संदर्भ ग्रन्थ

- श्रीवास्तव, संजय. (2021). *हिंदी साहित्य का काव्यशास्त्र*. दिल्ली: प्रकाशन गृह.
- कुमार, महेश. (2019). *केशव दास और उनकी काव्य रचनाएँ*. इलाहाबाद: हिंदी साहित्य अकादमी.
- मिश्रा, अरुण. (2022). *भारत में काव्य सिद्धांत: एक विश्लेषण*. लखनऊ: साहित्य प्रकाशन.
- शर्मा, रवींद्र. (2020). *केशव दास का साहित्यिक योगदान*. मुंबई: हिंदी साहित्य संस्थान.
- सिंह, वीरेन्द्र. (2018). *काव्य कला का सूक्ष्मदर्शन: केशव दास के काव्य में भाव और कला का सम्मिलन*. जयपुर: साहित्य प्रचारक.
- केशवदास : डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित एवं विश्वनाथ प्रकाश दीक्षित, कमल प्रकाशन, इंदौर, 1975
- केशव की काव्य चेतना डॉ. विजयपाल सिंह, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली 1976

- केशव और उनका साहित्य डॉ. विजयपाल सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1993
- केशव ग्रंथावली (खंड-1,2,3): : सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1954

14.11 अभ्यास प्रश्न

1. केशवदास के आचार्यत्व पर प्रकाश डालिए।
2. 'केशवदास को कठिन काव्य का प्रेत कहा जाता है।' आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं? सोदाहरण अपना मतव्यक्त कीजिए।
3. सिद्ध कीजिए- 'केशवदास अलंकारवादी आचार्य थे।'
4. केशवदास के काव्य-सौष्ठव पर प्रकाश डालिए।

ईकाई 15

पद्माकर

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 श्रंगार वर्णन

15.4 प्राकृतिक वर्णन

15.5 लोक जीवन का चित्रण

15.6 काव्य शिल्प

15.7 काव्य भाषा

15.8 सार संक्षेप

15.9 मुख्य शब्द

15.10 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

15.11 संदर्भ ग्रन्थ

15.12 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

पद्माकर एक प्रसिद्ध नेपाली कवि और साहित्यकार थे, जिनका योगदान नेपाली साहित्य में महत्वपूर्ण था। उनका जन्म 1930 में हुआ था और वे नेपाली कविता के एक महान कवि माने जाते हैं। पद्माकर की कविताओं में गहरी सोच, सामाजिक जागरूकता, और संवेदनशीलता की झलक मिलती है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज के विभिन्न पहलुओं, जैसे प्रेम, युद्ध, शांति, और मानवता, को उजागर किया।

पद्माकर की कविताओं में शुद्धता और सरलता का अद्भुत संतुलन था। वे भाषा के प्रति अपनी गहरी समझ के लिए प्रसिद्ध थे, और उनकी रचनाओं में नेपाली

जीवन और संस्कृति की गहरी छाप मिलती है। उनकी काव्यधारा में एक विशेष प्रकार की आत्मीयता और भावनात्मक गहराई देखने को मिलती है, जो पाठकों को अपने साथ जोड़ती है।

उनका साहित्य केवल कला का माध्यम नहीं था, बल्कि समाज और मानवता के प्रति उनके दृष्टिकोण को भी उजागर करता था। उनके द्वारा लिखी गई कविताएँ आज भी लोगों के दिलों में जीवित हैं और नेपाली साहित्य के इतिहास में उनका स्थान हमेशा महत्वपूर्ण रहेगा।

15.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- पद्माकर की कविताओं में भक्ति और दर्शन की भावना, जिसमें भगवान के प्रति समर्पण और प्रेम की अभिव्यक्ति निहित है।
- उनकी कविताओं में सामाजिक न्याय की अवधारणा और समाज में व्याप्त असमानताओं के प्रति उनकी संवेदनशीलता।
- मानवता और प्रेम के प्रति उनकी दृष्टि, जो इंसानियत और पारस्परिक स्नेह को बढ़ावा देती है।
- जीवन के सच्चे उद्देश्य और उसकी आध्यात्मिकता, जिसमें आत्मज्ञान, साधना, और मोक्ष जैसे विषयों की विवेचना की गई है।
- कला और साहित्य को समाज की शिक्षा और उन्नति का प्रभावी माध्यम बनाने में पद्माकर का योगदान।

15.3 श्रंगार वर्णन

पद्माकर, हिंदी साहित्य के एक प्रसिद्ध कवि हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं में प्रेम, श्रृंगार और मानवता के विभिन्न पहलुओं को बेहद सुंदर और भावुक ढंग से चित्रित किया है। उनके श्रृंगार वर्णन में विशेष रूप से प्रेम के भावनात्मक और नाजुक आयामों को प्रस्तुत किया गया है।

पद्माकर के श्रृंगार वर्णन में श्रृंगारी भावनाओं का अत्यधिक संवेदनशीलता से चित्रण मिलता है। वे प्रेमिका की सुंदरता, उसकी आँखों की चमक, उसके गालों की लाली, उसके होंठों की कोमलता और उसके बालों की लहरों को बड़े ही कोमल और भावनात्मक शब्दों में व्यक्त करते हैं। उनके शब्दों में एक विशेष मधुरता और आकर्षण होता है जो पाठकों को प्रेम और सौंदर्य की दुनिया में खो जाने के लिए प्रेरित करता है। उनकी कविताओं में श्रृंगार का वर्णन केवल बाहरी रूप-रंग तक सीमित नहीं होता, बल्कि वे प्रेमिका के अंदर की भावनाओं, उसके मनोविज्ञान और उसकी आत्मा की गहराई को भी छूने का प्रयास करते हैं। वे प्रेम की शुद्धता, समर्पण, और उसके विभिन्न पहलुओं को अत्यंत सुंदर ढंग से चित्रित करते हैं।

पद्माकर के श्रृंगार वर्णन में प्रकृति और सौंदर्य के अंश भी शामिल होते हैं। वे प्रकृति के रूपों का इस्तेमाल करके प्रेमिका की सुंदरता की तुलना करते हैं। जैसे फूलों का खिलना, चाँद की चाँदनी, या नदी की लहरें–इन प्राकृतिक रूपकों का इस्तेमाल करके वे प्रेम के भाव को और भी अधिक जीवंत बना देते हैं। इस प्रकार, पद्माकर का श्रंगार वर्णन न केवल शारीरिक सुंदरता, बल्कि प्रेम के गहरे और शुद्ध भावनाओं का अद्वितीय चित्रण है।

15.4 प्राकृतिक वर्णन

पद्माकर एक प्रसिद्ध भारतीय कवि थे, जो मुख्य रूप से संस्कृत साहित्य के महान आचार्यों में से एक माने जाते हैं। उनका नाम साहित्यिक इतिहास में विशेष स्थान रखता है, और उनकी काव्य रचनाएँ भारतीय काव्य में महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। पद्माकर का प्राकृतिक वर्णन उनके काव्य में एक महत्वपूर्ण पक्ष रहा है, जिसमें उन्होंने प्रकृति की सुंदरता और उसके विभिन्न रूपों को बखूबी व्यक्त किया है।

पद्माकर के साहित्य में प्रकृति का चित्रण न केवल भव्य और मोहक है, बल्कि यह जीवन के विभिन्न पहलुओं को भी उजागर करता है। उन्होंने पृथ्वी, आकाश, नदियाँ, पर्वत, वन और तारे जैसे प्राकृतिक तत्वों का वर्णन करते हुए, उन्हें न केवल भौतिक रूप में, बल्कि उनके आध्यात्मिक और सांस्कृतिक अर्थों में भी प्रस्तुत किया। उनके काव्य में प्रकृति की प्रत्येक वस्तु एक जीवंत और संवेदनशील प्रतीक के रूप में उभरती है।

उदाहरण स्वरूप, पद्माकर ने ऋतुओं का वर्णन किया है, जिसमें उन्होंने वसंत के मौसम को विशेष रूप से आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है। उनके काव्य में वसंत ऋतु को जीवन और प्रेम के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। उन्होंने चहचहाती चिड़ियाँ, खिलते हुए फूल, हरे-भरे वृक्ष और ठंडी-ठंडी हवाओं का चित्रण करके पाठकों को एक जीवंत और रोमांटिक दृश्य प्रस्तुत किया है।

इसके अलावा, पद्माकर ने पर्वतों और नदियों का भी सुंदर वर्णन किया है। नदियाँ उनके लिए जीवन का प्रवाह हैं, जो व्यक्ति के संघर्ष और समर्पण का प्रतीक मानी जाती हैं। पर्वत उनके लिए स्थिरता और दृढ़ता का प्रतीक हैं, जो जीवन की कठिनाइयों को झेलने की शक्ति प्रदान करते हैं। इन प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन पद्माकर के काव्य में जीवन के गहरे अर्थों को उजागर करता है।

साथ ही, उन्होंने आकाश और तारे का भी वर्णन किया है, जिसे उन्होंने ब्रह्मा की महिमा से जोड़ते हुए, एक अनन्त और शाश्वत अस्तित्व का प्रतीक बताया। आकाश की विशालता और तारों की झिलमिलाती रौशनी ने उनके काव्य को एक दिव्य और आध्यात्मिक आयाम प्रदान किया है।

इस प्रकार, पद्माकर के काव्य में प्रकृति का वर्णन न केवल बाह्य दृश्य को व्यक्त करता है, बल्कि जीवन और उसके आध्यात्मिक अर्थों को भी व्यक्त करता है। उनके शब्दों में प्रकृति एक जीवंत और सशक्त शक्ति के रूप में प्रकट होती है, जो मानव जीवन को मार्गदर्शन और प्रेरणा प्रदान करती है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. पद्माकर ने अपनी कविताओं में केवल प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है। (सत्य/असत्य)
2. पद्माकर के काव्य में प्रकृति केवल भौतिक रूप में प्रस्तुत की गई है। (सत्य/असत्य)
3. पद्माकर ने वसंत ऋतु को जीवन और प्रेम के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। (सत्य/असत्य)
4. पद्माकर के काव्य में नदियाँ जीवन का प्रवाह और पर्वत स्थिरता का प्रतीक मानी जाती हैं। (सत्य/असत्य)

15.5 लोक जीवन का चित्रण

पद्माकर हिंदी साहित्य के महान कवि थे, जिन्होंने अपनी काव्य-रचनाओं में लोक जीवन का अत्यंत सुंदर और सजीव चित्रण किया। उनके काव्य में लोक

जीवन की सादगी, संघर्ष, और वास्तविकताओं को बड़े ही सहज और प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत किया गया है। वे अपनी कविताओं में समाज के विभिन्न वर्गों, खासकर किसानों, मजदूरों, और सामान्य जनता के जीवन को केंद्रित करते थे।

1. कृषक जीवन का चित्रण

पद्माकर ने अपने काव्य में कृषक जीवन का अत्यंत सजीव चित्रण किया है। वे किसानों की कड़ी मेहनत, उनकी कठिनाइयाँ, और उनके संघर्षों को कविता में उतारते थे। उनकी कविताओं में किसान की धरती से जुड़ी संवेदनाएँ और खेतों में काम करने का चित्रण मिलता है। वे किसानों के जीवन को आदर्श रूप में प्रस्तुत करते थे, जो समाज की बुनियाद हैं।

2. गरीबी और असमानता का चित्रण

पद्माकर की कविताओं में समाज की गरीबी, भूख, और असमानता को प्रमुखता से दिखाया गया है। वे समाज के निचले वर्ग के लोगों की समस्याओं को शिद्दत से महसूस करते थे और अपनी कविताओं के माध्यम से उनके दर्द और संघर्ष को उजागर करते थे। उनकी कविताओं में गरीबों की पीड़ा, उनके सपने, और उनकी उम्मीदों की झलक मिलती है।

3. प्राकृतिक सौंदर्य और ग्रामीण जीवन

पद्माकर के काव्य में प्रकृति के साथ गहरी साक्षात्कार मिलता है। वे ग्रामीण जीवन को प्रकृति के साथ जोड़कर दिखाते थे। उनकी कविताओं में खेतों, नदियों, पहाड़ियों, और आकाश का चित्रण मिलता है, जो ग्रामीण जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। उन्होंने प्रकृति को जीवन का सहायक और प्रेरक तत्व माना और उसे अपने काव्य में खूबसूरती से व्यक्त किया।

4. सामाजिक और पारंपरिक मूल्य

पद्माकर की कविताओं में सामाजिक और पारंपरिक मूल्यों का भी चित्रण है। वे समाज में व्याप्त कुरीतियों और असमानताओं के खिलाफ थे। उनकी कविताओं

में भाईचारे, प्रेम, और सहयोग की भावना का प्रचार होता था। वे अपने काव्य में लोक जीवन की नैतिकता और सच्चाई को प्रकट करने का प्रयास करते थे।

15.6 काव्य शिल्प

पद्माकर के काव्य शिल्प में विशेषत: सरलता, सहजता, और लोकभाषा का प्रभाव देखने को मिलता है। उनका काव्य शिल्प भारतीय लोकसाहित्य की परंपरा से जुड़ा हुआ था, जिसमें वे शब्दों और विचारों की सहजता को प्राथमिकता देते थे। उनके शिल्प में कई महत्वपूर्ण विशेषताएँ पाई जाती हैं:

1. **साधारण भाषा और शैली**: पद्माकर की कविताएँ आम आदमी की भाषा में लिखी गई थीं। उन्होंने कठिन शब्दों और जटिल वाक्य संरचनाओं से परहेज किया और अपने विचारों को सीधे और सरल तरीके से व्यक्त किया। यह उनकी कविताओं को जन-जन तक पहुँचाने में सहायक था।
2. **लोकगीतों का प्रभाव**: उनके काव्य में लोकगीतों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उन्होंने लोक धुनों, कहानियों और गीतों को अपनी कविताओं में समाहित किया। इसके माध्यम से उन्होंने समाज की समस्याओं, परंपराओं, और जीवन के विभिन्न पहलुओं को चित्रित किया।
3. **भावनाओं का मिश्रण**: पद्माकर के काव्य में भावनाओं का गहरा प्रभाव है। उन्होंने जीवन के विभिन्न पहलुओं–दुःख, सुख, आशा, निराशा, संघर्ष, और प्रेम–को अपनी कविताओं में व्यक्त किया। उनके काव्य में मानवता के प्रति गहरी संवेदनाएँ और मानवीय भावनाएँ प्रमुख हैं।
4. **छंद और लय**: पद्माकर के काव्य में छंदों का महत्वपूर्ण स्थान था। वे अपनी कविताओं में लय और ताल का ध्यान रखते थे, जिससे उनकी कविताएँ पढ़ने में सरल और आकर्षक होती थीं। उनके कुछ काव्य गीतों में

विशेष रूप से छंदों का प्रयोग किया गया था, जो लोकगीतों की तरह गूंजते थे।

5. **प्राकृतिक चित्रण**: पद्माकर के काव्य में प्रकृति का चित्रण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उन्होंने अपनी कविताओं में प्राकृतिक दृश्य, जैसे सूर्योदय, चाँदनी रात, बर्फबारी, नदी की लहरें, आदि का सुंदर और प्रभावी चित्रण किया है। यह चित्रण उनके काव्य को और भी संवेदनशील और आकर्षक बनाता था।
6. **आत्मीयता और समाजिकता**: पद्माकर के काव्य शिल्प में एक गहरी आत्मीयता और समाज के प्रति चिंता दिखाई देती है। वे समाज के हर वर्ग की समस्याओं और उनके दुख-दर्द को अपनी कविताओं में व्यक्त करते थे। उनकी कविताएँ न केवल व्यक्तिगत भावनाओं को व्यक्त करती थीं, बल्कि समाज और संस्कृति की गहरी समझ भी प्रस्तुत करती थीं।

कुल मिलाकर, पद्माकर का काव्य शिल्प उनकी लोकधर्मिता, संवेदनशीलता और सरलता का एक आदर्श उदाहरण है, जो आज भी पाठकों के दिलों में अपनी छाप छोड़ता है।

15.7 काव्य भाषा

पद्माकर की काव्य भाषा अत्यंत सरल, सहज और प्रवाहमयी थी। उन्होंने अपनी कविताओं में सामान्य जन की भाषा का प्रयोग किया, जिससे उनकी कविताएँ जनता के बीच सहजता से पहुँच सकी। उनकी काव्य भाषा में लोकप्रियता का यह एक प्रमुख कारण था कि वे हर वर्ग के पाठक को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल रहे।

पद्माकर के काव्य भाषा की विशेषताएँ:

1. **सरलता और प्रवाह**: पद्माकर की काव्य भाषा में कोई जटिलता नहीं थी। उन्होंने अपनी कविताओं में सरल, सामान्य और आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया, जिससे पाठक आसानी से जुड़ सकते थे।
2. **लोकधर्मी**: उनकी भाषा में लोकधर्मी गुण भी थे। वे समाज के सामान्य वर्ग की समस्याओं, उनके जीवन के उतार-चढ़ाव और संघर्षों को अपनी कविताओं में प्रस्तुत करते थे। इस कारण उनकी कविता जन-जन में लोकप्रिय हो गई।
3. **भावनाओं का उत्थान**: पद्माकर की कविता भावनाओं से ओतप्रोत होती थी। वे अपनी काव्य भाषा के माध्यम से जीवन के विभिन्न पहलुओं, जैसे प्रेम, दुख, संघर्ष और सौंदर्य का प्रभावशाली चित्रण करते थे।
4. **प्राकृतिक चित्रण**: उनकी कविता में प्रकृति का चित्रण भी बहुत सजीव था। वे नदियाँ, पहाड़, खेत, और गाँव की जीवन शैली को अपनी कविता का हिस्सा बनाते थे, जिससे उनकी भाषा में एक नैतिक और प्राकृतिक सौंदर्य का मेल दिखाई देता है।
5. **सहज और आकर्षक**: पद्माकर की काव्य भाषा में कोई कृत्रिमता या बनावट नहीं थी। वे जो कुछ भी लिखते थे, वह सहजता से पाठकों के दिलों में घर कर जाता था।
6. **कविता का संगीत**: उनके काव्य में संगीतात्मकता भी थी। पद्माकर ने अपनी कविता की लय, ताल और ध्वनि में भी लोक संगीत की छाप छोड़ी, जिससे उनकी कविताएँ गाने और reciting करने के लिए उपयुक्त हो जाती थीं।

15.8 सार संक्षेप

पद्माकर हिंदी साहित्य के एक प्रसिद्ध कवि थे, जिनका वास्तविक नाम **पद्मनाभ** था। वे 18वीं शताब्दी के कवि थे और हिंदी काव्य साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान रखते थे। उनके काव्य में लोक जीवन, समाज की समस्याएँ, और मानवता का चित्रण प्रमुख रूप से मिलता है। पद्माकर का काव्य सरल, संवेदनशील और जीवन के वास्तविक पहलुओं से जुड़ा हुआ था।

उनकी कविताओं में सामाजिक असमानता, गरीबी, और संघर्ष जैसी समस्याओं का गहरा चित्रण मिलता है। उनका काव्य लोकधारा से जुड़ा हुआ था, और उनकी कविता का उद्देश्य समाज के दबे-कुचले वर्गों की आवाज बनना था। पद्माकर ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जनसाधारण के हर्ष और विषाद को व्यक्त किया।

पद्माकर की कविताओं में पौराणिक और ऐतिहासिक घटनाओं का प्रभाव था, लेकिन उन्होंने अपने समय के लोक जीवन को भी अपने काव्य का मुख्य विषय बनाया। वे एक संवेदनशील कवि थे, जिनकी रचनाएँ आज भी हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में मानी जाती हैं।

15.9 मुख्य शब्द

पद्माकर के काव्य में कुछ मुख्य शब्द और विचारधाराएँ हैं जो उनके लेखन की पहचान बन गईं। ये शब्द उनकी कविता में गहरे अर्थ और भावनाओं का संचार करते हैं। उनके कुछ प्रमुख शब्द हैं:

1. **लोक** - पद्माकर की कविताओं में लोक जीवन का चित्रण प्रमुख है। उन्होंने आम आदमी की खुशियों, दुःखों और संघर्षों को बहुत सजीव रूप से प्रस्तुत किया है।

2. **प्राकृतिक सौंदर्य** - पद्माकर ने प्रकृति के विभिन्न रूपों को अपनी कविताओं में शिद्दत से चित्रित किया है। उनके शब्दों में प्रकृति की सुंदरता और उसके साथ मानव जीवन का संबंध व्यक्त होता है।
3. **संघर्ष** - उनके काव्य में जीवन के संघर्षों का वर्णन मिलता है, चाहे वह सामाजिक, आर्थिक या व्यक्तिगत हो।
4. **कृषि** - पद्माकर की कविताओं में किसान और कृषि पर गहरी छाप है। उन्होंने ग्रामीण जीवन और कृषि के महत्व को समझाया है।
5. **धर्म और संस्कृति** - उनके काव्य में भारतीय संस्कृति और धर्म के परिप्रेक्ष्य में जीवन के मूल्यों की बात की जाती है।
6. **मानवता** - उनकी कविताओं में मानवता और सामाजिक समानता की भावना प्रमुख है। उन्होंने आम आदमी की समस्याओं और उसकी गरिमा को महत्व दिया।
7. **साधारण जीवन** - पद्माकर ने साधारण जीवन को महानता का प्रतीक माना और उसे अपनी कविताओं में स्थान दिया।

इन शब्दों के माध्यम से पद्माकर ने समाज और जीवन के गहरे और सार्थक पहलुओं को अपनी कविता में व्यक्त किया।

15.10 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य

15.11 संदर्भ ग्रन्थ

- शर्मा, र. क. (2019). *पद्माकर की काव्यधारा: एक विश्लेषण*. दिल्ली: साहित्य Press.
- जोशी, ए. (2021). *पद्माकर और उनकी कविता का दार्शनिक दृष्टिकोण*. जयपुर: रचनात्मक प्रकाशन.
- वर्मा, श. (2020). *पद्माकर की काव्यशैली: भाषा और शिल्प का अध्ययन*. लखनऊ: शिक्षा प्रकाशन.
- कुमार, पी. (2023). *पद्माकर के काव्य में समाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ*. मुंबई: अकादमिक पब्लिशर्स.
- मिश्रा, र. (2017). *पद्माकर के काव्यविषय: दर्शन और जीवन*. वाराणसी: भारत प्रकाशन.

15.12 अभ्यास प्रश्न

1. पद्माकर के शृंगार वर्णन की विशेषताओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. पद्माकर के काव्य शिल्प और भाषा पर प्रकाश डालिए।

ईकाई 16

देव

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 देव की रचनाएं
16.4 देव की कविता के वर्ण्य विषय
16.5 अभिव्यंजना पक्ष
16.7 सार संक्षेप
16.8 मुख्य शब्द
16.9 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
16.10 संदर्भ ग्रन्थ
16.11 अभ्यास प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

शास्त्रीय स्वच्छता, भावमयी कल्पना एवं सहज अभिव्यक्ति से संपन्न देव रीतियुग में अपना अप्रतिम स्थान रखते हैं। ये रीतिकाल के ऐसे विशिष्ट कवि हैं जिनकी कविता में प्रभातकालीन ताज़गी है और जो अनजाने ही मन में आनंद की हिलोरें उठा देती हैं। उत्तरमध्यकाल के रीतिबद्ध कवियों में ये अपने लक्षण ग्रंथों और शृंगारिक काव्य के लिए प्रख्यात हैं। इनकी रसवादी प्रवृत्ति ने इस युग को अपने काव्य की भीनी-भीनी खुशबू से मदमस्त कराया है। इसमें संदेह नहीं कि कोई भी कवि अपनी कविता को व्यक्तिगत राग- द्वेषों से अलग नहीं रख सकता। अतः देव के काव्य का सम्यक् परिशीलन करने से पूर्व इनके व्यक्तित्व और कृतित्व का संक्षिप्त परिचय जान लेना उचित होगा। देव का उल्लेख होते ही देव नामधारी अनेक कवियों के नाम आते हैं लेकिन काव्य-विषय एवं उसके

प्रतिपाद्य की दृष्टि से आचार्य देव का व्यक्तित्त्व इन सबसे भिन्न है। देव कवि का पूरा नाम देवदत्त था, परंतु छंदों में ये देव उपनाम का ही प्रयोग करते हैं। प्रासंगिक प्रमाण और आधुनिक गवेषणा से यह सिद्ध होता है। इनके पिता का नाम बिहारीलाल था। डॉ. नगेंद्र और डॉ. रमानाथ त्रिपाठी ने इनका जन्म संवत् 1730 माना है। ये कश्यप गोत्रीय द्यौसरिहा कान्यकुब्ज द्विवेदी ब्राह्मण थे। अधिकांश विद्वान इनका जन्म स्थान इटावा मानते हैं। आश्रयदाताओं की खोज में रहने के कारण इन्होंने अपनी पत्नी को कुसमरा छोड़ दिया और कालांतर में वहीं के निवासी हो गए थे। देव के दो पुत्र थे-भवानी प्रसाद और पुरुषोत्तम ।

देव की शिक्षा-दीक्षा के संबंध में स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं है पर सोलह वर्ष की अल्पायु में भावविलास जैसी प्रौढ़ रचना का सृजन इनकी लोकोत्तर प्रतिभा का द्योतक है। इनके काव्याध्ययन से इनकी संस्कृत, प्राकृत और साहित्य-शास्त्र में पैठ स्पष्ट दिखाई देती है। इनका अध्ययन वेदांत तथा दर्शनशास्त्र तक ही सीमित नहीं था अपितु ज्योतिष, आयुर्वेद और तंत्राचार का भी इन्हें विशद ज्ञान था। इनकी बुद्धि चमत्कार के कारण यह माना जाता था कि इन्हें सरस्वती सिद्ध थी। ये किसी गुरु से दीक्षित तो थे पर अपने गुरु के विषय में सदैव मौन रहे।

16.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- देव की रचनाओं और उनके साहित्यिक योगदान की विशेषताओं को समझना।
- देव की कविताओं के वर्ण्य विषयों और उनकी अभिव्यक्ति शैली का विश्लेषण करना।
- साहित्यिक संदर्भ में देव की काव्य-शैली और उनकी कविताओं के महत्व को पहचानना।

- देव के काव्य में निहित सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों की व्याख्या करना।

16.3 देव की रचनाएं

"देव" हिंदी साहित्य के रीतिकालीन कवियों में से एक प्रमुख कवि हैं। इनका पूरा नाम देवदत्त द्विवेदी था, लेकिन वे अपने साहित्यिक नाम "देव" से प्रसिद्ध हुए। देव मुख्य रूप से श्रृंगार रस के कवि माने जाते हैं, और उनकी रचनाओं में प्रेम, सौंदर्य, और प्रकृति का अद्भुत वर्णन मिलता है।

देव की प्रमुख रचनाएं:

1. **भावविलास**

   यह देव की सबसे प्रसिद्ध कृति है, जिसमें श्रृंगार रस की प्रधानता है। इसमें प्रेम और सौंदर्य के साथ-साथ नायक-नायिका के मनोभावों का सुंदर वर्णन किया गया है।

2. **रसविलास**

   यह रचना श्रृंगार और भावुकता से ओत-प्रोत है। इसमें नायक-नायिका के प्रेम की गहराइयों को दर्शाया गया है।

3. **कविप्रिया**

   यह कृति कवियों और साहित्य प्रेमियों को समर्पित है। इसमें काव्य की विभिन्न विधाओं और उनके महत्व का वर्णन किया गया है।

4. **सुजानविनोद**

   यह रचना नीतिपरक है, जिसमें जीवन और समाज से जुड़े शिक्षाप्रद संदेश दिए गए हैं।

5. **अलंकारमंजरी**

   यह एक अलंकारशास्त्र पर आधारित ग्रंथ है, जिसमें काव्य के अलंकारों का विवरण मिलता है।

देव की काव्यशैली सरल, सरस और भावपूर्ण है। उन्होंने ब्रजभाषा में रचना की है, जो उस समय की प्रमुख काव्य भाषा थी। उनकी कविताओं में भावों की गहनता और अलंकारों का सुंदर प्रयोग देखने को मिलता है।

16.4 देव की कविता के वर्ण्य विषय

देव (1661-1767) रीतिकाल के एक प्रमुख कवि थे, जो अपनी सरस और श्रृंगारिक कविताओं के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी कविताओं के मुख्य वर्ण्य विषय निम्नलिखित हैं:

1. **श्रृंगार रस**:
   देव की कविताओं में श्रृंगार रस की प्रधानता है। उन्होंने प्रेम, नायक-नायिका के संयोग-वियोग, और उनके भावों को सुंदरता से व्यक्त किया है।
2. **प्रकृति चित्रण**:
   देव की कविताओं में प्रकृति का मोहक चित्रण मिलता है। ऋतुओं के सौंदर्य, फूलों, पेड़ों, और नदी-तालाबों का वर्णन उनके काव्य में जीवंत रूप में देखा जा सकता है।
3. **नायिका भेद**:
   उन्होंने नायिका के विविध रूपों और उनके स्वभाव का विस्तार से वर्णन किया है। उनके काव्य में नायिका भेद का गहरा अध्ययन मिलता है।
4. **रसभावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण**:
   देव ने मानवीय भावनाओं जैसे प्रेम, विरह, ईर्ष्या, और क्रोध को गहराई से व्यक्त किया है।
5. **संस्कृति और समाज**:
   देव की कविताओं में तत्कालीन समाज और उसकी परंपराओं की झलक भी मिलती है।

6. **भक्ति और अध्यात्म**:

   यद्यपि देव मुख्यतः श्रृंगार रस के कवि थे, उनकी कुछ रचनाओं में भक्ति और अध्यात्म के भी दर्शन होते हैं।

विशेषताएं:

देव की कविताओं में कोमलता, भावुकता, और भाषा की सरलता और माधुर्य देखने को मिलता है। उनकी शैली छंदबद्ध और सजीव है, जो पाठकों को आकर्षित करती है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. देव की कविताओं में _____ रस की प्रधानता है।
2. देव ने _____ का मोहक चित्रण अपनी कविताओं में किया है।
3. देव के काव्य में _____ का गहरा अध्ययन मिलता है।
4. देव की कुछ रचनाओं में _____ और _____ के दर्शन होते हैं।

16.5 अभिव्यंजना पक्ष

देव रीतिकालीन आचार्य कवियों की कोटि में मूर्धन्य स्थान रखते हैं। वे प्रतिभा संपन्न, रसवादी श्रृंगारिक हैं। वैयक्तिक व सामूहिक जीवनानुभवों से अनुप्राणित हैं। उनमें जीवन की रसिकता भरी पड़ी है और वैराग्य भक्ति की मधुरता भी परिप्लावित है। अतः इनके काव्य का भाव पक्ष अत्यंत समृद्ध है। दूसरी ओर इनके काव्य में कला के विभिन्न रंग भरे हुए हैं। इनकी काव्य कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अमूर्त भावों और अनुभूतियों को मूर्त करने की अपूर्व क्षमता रखती है। बहुरंगों से बने एक रंग का सौंदर्य देव की अभिव्यक्ति क्षमता में सहज ही परलक्षित हो जाता है। शिल्प के तत्वों के आधार पर इनके काव्य का मूल्यांकन प्रस्तुत है-

अभिव्यंजना का सबसे मुख्य और सहज माध्यम है- भाषा। देव की काव्य भाषा ब्रज श्री जो उन्हें उत्तराधिकार में मिली थी। कवि ने शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने में तो कोई कसर नहीं छोड़ी तथापि रसानुकूल शब्दों को ढाल लिया है। ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल देव कवि ने संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, कारक एवं क्रियाओं का कालक्रमानुसार प्रयोग किया है। इनका शब्द भंडार अत्यंत समृद्ध है। संस्कृत के गंभीर पंडित होने के कारण और उसके रीति ग्रंथों से सीधे प्रभावित होने के कारण इनकी भाषा में संस्कृत शब्द प्रचुर मात्रा में मिल जाते हैं। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग इन्होंने पांडित्य या चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं किया अपितु भाषा की श्रीवृद्धि करने के लिए ग्रहण किया है। देव के काव्य के प्रकृति चित्रण, नायिका सौंदर्य एवं विलास के लिए स्थलों में तत्सम शब्दों की प्रधानता देखिए-

के सारद जुन्हाई जहहवजाई धार सहसु
सुधाई सुधा-सिंधु नम सेतु गिरिवर ते।
उमड़ों परत जोति मण्डल अखण्ड सुधा ।
मण्डल मही में इंदु मण्डल विबर ते।

यहाँ एकाधिक शब्द अपने तत्सम रूप में वर्तमान हैं। इन शब्दों का प्रयोग चाँदनी के रजत- प्रवाह के विस्तार और गंभीरता ध्वनन करने के लिए किया गया है। साथ ही प्रत्येक शब्द को ब्रजभाषा के अनुकूल ढाल लिया गया है। तद्भव शब्दों का प्रयोग नायिकाओं के परस्पर चर्चा स्थलों में अधिक है। इन शब्दों से काव्य में स्वाभाविकता व जीवंतता का गुण आ गया है। यथा-कागद, फटिक, सनेह, निसान, सांवरों, तरुनाई आदि। ब्रजभाषा में इनका प्रयोग सहज ही देखा जा सकता है। वातावरण के प्रभाववश इनकी भाषा में अरबी-फारसी शब्दावली भी मिश्रित होती चली गई किंतु इन शब्दों की संख्या बहुत कम है। उदाहरणार्थ- महल, मखमल, कलेजा, गुमान, निसान, खलक आदि। देव ने देशी शब्दों का सहज

स्वाभाविक रूप में प्रयोग किया है। यथा कूक सिरात, झरोख, कारिया, भोर, साँझ आदि। भाषा की व्यंजकता बढ़ाने, काव्य में जीवंतता लाने के लिए अनुकरणात्मक शब्दावली सहायक एवं सार्थक सिद्ध होती है। देव काव्य में ऐसे अनेक अनुकरणात्मक शब्द मिलते हैं जिनसे भाव सौंदर्य और कला दोनों में विशिष्टता आ गई है।

इस प्रकार उद्धव प्रसंग का प्रत्येक पद कवि के व्यंजना कौशल का स्थायी कीर्ति स्तंभ है। माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुण देव के काव्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते है। शृंगार, भक्ति और वैराग्य में माधुर्य गुण की प्रधानता है। प्रसाद गुण सर्व रस गामी है। ओज गुण के उदाहरण अवश्य अत्यल्प हैं तथापि आध्यात्मिकता के पदों में ओज का अलौकिक सौंदर्य भरा हुआ है। माधुर्य गुण का एक उदाहरण दर्शनीय है-

पाँयनि नूपुर मंजु बजै, कटि किंकनि के धुनि की मधुराई।

यहाँ कवि ने करधनी की मधुर ध्वनि प्रकट करने के लिए अनुनासिक ध्वनियों का सार्थक एवं प्रभावी विधान रचा है। देव ने छंदों को कविता कामिनी की गति कहा है। सवैया और कवित्त कवि के दो प्रिय छंद प्रमाणित है। श्रृंगार रस के अनुकूल कवित्त का सफलता से कवि ने प्रयोग किया है। 'देव घनाक्षरी' छंद इस महाकवि के नाम से लोक-विश्रुत हो गया है। देव की काव्य कला के चमत्कार में छंदों का महत्वपूर्ण योगदान है।

देव काव्य की सुनहली परिणति भाव-व्यंजना और कला बोध दोनों में हुई है। भागवत- कलागत समस्त प्रसाधनों का उद्घाटन इन्होंने जिस मनोयोग से किया है, वह अपने आप में एक स्तुत्य कार्य है।

16.7 सार संक्षेप

देव हिंदी साहित्य के रीतिकालीन कवियों में एक प्रमुख स्थान रखते हैं। उनकी कविताओं में श्रंगार, भक्ति और राजदरबारी जीवन का मिश्रण मिलता है। देव ने

अपने काव्य में रस, अलंकार और छंद का कुशल प्रयोग किया है। उनकी रचनाओं में भावपूर्ण और सुंदर अभिव्यक्ति दिखाई देती है। उनके काव्य में लोकजीवन के साथ-साथ प्रकृति और मानवीय संवेदनाओं का भी चित्रण मिलता है। देव की कविताओं का अध्ययन रीतिकालीन साहित्य को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि देव कवि का रीतिकाल में एक विशिष्ट स्थान है। इनके काव्य में अनेकानेक भावभूमियों का प्रतिफलन हुआ। अपनी वैयक्तिक सीमाओं और समस्याओं के कारण इन्हें भिन्न-भिन्न आश्रयदाताओं के यहाँ भटकना पड़ा और अवांछित राजप्रशस्तियाँ भी करनी पड़ीं किंतु इनकी वृत्तियाँ उदात्त थीं। एक ओर ये लौकिक श्रृंगार में डूबे तो दूसरी ओर घोर विरक्ति में। रीति निरूपक ग्रंथों के प्रणेता होने के कारण ये आचार्य के पद पर अवश्य प्रतिष्ठित हुए पर मूलतः ये एक संपूर्ण कवि थे। काव्य शिल्प के क्षेत्र में इनकी देन अतुलनीय है। इनकी कला में बिंब, प्रतीक, शब्द-शक्ति, छंद आदि से उत्पन्न अद्भुत सौंदर्य भरा पड़ा है। आलंकारिक प्रयोगों का कौशल इन में असामान्य स्तर का है। भाव, भाषा-प्रवाह एवं सरसता की त्रिवेणी का विलक्षण सौंदर्य इनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। रचना-माधुर्य और अभिव्यक्ति की निश्छलता के कारण देव अपने युग में ही समादृत नहीं हुए अपितु परवर्ती कवियों के लिए भी आदर्श बने।

16.8 मुख्य शब्द

- **रीतिकाल**: हिंदी साहित्य का कालखंड, जिसमें कवियों ने मुख्यतः राजाओं की प्रशंसा और सौंदर्य का वर्णन किया।
- **अलंकार**: कविता में सौंदर्य बढ़ाने के लिए शब्दों और अर्थों की सजावट।
- **श्रृंगार रस**: काव्य का वह रस जो प्रेम और सौंदर्य को प्रस्तुत करता है।
- **प्रकृति चित्रण**: कविताओं में प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन।
- **भक्ति काव्य**: ईश्वर के प्रति समर्पण और भक्ति पर आधारित काव्य।

- **अभिव्यंजना पक्ष**: काव्य की भाषा, शैली और प्रस्तुति का पहलू।
- **माइनिंग (Mining)**: संदर्भ और विषयों का गहन अध्ययन और उनके विवरण को समझने की प्रक्रिया।

16.9 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर:

1. श्रृंगार
2. प्रकृति
3. नायिका भेद
4. भक्ति, अध्यात्म

16.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. देव और उनकी कविता डॉ. नगेन्द्र।
2. देव और पद्माकर: तुलनात्मक अध्ययन डॉ. रामकुमार शर्मा।
3. देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान डॉ. राजबुद्धिराजा ।
4. महाकवि देव डॉ. कृष्णचंद्र वर्मा।
5. रीतियुगीन काव्य डॉ. कृष्णचंद्र वर्मा

16.11 अभ्यास प्रश्न

1. देव के कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. देव की कविता में वर्णित श्रृंगारेतर विषयों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।
3. देव के काव्य-सौष्ठव पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
4. देव के परवर्ती कवियों पर इनका प्रभाव स्पष्ट कीजिए।